वार्षिकांक 8

वर्ष 2015-16

कृषि किरण

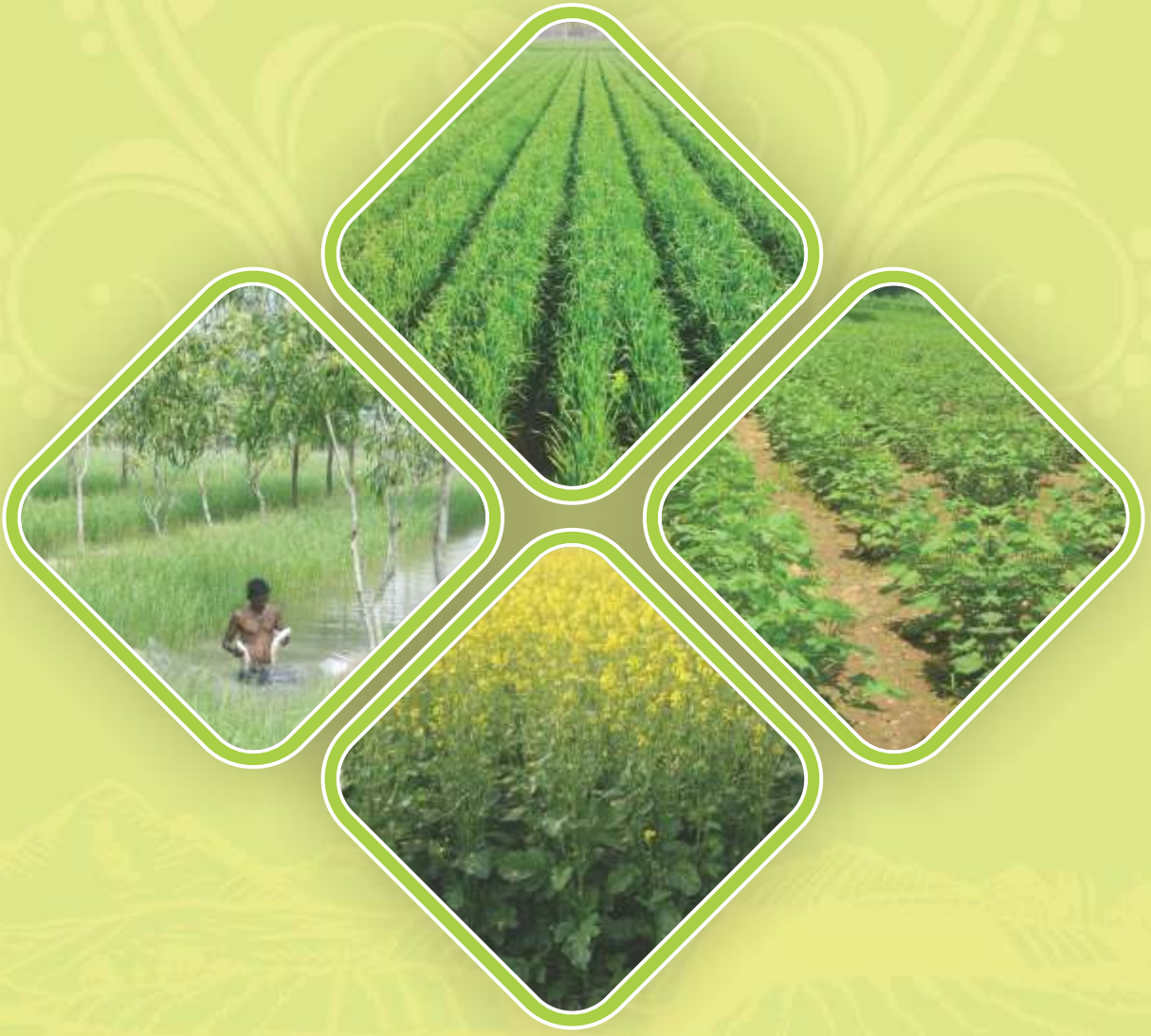

भाकृअनुप-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल-130 001 भारत

हिन्दी पखवाड़ा
14 से 28 सितम्बर 2015

हिन्दी पखवाड़ा
14 से 28 सितम्बर 2015

हिन्दी पखवाड़ा
14 से 28 सितम्बर 2015

हिन्दी पखवाड़ा
14 से 28 सितम्बर 2015

हिन्दी पखवाड़ा
14 से 28 सितम्बर 2015

हिन्दी पखवाड़ा
14 से 28 सितम्बर 2015

वार्षिकांक 8

वर्ष 2015–16

कृषि किरण

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल–132 001 भारत

संपादक मंडल

संरक्षक एवं अध्यक्ष

प्रबोध चन्द्र शर्मा (निदेशक)

संपादक

राजेन्द्र कुमार यादव (प्रधान वैज्ञानिक)
रामेश्वर लाल मीणा (वरिष्ठ वैज्ञानिक)
गजेन्द्र (वैज्ञानिक)

सदस्य

मदन सिंह
सुनील कुमार त्यागी
अंशुमान सिंह

आवश्यक नोट

इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

प्रकाशक :

निदेशक, भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल–132 001
दूरभाषः 91–184229501, ई–मेलः director.cssri@icar.gov.in, वेबसाईट : www.cssri.org

मुद्रक :

एरोन मीडिया
यू.जी. 17, सुपर मॉल, सैक्टर–12, करनाल, हरियाणा, भारत
मो. 0184–4043026, 98964–33225
ईमेल : aaronmedia1@gmail.com

प्राक्कथन

गत दशकों में हरित क्रांति के कारण हुए प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से उत्पन्न सिंचित कृषि के टिकाऊपन पर लगे प्रश्नचिन्हों को देखते हुए उत्पादन वृद्धि का पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करना इस सदी की एक बड़ी चुनौती है। सिंचित क्षेत्रों में बढ़ती हुई जलमग्नता व लवणीयता की समस्या का असर इन क्षेत्रों में नजर आने लगा है । आने वाले कुछ दशकों में कृषि क्षेत्र में जल की कमी आने का अनुमान है। भारतवर्ष के सन्दर्भ में, प्राकृतिक रूप से मिलने वाले लवणीय व क्षारीय भू – जल, घरेलू मलजल तथा बढ़ते औद्योगिकीकरण से निकलने वाले प्रदूषित बहिस्राव जल इस शताब्दी में कृषि उपयोग के मुख्य जल स्रोत साबित हो सकते हैं ।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा वर्ष 1969 में स्थापित केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान ने लगभग 2 मिलियन हैक्टर क्षारीय व लवणग्रस्त मृदाओं के सुधार में अपना भरपूर योगदान देने के साथ साथ निम्न गुणवत्ता वाले भू – जल एवं मलजल के कृषि में प्रयोग के लिए तकनीकियों का विकास किया है। घरेलू व औद्योगिक क्षेत्र के प्रदूषित जल के कृषि में प्रयोग के लिए भी संस्थान निरंतर कार्यरत है। इसके अतिरिक्त, संस्थान सिंचाई समादेशों में इस समस्या के नये क्षेत्रों में समय के साथ बढ़ते कई तरह के दबाव के कारण उग्र होती इस समस्या की गहनता के बारे में सजग है। हालांकि, हाल ही में नई चुनौतियों के कारण एक–दो दशक पहले के उपाय भी अब कारगर नहीं रह गये हैं। संस्थान के लिए पर्यावरण और किसानों के लिए मित्रवत और उनके द्वारा स्वीकार्य नई प्रौद्योगिकियों की खोज एक बड़ी चुनौती है। हम आने वाले वर्षों में भारत सरकार की नई नीति के ढ़ांचे के अंतर्गत निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए व कृषक समुदाय की सेवा के लिये अपने अनुसंधान कार्यक्रमों को परिष्कृत करने के लिए कठिन प्रयास करना जारी रखेंगे।

विगत चार दशको में संस्थान द्वारा विकसित तकनीकियाँ किसानों में काफी लोकप्रिय हुई हैं। इसका एक मुख्य कारण संस्थान द्वारा अपनी तकनीकियों का सरल भाषा में प्रचार प्रसार है। कृषि किरण पत्रिका इसी दिशा में संस्थान का एक महत्वपूर्ण कदम है। इसी श्रृंखला में केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, कृषि किरण पत्रिका का वार्षिक अंक 8 वर्ष 2015–16 प्रकाशित कर रहा है। इसमें उपरोक्त विषयों से संबंधित आलेख तथा अन्य ज्ञानवर्धक सामग्री सम्मिलित की गई है जो संस्थान तथा कृषि विशेषज्ञों द्वारा विकसित तकनीकों तथा अन्य गतिविधियों से किसानों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं को अवगत कराती है। मैं उन संस्थान तथा संस्थाओं के वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों का आभारी हूँ जिनके अनुसंधान कार्यों एवं अनुभवों को इस पत्रिका में प्रकाशित किया गया है।

मैं आशा करता हूँ कि इस पत्रिका में प्रकाशित सूचना के माध्यम से पाठकों को संस्थान द्वारा किए जा रहे अनुसंधान कार्यों तथा अन्य ज्ञानवर्धक विषयों की झलक प्राप्त होगी। मैं संपादक मण्डल के सभी सदस्यों को उनके इस सराहनीय प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ और पत्रिका में वांछित सुधारों हेतु पाठकों की ओर से तार्किक सुझावों/टिप्पणियों का स्वागत करता हूँ।

(प्रबोध चन्द्र शर्मा)

निदेशक

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल

संपादकीय

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन की वजह से असमय वर्षा, अनियमित वर्षा वितरण, मार्च महीने में तापमान का एकाएक बढ़ना (टर्मिनल हीट), औलावृष्टि, अतिवृष्टि, कीट व बीमारियों का प्रकोप इत्यादि जैसी कई गंभीर समस्याएं पूरे विश्व के सामने बाँहें फैलाये खड़ी हैं। भारत के अधिकांश हिस्सों में भूजलस्तर वर्ष दर वर्ष नीचे जाता जा रहा है जो कि एक चिंता का विषय बना हुआ है फिर भी भूजल का दोहन ज्यों का त्यों बना हुआ है। कई राज्यों में भूजलस्तर खतरे के निशान से नीचे जा चुका है फिर भी वहां ज्यादा पानी की मांग वाली फसलें जैसे धान एवं गन्ना इत्यादि की खेती निरन्तर की जा रही है। इसके साथ–साथ कुछ क्षेत्र जहां भूजल लवणीय है तथा प्राकृतिक जल निकास नहीं है वहाँ भूजल स्तर लगातार उथला हो रहा है। हरियाणा, पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश भी इस तरह की दोहरी समस्याओ से अछूते नहीं है। हमें अपना कल सुरक्षित रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रबन्धन के प्रति आज ही सजग होने की आवश्यकता है।

बदलती जलवायु, नष्ट होते प्राकृतिक संसाधन तथा पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याओं के फलस्वरूप लवणीय वातावरण में कृषि उत्पादन में अनेक प्रकार की समस्याए उत्पन्न होने की संभावना है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान देश के विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों में लवणग्रस्त भूमियों के प्रबंधन एवं निम्न गुणवत्ता वाले जल पर अनुसंधान के लिए समर्पित एक अग्रणी शोध संस्थान है। वर्ष 1969 में इसकी स्थापना के बाद भूमि सुधार प्रौद्योगिकियों के विकास एवं उनके प्रसार विशेषतः क्षारीय मृदा सुधार कार्यक्रम को देश में दूर–दूर तक अपनाया जाना इसकी सफलता का सूचक है। ऐसा अनुमान है कि इस संस्थान द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों को अपनाने से लगभग 20 लाख हैक्टर लवणग्रस्त क्षेत्र का सुधार किया जा चुका है। इस सुधारे गये क्षेत्र द्वारा लगभग 165 लाख टन वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन किया जाता है और ग्रामीण क्षेत्र में लगभग 2700 लाख मानव–श्रम दिवस रोजगार प्रति वर्ष सृजित होता है।

अपनी स्थापना के बाद पिछले कुछ दशकों में लवणता अनुसंधान के क्षेत्र में संस्थान ने विश्व में अपनी विशेष पहचान बनाई है। तेजी से बढ़ती हुई मानव और पशु जनसंख्या की खाद्यान्न, चारा, रेशे और लकड़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सिंचित क्षेत्र में किये जा रहे योजनाबद्ध विस्तार और प्राकृतिक साधनों के सघन प्रयोग के कारण अगले दशक में बढने जा रही मृदा लवणता और निम्न गुणवत्ता वाले जल की समस्याओं का विस्तार अवश्यम्भावी है। हम इस चुनौतीपूर्ण कार्य के निवारण और लागत–प्रभावी सुधारक समाधान प्रदान करने के लिए सदैव तत्पर हैं।

हालांकि संस्थान द्वारा विकसित बहुत सी प्रौद्योगिकियों के बारे में लोगों को मालूम है और काफी बड़े क्षेत्र में इनको अपनाया भी जा रहा है। परंतु इसके साथ–साथ राजभाषा पत्रिका कृषि किरण के माध्यम से हमारा प्रयास इन प्रौद्योगिकियों के व्यापक प्रचार प्रसार के अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों में सामने आई नई चुनौतियों से पाठकों को अवगत कराना भी है। इस कड़ी में कृषि किरण का आठवाँ अंक प्रकाशित करते हुये हमें प्रसन्नता हो रही है। इस अंक में कृषि वैज्ञानिकों व संबंधित विष्य विशेषज्ञों द्वारा सरल राष्ट्रभाषा में लिखे गए आलेख सम्मिलित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त पत्रिका में संस्थान में आयोजित राजभाषा संबंधी कार्यक्रमों की विस्तृत जानकारी भी प्रस्तुत की गई है।

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान तथा उन सभी संस्थाओं के कृषि वैज्ञानिक, विषय विशेषज्ञ और लेखक साधुवाद के पात्र हैं जिनके सहयोग से वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेख और ज्ञानवर्धक साम्रगी इस अंक में प्रकाशित की गई है। हमें पूर्ण आशा है कि यह अंक किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं और हिन्दी से लगाव रखने वाले पाठकों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा।

संपादक मंडल

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	आलेख	पृष्ठ संख्या
1	लवण प्रभावित भूमि में धान की सफल सीधी बुवाई संबंधित शस्य क्रियाएँ विनय कुमार मिश्र, अमर सिंह, यशपाल सिंह एवं सुनील कुमार झा	1
2	धान एवं गेहूँ की अधिक एवं टिकाऊ उत्पादकता के लिए एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन पद्धतियाँ अजय कुमार भारद्वाज, शरीफ अहमद, भावना त्यागी एवं दिनेश कुमार शर्मा	7
3	बारानी क्षेत्रों में उपलब्ध सीमित जल से फसल उत्पादन बढ़ाने हेतु उपाय बाबु लाल मीणा, रामेश्वर लाल मीणा, मनीष पाण्डेय एवं अश्वनी कुमार	11
4	लवणीय मृदाओं में जामुन की व्यवसायिक खेती राजकुमार, अंशुमान सिंह, अश्वनी कुमार एवं राजेन्द्र कुमार यादव	16
5	भिण्डी के संकर बीज उत्पादन का महत्त्व एवं तकनीक सतीश कुमार सनवाल एवं प्रबोध चन्द्र शर्मा	20
6	परिवर्तनशील पर्यावरण में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए जलवायु निपुण कृषिः एक अनुठी पहल एच॰एस॰ जाट, झाबर मल, लव कुमार सिंह, मुनमुन राय, अरविन्द कुमार, मधु चौधरी, पी॰सी॰ शर्मा, एवं एम॰एल॰ जाट	27
7	लवणग्रस्त मृदाओं में बाजरे की उन्नत खेती बाबू लाल मीणा, रामेश्वर लाल मीणा, प्रवीण कुमार एवं अश्वनी कुमार	31
8	मूँगफली में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण और वांछित प्रबंधन अनिता मान, ए॰एल॰ सिंह, महेश महात्मा, सुजीत कुमार, लोकेश कुमार, अश्वनी कुमार एवं प्रवेन्द्र श्योराण	36
9	लवणग्रस्त भूमि पर कृषि वानिकी की चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ राकेश बनियाल, आर॰के॰ यादव एवं प्रवीण कुमार	41
10	सुधरी क्षारिय भूमि पर बहुउद्देशीय कृषि में कृषक सहभागिता गजेन्द्र, हनुमान सहाय जाट, आर॰के॰ यादव, आर॰ राजू एवं दिनेश कुमार शर्मा	46
11	प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं कृषि में टिकाऊ उपयोगः एक अवलोकन प्रवेन्द्र श्योराण, रंजय कुमार सिंह, अश्वनी कुमार एवं रणधीर सिंह	51
12	हरियाणा राज्य की कृषि में सल्फर की उपयोगिता एवं प्रबंधन राजेन्द्र सिंह गढवाल, किरन खोखर एवं विजय अरोड़ा	55

13	क्षारीय एवं सुधरी क्षारीय मृदाओं में पादप वृद्धि संवर्धक जीवाणुओं का महत्त्व रितु देवी, मधु चौधरी, मार्टिना रानी, अरविन्द कुमार, असीम दत्ता, पी॰सी॰ शर्मा एवं एच॰एस॰ जाट	58
14	औद्योगिक अपशिष्ट निष्पादन का मृदा एवं जल गुणवत्ता पर प्रभाव मनीषा, अजय कुमार, प्रवीण कुमार एवं शारिक अली	62
15	कृषि, पशुपालन एवं डेरी मशीनों के निर्माण तथा रखरखाव हेतु आवश्यक जानकारी पी॰ बर्नवाल एवं पी॰एस॰ विज	68
16	बौद्धिक संपदा अधिकारों का कृषि प्रौद्योगिकी क्षेत्र में योगदान एवं परिपेक्ष्य प्रवीण कुमार, शारिक अली, डी॰एस॰ बुंदेला, आर॰के॰ सिंह, जोगेन्द्र सिंह, अंशुमान सिंह एवं डी॰के॰ शर्मा	71
17	भूजल में फ्लोराईड : जोखिम व उपचार एस॰के॰ झा, वी॰के॰ मिश्रा, डी॰के॰ शर्मा एवं टी॰ दामोदरन	75
18	लवणग्रस्त मृदाओं में कृषिवानिकी की सफलता के लिये महत्वपूर्ण क्रियाएं राकेश गर्ग एवं राजेन्द्र कुमार यादव	83
19	जलवायु परिवर्तन के प्रति कृषकों की अवधारणा तथा अनुकूलन का उत्तर प्रदेश की क्षारीय कृषि पारिस्थितिकी में अध्ययन रंजय कुमार सिंह, प्रवेन्द्र श्योराण, सत्येन्द्र कुमार, आर॰ राजू एवं दिनेश कुमार शर्मा	86
20	वानस्पतिक जैव विविधता संरक्षणः जलवायु परिवर्तन तथा अनुकूलन क्षमता में पारम्परिक परिस्थितिकीय ज्ञान की भूमिका रंजय कुमार सिंह, अंशुमान सिंह, प्रवेन्द्र श्योराण एवं रणधीर सिंह	93
21	गुर्दे की खराबी के लक्षण, कारण एवं सावधानियाँ महति प्रकाश एवं सुनीता ढींगड़ा	100
22	सूर्य नमस्कार सुनीता ढींगड़ा एवं महति प्रकाश	102
23	कविताएँ	105
	धरती पर भगवान गुरू : कवि अवधबिहारी 'अवध'	107
	माँ की ममता रूपी मोतियाँ : कवि अवधबिहारी 'अवध'	107
	खूबसूरत पल : गीता रानी	108
24	संस्थान के कृषि अनुसंधान में राजभाषा हिन्दी रामेश्वर लाल मीणा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं सुनील कुमार त्यागी	111

लवण प्रभावित भूमि में धान की सफल सीधी बुवाई सम्बंधित शस्य क्रियाएँ

विनय कुमार मिश्र, अमर सिंह, यशपाल सिंह एवं सुनील कुमार झा

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

भारत में 67.3 लाख हैक्टर लवणीय भूमि है जिसमें 13.7 लाख हैक्टर भूमि अकेले उत्तर प्रदेश में ही मौजूद है। उत्तर प्रदेश में आंशिक रूप से सुधरी हुई लगभग 8.0 लाख हैक्टर लवणीय भूमि (पीएच 9 से 9.5) जिसमे किसान मुख्य रूप से धान एवं गेहूँ की खेती करते हैं। धान की खेती रोपाई विधि से करते हैं जिसमे श्रम एवं जल का बहुत नुकसान होता है। पानी भरकर खेत की जुताई करने से मिट्टी की भौतिक दशा पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भविष्य में जल की कमी, श्रमिकों की अनुपलब्धता तथा मिट्टी की खराब खेती भौतिक दशा को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिकों ने धान की सीधी बुवाई की विधि को विकसित किया है। धान की इस विधि को मुख्य रूप से निम्न दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

धान की सीधी बुवाई की भीगी विधि :

इस विधि में धान को अंकुरित करके पलेवा किये खेत में छिटक कर या पंक्तियों में बुवाई करते हैं। क्षारीय भूमि में इस विधि से बुवाई करने पर श्रमिकों की समस्या को छोड़कर शेष समस्याएं धान की रोपाई विधि वाली ही रहती है। इसलिए यह विधि क्षारीय भूमि हेतु लाभकारी नहीं है।

धान की सीधी बुवाई की शुष्क विधि :

इस विधि में धान को मल्टी क्राप सीड ड्रिल द्वारा पंक्ति में या छिटक कर सूखे खेत में बुवाई की जाती है तथा नमी की कमी होने की दशा में अगले दिन सिंचाई कर दी जाती है। किसानों को अधिकांशतः इसी विधि द्वारा धान की खेती करने का सुझाव दिया जाता है। धान की सीधी बुवाई शुष्क विधि द्वारा करने से निम्नलिखित लाभ हैं।

- धान की रोपाई विधि में नर्सरी उगाने, पनीरी निकालने तथा पौधों की रोपाई के लिए श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। सीधी बुवाई में 60 प्रतिशत श्रम की बचत हो जाती है।
- धान की सीधी ब्रुवाई विधि में उर्वरक उपयोग क्षमता ज्यादा होती है, क्योंकि इस विधि में उर्वरक सीधा पौधों के जड़ क्षेत्र (खूडों) में डाला जाता है।
- धान की सीधी बुवाई विधि में ईधंन (डीजल, बिजली) की बचत होती है। इस विधि में 20–30 प्रतिशत पानी की भी बचत होती है।
- धान की सीधी बुवाई विधि में हरित गृह गैसों का उत्सर्जन (मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि) धान की रोपाई विधि की अपेक्षा कम होता है जो पर्यावरण और हमारे जीवन के लिए बहुत लाभदायक है।
- धान की सीधी बुवाई में मृदा के भौतिक गुणों पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि धान की रोपाई विधि में खेत को कददू करने से क्षारीय मृदा के गुणों विशेषकर मृदा संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- धान की रोपाई मुख्यतः औरतों द्वारा की जाती है तथा लगातार 5–6 घंटा झुककर काम करने से उनके स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। धान की सीधी बुवाई करके महिलाओं को कठिन श्रम से बचाया जा सकता है।

धान की सीधी बुवाई विधि की उत्पादन तकनीक

धान की सीधी बुवाई की नम विधि में धान के बीज को अंकुरित करके पलेवा व कददू हुए खेत में छिटक कर या पंक्ति में बुवाई करते हैं। धान को छिटक कर सीधी बुवाई की शुष्क विधि में धान की बुवाई मल्टी क्राप सीड ड्रिल द्वारा या तैयार खेत में बुवाई करते है। खेत में पौधों की संख्या, वृद्धि एवं विकास के लिए यह आवश्यक है कि खेत की तैयारी, बुवाई का समय, प्रजातियों का चुनाव, जल, रोग एवं कीट, उर्वरक एवं खरपतवार आदि के प्रबन्ध पर विशेष ध्यान दिया जाय जिससे आंशिक रूप से सुधरी हुई लवणीय भूमि से भी अधिक उपज प्राप्त की जा सके। धान की सीधी बुवाई की खेती के लिए निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान देना चाहिए।

तालिका 1: विभिन्न क्षेत्रों में बुवाई का समय

क्षेत्र	बुवाई का उचित समय
पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार	15 जून – 15 जुलाई
पश्चिमी उत्तर प्रदेश	20 जून से 20 जुलाई
हरियाणा	20 जून से 15 जुलाई
पंजाब	15 जून से 15 जुलाई
पश्चिम बंगाल	15 मई से 15 जून

खेत की तैयारी

आंशिक रूप से सुधरी हुई लवणीय भूमि में धान की सीधी बुवाई की शुष्क विधि में खेत की तैयारी का बड़ा महत्व है। धान की सीधी बुवाई में खरपतवार बहुत बड़ी समस्या है जिसके लिए यह आवश्यक है कि बुवाई से पहले खेत की तैयारी ठीक से की जाये। इसके लिए दो जुताई ग्रीष्म (अप्रैल से मई) में तथा दो जुताई पहली वर्षा के 15–20 दिन बाद एवं एक जुताई बुवाई से पहले करनी चाहिए। ग्रीष्म में जुताई एवं प्रथम वर्षा के 15–20 दिन बाद जुताई करने से खरपतवार में बहुत कमी आ जाती है।

बुवाई का समय

धान की सीधी बुवाई में यदि सिंचाई की सुविधा हो तो बुवाई जून के महीने में और यदि सिंचाई की सुविधा नहीं है तो 15–20 जुलाई तक बुवाई करनी चाहिए। धान की सीधी बुवाई में फसल रोपाई वाली फसल से 15–20 दिन पहले पकती है। यदि धान की बुवाई जुलाई में भी करते हैं तो अगली फसल के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। जुलाई माह में सीधी बुवाई करने से सिंचाई की बचत हो जाती है। धान की सीधी बुवाई के लिए विभिन्न क्षेत्रों के लिए बुवाई का समय तालिका–1 में दिया गया है।

प्रजातियों का चुनाव

प्रजातियों का चुनाव किसी भी प्रकार की खेती के लिए महत्वपूर्ण होता है लेकिन लवणग्रस्त या आंशिक रूप से सुधरी हुई भूमि में सीधी बुवाई के लिए प्रजातियों का चुनाव विशेष महत्व रखता है। लवणग्रस्त भूमि के लिए केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल ने लवण सहनशील धान की प्रजातियों का विकास किया है। संस्थान द्वारा विकसित धान की प्रजाति सीएसआर–23, सीएसआर–36, एवं सीएसआर–43 (अल्प अवधि) मुख्य प्रजातियाँ हैं जो धान की सीधी बुवाई के लिए आंशिक रूप से सुधरी लवणीय भूमि के लिए उपयुक्त है।

बीज की मात्रा, दूरी एवं बुवाई की गहराई

बीज को कवकनाशी जैसे बाविस्टीन, केप्टान आदि से 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर लेना चाहिए जिससे फफूंद से उत्पन्न होने वाली बिमारियों से बचा जा सकता है। अच्छे अंकुरण के लिए बीज को रात भर पानी में भिगो कर छाया में सुखा लेना चाहिए इसके बाद बुवाई करना चाहिए। संस्थान द्वारा विकसित सीएसआर–बायो का भी प्रयोग बीज उपचारित करने में लाभकारी होता है। धान के बीज को सीएसआर–बायो के 0.5 प्रतिशत घोल में रखकर एक दिन बाद बुवाई की जाती है। इसके प्रयोग से फाल्स स्मट बीमारी के प्रकोप की सम्भावना कम रहती है। मल्टी क्राप सीड ड्रिल से बुवाई करने पर 40–50 कि.ग्रा. बीज की प्रति हैक्टर आवश्यकता होती है। छिटकाव विधि से बुवाई करने पर 60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। बुवाई के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 से.मी. तथा गहराई 3 से.मी. रखते हैं। बीज की गहराई अधिक होने पर बीज के जमाव पर बुरा असर पड़ता है।

जल प्रबन्धन

शुष्क विधि में पहली सिंचाई बोने के एक–दो दिनों बाद खेत में नमी की कमी होने पर अवश्य करनी चाहिए। मानसून के समय पर आ जाने पर सिंचाई की बहुत आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन सूखा की स्थिति में कुछ अवस्थाओं जैसे कल्ले बनने के समय, बाली निकलने के समय, फूल के समय, दुग्धावस्था एवं दाने पकने के समय सिंचाई बहुत आवश्यक है। धान की बुवाई के समय यदि नमी कम हो तो बुवाई के तुरन्त बाद सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए।

उर्वरक प्रबन्धन

धान की सीधी बुवाई के लिए आंशिक रूप से सुधरी हुई लवण प्रभावित भूमि में उर्वरक डालने से पहले मृदा की जाँच करा लें। मृदा परीक्षण के आधार पर आवश्यक पोषक तत्व या उर्वरक की मात्रा का प्रयोग करें। मृदा का पीएच मान 9.5 से कम होने पर ही धान की बुवाई करना लाभदायक होता है। सामान्यतः आंशिक रूप से सुधरी हुई क्षारीय मृदा में 120–150 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक प्रति हैक्टर के हिसाब से डाला जाता है। नत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस, पोटाश एवं जिंक की पूरी मात्रा बुवाई के समय डालनी चाहिए तथा नत्रजन की शेष मात्रा दो बराबर भागों में बाँटकर एक अधिकतम कल्ले निकलने के समय तथा दूसरी बाली निकलते समय प्रयोग करें।

तालिका 2: धान की सीधी बुवाई में प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी

खरपतवारनाशी	व्यापारिक नाम	मात्रा (ग्रा./हैक्टर या मि.ली./हैक्टर)	प्रयोग करने का समय	नियंत्रित खरपतवार
पैराक्वाट ग्रामोक्सोन	1000 ग्राम	1–2 दिन बुवाई से पहले	सभी प्रकार के खरपतवार	
ग्लाइफोसेट	राउन्डप	1000–3000 मि.ली.	10–15 दिन बुवाई से पहले	सभी प्रकार के खरपतवार
पेंडामिथिलीन	स्टाम्प	1.5 कि.ग्रा./हैक्टर	बुवाई से पहले	मौसमी खरपतवार
विसपाइरीबैक सोडियम	नमिनी गोल्ड या एडोरा	250 मि.ली.	15–25 दिन बुवाई के बाद	घासें चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार एवं वार्षिक घासें
पेनाक्सुलम	ग्रेनाइट	93.75 मि.ली.	15–20 दिन बुवाई के बाद	घासें चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार एवं वार्षिक घासें
फेनाक्सप्रोपेयाइल –सेफनर	राइस स्टार	870–1300 मि.ली.	15–20 दिन बुवाई के बाद के लिए सुरक्षित, एक	धान की प्रारंभिक अवस्था वर्षीय घास
एजाइम सल्फ्यूरॉन	सिगमेन्ट	35–70 ग्रा.	15–20 दिन बुवाई के बाद	घासें चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार, मोथा एवं एक वर्षीय खरपतवार
इथाक्सी सल्फ्यूरॉन	सनराइस	120 ग्रा.	15–20 दिन बुवाई के बाद	चौड़ी पत्ती एवं वार्षिक खरपतवार
2–4–डी इथाइल इस्टर	वीडमार	1250 मि.ली.	15–25 दिन बुवाई के बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
कारफेन्ट्राजोन	एफिनिटी	50 ग्रा.	15–20 दिन बुवाई के बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार

तालिका 3: रोग नियंत्रण

रोग	नियंत्रण
ब्लास्ट	इस रोग को नियंत्रित करने के लिए इंडोफिल जेड 78, 75 डब्ल्यू पी (जिनेब) 500 ग्रा. या हिनोसान (एडिनोफोस) 200 मि.ली./एकड़ की दर से 200 ल. पानी में घोल बनाकर अधिकतम कल्ले निकलने/बाली निकलने के समय छिड़काव करें।
ब्राऊन स्पॉट	इस रोग के रासायनिक नियंत्रण उपाय ब्लास्ट के समान ही है।
शीथ ब्लास्ट	यह रोग बाली के पूर्ण रूप से निकलने और फूल आने तक दिखाई देता है, इसे नियंत्रित करने के लिए बाविस्टीन 50 डब्ल्यूपी या एमबीसी का 200 ग्रा./एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें।
फॉल्स स्मट	ब्लाईटाक्स 50 डब्ल्यूपी का 500 ग्रा0/एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोल बनाकर फसल की बाली निकलने की अवस्था से 10 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव करें। सीएसएसआरआई, लखनऊ द्वारा विकसित सीएसआर–बायो का भी 0.5 प्रतिशत घोल बनाकर बीज में मिलाकर बीज को उपचारित किया जा सकता है।

तालिका 4: कीट नियंत्रण

कीट	कीटनाशी	व्यापारिक नाम	मात्रा/एकड़
तना छेदक	ट्राईजोफॉस	हौस्टाथिओन 40 ई.सी.	350 मि.ली.
	क्लोरोपाईरीफॉस	डर्सबैन 10 जी	4 कि.ग्रा.
	फिप्रोनिल	रीजेंट 0.3 जी	6 कि.ग्रा.
पत्ती लपेटक	मोनोक्रोटोफॉस	न्युवाक्रौन/मोनोसिल 36 एसएल	560 मि.ली.
	क्लोरोपाईरीफॉस	कोरोबैन/मानोसिल 36 एसएल	560 मि.ली.
	ट्राईजोफॉस	हौस्टाथिओन 40 ईसी	350 मि.ली.
फुदके, मिली बग, गंधी,	इमिडाक्लोप्रिड	कोंफिडौर 200 एमएल	40 मि.ली.
फुनकी एवं काटने वाली सूड़ी	क्वीनॉलफॉस	एकालक्स/कुइगार्ड 25 एएफ	800 मि.ली.
	क्वीनॉलफॉस	एकालक्स 20 एएफ	1 ली
	मोनोक्रोटोफॉस	न्युवाक्रौन 36 एसएल	560 मि.ली.
राइस हिस्पा	मिथाइल पैराथिओन	मिथाइल पैराथिओन 50 ईसी	120 मि.ली.
राइस रूट वीविल	फोरेट	थिमेट/फोराटौक्स 10 जी	30 कि.ग्रा.
राइस इअर कटिंग केटरपिलर	क्वीनॉलफॉस	एकालक्स/कुइंगार्ड 25 एएफ	400 मि.ली.
	क्वीनॉलफॉस	एकालक्स 20 एएफ	500 मि.ली.
	मोनोक्रोटोफॉस	न्युवाक्रौन 36 एसएल	560 मि.ली.

खरपतवार प्रबन्धन

धान की सीधी बुवाई विधि में खरपतवार नियंत्रण का बहुत महत्व है या दूसरे शब्दों में कहें कि धान की सीधी बुवाई की सफलता खरपतवार नियंत्रण पर ही आधारित होती है। धान की सीधी बुवाई में खरपतवारों को उगने के लिए अनुकूल वातावरण होता है तथा ये खरपतवार धान के पौधे से पोषक तत्वों, जल आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। धान को जो पोषक तत्व एवं जल मिलना चाहिए उसका उपभोग करके फसल को काफी नुकसान पहुँचाते हैं। यद्यपि आंशिक रूप से सुधरी हुई भूमि में खरपतवार की बहुत ज्यादा समस्या नहीं रहती है। इसका नियंत्रण निराई गुड़ाई द्वारा या कुछ रासायनिक खरपतवारनाशी का प्रयोग करके किया जा सकता है। कुछ प्रमुख खरपतवार नाशकों का विवरण निम्न प्रकार से है।

रोग एवं कीट नियंत्रण

धान की सीधी बुवाई में निम्नलिखित रोगों एवं कीटों की संभावना रहती है इन रोग एवं कीटों की रोकथाम के लिये निम्नलिखित रसायनिक दवाईयों की सिफारिस की जाती है।

धान की सीधी बुवाई का उपज पर प्रभाव

धान की सीधी बुवाई का उपज पर प्रभाव देखने के लिए संस्थान के लखनऊ केन्द द्वारा क्षारीय मृदा पर प्रयोग किया गया। तालिका – 5 द्वारा पता चलता है कि सी.एस.आर–23 और एनडीआर–359 की उपज अन्य प्रजाति पंत–12 एवं सरजू–52 की अपेक्षा अधिक प्राप्त की गई। धान की सीधी बुवाई में औसत उपज 3.63 टन मिली जबकि रोपाई में औसत उपज 3.40 टन/हैक्टर प्राप्त हुई।

धान की सीधी बुवाई का उपज के अतिरिक्त धान की बालियों की लम्बाई, धान की वृद्धि तथा प्रति बाली दानों की संख्या पर भी सार्थक घनात्मक प्रभाव पाया गया। धान की सीधी बुवाई में पौधे की जड़ रोपाई की अपेक्षा ज्यादा गहराई तक पायी गयी एवं अधिकांश जड़ों की संख्या 0–30 सें.मी. गहराई में थी जबकि सीधी बुवाई में जड़ें 60 सें.मी. गहराई तक पायी गयी। अधिक

धान की सीधी बुवाई

जीरो टिलेज

धान की सीधी बुवाई ढैंचा के साथ

तालिका 5: धान की रोपाई एवं सीधी बुवाई विधि में उपज का अन्तर

प्रजाति	धान की रोपाई (टन/है.)	धान की सीधी बुवाई (टन/है.)	औसत
सीएसआर–23	4.06	4.13	4.10
एनडीआर–359	4.06	4.35	4.20
पंत – 12	1.96	2.63	2.32
सरजू – 52	3.52	3.38	3.45
औसत	3.40	3.63	3.52
सी.डी. (पी = 0.05) बुवाई की विधि 0.02, प्रजाति – 0.18, बुवाई की विधि x प्रजाति – 0.27			

तालिका 6: जुताई एवं फसल अवशेष का धान की सीधी बुवाई में उपज पर प्रभाव

जुताई (टिलेज)	बिना फसल अवशेष	फसल अवशेष के साथ	औसत
रोपाई विधि	4.6	4.8	4.7
जीरो टिलेज–जीरो टिलेज	4.3	4.6	4.5
सीधी बुवाई – जीरो टिलेज	4.6	5.1	4.9
सीधी बुवाई–ढैंचा–जीरो टिलेज	2.5	2.1	2.3
पलेवा–जीरो टिलेज–जीरो टिलेज	4.6	5.0	4.8
शुष्क जुताई	4.5	4.7	4.6
क्रान्तिक अन्तर (पी : 0.05)	फसल अवशेष 0.21	टिलेज 0.17	

गहराई तक जड़ों के विकसित होने से प्रतिकूल स्थिति में पौधों पर हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। रोपाई वाले पौधे प्रतिकूल परिस्थिति विशेषकर पानी की कमी होने पर अधिक प्रभावित हो जाते हैं जिससे उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

एक अन्य प्रयोग (तालिका 6) में देखा गया कि धान की सीधी बुवाई में उपज (4.9 टन/है.) रही जोकि रोपाई विधि से प्राप्त 4.7 टन/हैक्टर से अधिक पाई गई। धान की सीधी बुवाई जिसमें फसल अवशेष डाला गया था उसमें उपज 5.1 टन प्रति हैक्टर मिली। सीधी बुवाई के साथ ढैंचा की बुवाई करने पर धान की उपज पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तथा इसका उत्पादन सीधी बुवाई की तुलना में आधे से भी कम पाया गया।

इस प्रकार प्रयोगों से प्रमाणित होता है यदि सामयिक प्रबन्धन के साथ धान की सीधी बुवाई द्वारा खेती की जाये तो रोपाई की तुलना में अधिक या बराबर उपज प्राप्त होती है। इसके अलावा सीधी बुवाई से मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुण भी कम प्रभावित होती हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि धान की सीधी बुवाई संबंधित संस्तुत शस्य क्रियाएं अपनाकर किसान कम लागत के साथ रोपाई विधि के बराबर उपज प्राप्त कर सकते हैं। इस विधि से पानी की बचत के साथ मृदा स्वास्थ्य पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

समाप्त

सफलता की कोई सीमा नहीं है।
सपने देखकर ही आप उन्हें पूरा कर सकते हैं।

धान एवं गेहूँ की अधिक एवं टिकाऊ उत्पादकता के लिए एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन पद्धतियाँ

अजय कुमार भारद्वाज, शरीफ अहमद, भावना त्यागी एवं दिनेश कुमार शर्मा

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

पोषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता

आंशिक रूप से सुधरी क्षारीय/कल्लर भूमि में स्थायी उत्पादकता के लिए उचित पोषक तत्व एवं मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन बहुत महत्त्वपूर्ण है। फसल की कटाई के साथ मृदा से पोषक तत्वों का निष्कासन होता है, जिससे मृदा की उर्वरता कम हो जाती है। जब तक इन निष्कासित पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में जैविक एवं रासायनिक स्रोतों से मृदा में प्रतिस्थापन नहीं हो जाता तब तक मृदा की उर्वरता में सुधार नहीं हो सकता। इसके कारण फसल की उपज कम एवं किसान की लागत बढ़ जाती है और धीरे–धीरे मृदा उर्वरता का भी ह्रास होता रहता है। पर्याप्त उपज लेने के लिये मृदा में लगातार रासायनिक उर्वरकों की मात्रा बढ़ानी पड़ती है जिससे कृषि उपज की गुणवत्ता, मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण हेतु ये अत्यन्त आवश्यक है कि खाद्यान्नों, दालों व तिलहन के उत्पादन में बढ़ोत्तरी की जाये ताकि भविष्य में बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुरूप खाद्यान्न उत्पादन हो सके। यह मृदा उर्वरता और पोषक तत्व प्रबंधन के द्वारा ही संभव होगा।

कृषि योग्य भूमि का लगभग 23.5 प्रतिशत क्षेत्र धान–गेहूँ फसल चक्र के अंतर्गत आता है जो कि भारत के लिये मुख्य खाद्यान्न क्षेत्र है। इसलिए पर्याप्त उत्पादन सुनिश्चित करने के लिये इस क्षेत्र में मृदा स्वास्थ्य व पोषक तत्व प्रबंधन अनिवार्य है।

पोषक तत्व चक्र

पोषक तत्व चक्र दर्शाता है कि कैसे तत्व भौतिक पर्यावरण से जीवन तंत्र में बदलते हैं और पुनः भौतिक पर्यावरण में वापस आते हैं। यह तत्व गमन, जीवन के लिये आवश्यक पर्यावरण पौधों, पशुओं और पुनः किसी क्षेत्र की जैविक क्रिया का पारिस्थितिकी चक्र है। पोषक तत्व सभी पौधों और जीवन के विकास के लिये आवश्यक है। पृथ्वी पर ये पोषक तत्व जीवन वृद्धि में बदलते है। और मरणोपरांत प्रकृति का हिस्सा बन जाते हैं। पोषक तत्वों का चक्रण निम्नलिखित अनुसार चलता रहता है।

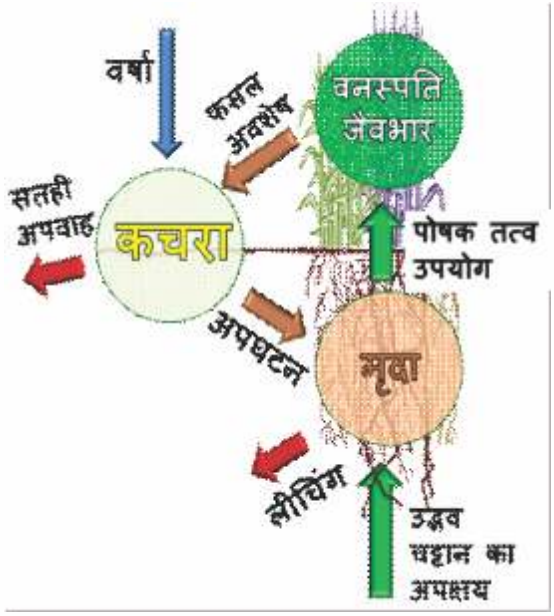

पोषक तत्वों का प्राकृतिक चक्रण

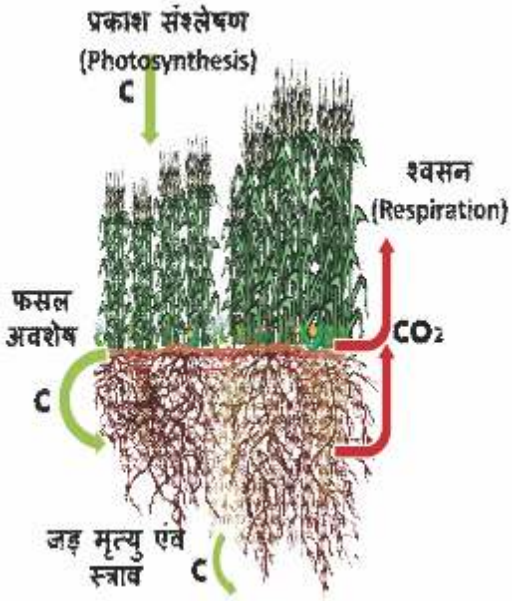

कार्बन चक्र के अवयव

कार्बन चक्र

पारिस्थितिकी एवं जीवमंडल में कार्बन का स्थानांतरण गैस, ठोस अथवा तरल रूप में होता है। वायुमंडल में कार्बन का संचार कार्बन डाईआक्साइड गैस के रूप में होता है तथा जल में यह घोल के रूप में विद्यमान होता है। कार्बन जैवीय तत्वों में कार्बोहाइड्रेट तथा मृदा में कैल्शियम कार्बोनेट एवं खनिज कार्बोनेट के रूप में उपस्थित होता है और जीवमंडल में कार्बन का स्थानांतरण ऊर्जा प्रवाह के साथ होता है।

जीवित पौधे वायुमंडलीय कार्बन डाईआक्साइड को ग्रहण करके कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते है। तत्पश्चात् श्वसन, मृत जीवों के अवयव अपघटन तथा खनिजों के अनाच्छादन के कारण कार्बन डाईआक्साइड मुक्त होकर वायुमंडल में पुनः विलीन हो जाती है। लवणीय मृदा में कार्बन संचय की क्षमता सामान्य मृदा की अपेक्षाकृत कम होने के कारण, यह कार्बन स्थिरीकरण के लिए अति संवेदनशील होती है। अतः इन मृदाओं में कार्बन संचय और उनका स्थायित्व प्रबंधन करना अति आवश्यक है। प्रकृति में कार्बन परिदृश्य निम्नानुसार होता है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का महत्त्व

मृदा स्वास्थ्य को स्थायित्व प्रदान करने के साथ अधिकत्तम उत्पादन लेने के लिये समुचित पोषक तत्व प्रबंधन एक महत्त्वपूर्ण प्रौद्योगिकी है। जिसमें सभी उपलब्ध स्रोतों से पोषक तत्वों की समुचित आपूर्ति एक समन्वित तरीके से होना अनिवार्य है। इसके अंतर्गत रासायनिक और जैविक स्रोतों के संयुक्त उपयोग से पोषक तत्वों की कमी को संचयित किया जाता है।

जैविक स्रोत

फसल उत्पादों की अच्छी गुणवत्ता और मृदा उर्वरता बनाए रखने के लिए गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, मुर्गी खाद, केंचुआ खाद, हरी खाद, फसल अवशेषों का प्रयोग, फसल चक्र में दलहनी फसलों का समायोजन और अन्य जैविक खादों का यथासंभव रासायनिक उर्वरकों के साथ प्रयोग कारगर होता है। इससे पौधों को मुख्य, गौण व सूक्ष्म पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में और लम्बी अवधि तक मिलते रहते हैं। अनुसंधानों द्वारा यह भी देखा गया है कि रासायनिक उर्वरकों को जैविक खादों के साथ संयुक्त रूप से देने पर प्रयोग किये गये उर्वरकों की उपयोग दक्षता भी बढ जाती है।

इसके अतिरिक्त खेती में रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक उर्वरकों जैसे–एजोटोबैक्टर, राइजोबियम, एजोस्पिरिलम, नील हरित शैवाल, फॉस्फोबैक्टीरिया, एजोला व माइकोराइजा का प्रयोग भी मृदा उर्वरता को बढ़ाने में लाभदायक होता है। जैविक उर्वरकों के प्रयोग से विभिन्न फसलों की उपज में 15–25 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हो सकती है। जैविक उर्वरक सस्ते व आसानी से उपलब्ध हैं तथा इनकी प्रयोग विधि भी बहुत सरल है।

फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्व

फसलों की अधिक पैदावार व अच्छी गुणवत्ता हेतु विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जिन्हें निम्नानुसार वर्गीकृत किया जाता है।

प्राथमिक पोषक तत्व	:	नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम
माध्यमिक पोषक तत्व	:	कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर
सूक्ष्म पोषक तत्व	:	बोरोन, जस्ता, तांबा, लौहा, मैंगनीज, मोलिब्डेनम, क्लोरीन
गैर जरूरी पोषक तत्व	:	सिलिकोन, कोबाल्ट, निकिल, एल्युमीनियम

प्राथमिक पोषक तत्वों में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश है, जिनकी आपूर्ति रासायनिक उर्वरकों के माध्यम से की जाती है। देश के अनेक कृषि क्षेत्रों में पौधों के लिए इन तीन मुख्य पोषक तत्वों का प्रयोग एक अनिश्चित अनुपात में किया जाता है, जबकि इनका आदर्श अनुपात 4:2:1 होना चाहिए। किसानों द्वारा खेती में एक ही प्रकार के उर्वरकों का लगातार प्रयोग करने से मृदा में कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से खाद्यान्न, दलहन, तिलहन और उद्यानिकी फसलों की उपज प्रभावित होती है। इसी प्रकार सघन धान–गेहूँ फसल प्रणाली के कारण कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात गड़बड़ा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा की उत्पादन क्षमता में काफी गिरावट आती जा रही है। अत्यधिक नाइट्रोजन और फास्फोरस उर्वरकों के प्रयोग करने के बावजूद फसलोत्पादन में वृद्धि नहीं हो पा रही है। इसका स्पष्ट कारण मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों का अत्यधिक दोहन, सघन फसल प्रणाली व जीवांश की कमी के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है। किसी–किसी क्षेत्र में लवणीय जल से सिंचाई करने के कारण मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्वों की कमी देखी गयी है। खेती में हर वर्ष एक जैसा फसल चक्र अपनाने के कारण भी हानिकारक

जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। भारत के उत्तर–पश्चिमी और उत्तर–पूर्वी राज्यों में सघन कृषि प्रणाली के अंतर्गत यह समस्या और गंभीर होती जा रही है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

सभी संभव स्रोतों से नियंत्रित एवं आवश्यक पोषक तत्वों की एक समन्वित तरीके से आपूर्ति सदैव लाभकारी होती है। रासायनिक और जैविक स्रोतों के संयुक्त प्रयोग से पोषक तत्वों की कमी को नियंत्रित किया जा सकता है। जैविक स्रोत के अंतर्गत हरी खाद (जैसे ढैंचा), फलियां (जैसे मूंग), गोबर खाद, फसलों के अवशेष (गेहूँ व धान का भूसा और धान की खाद), केंचुआ खाद आते हैं।

रासायनिक उर्वरक: इन उर्वरकों का उपयोग मृदा प्रकार के अनुसार होता है, इसके अंतर्गत यूरिया, डीएपी एवं पोटेशियम उर्वरक के साथ सूक्ष्म तत्वों हेतु विभिन्न तरह के लवण और मृदा सुधारकों का प्रयोग किया जाता है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के लाभ

- उपज में बढोत्तरी: रासायनिक और भौतिक परिवर्तनों से मृदा की भौतिक स्थिति को अतिरिक्त लाभ मिलता है, जिससे फसलोत्पादन में वृद्धि होती है।
- मृदा स्वास्थ्य में सुधार: केवल रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करने से मृदा स्वास्थ्य एवं लाभकारी सूक्ष्मजीवों को हानि पहुँचती है।
- द्वितीय और सूक्ष्म पोषण में सुधार: केवल रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करने से द्वितीय और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो जाती है, उसमें एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन से सुधार होता है।
- पर्यावरण की गुणवत्ता में बढोत्तरी: नाईट्रेट निक्षालन एवं नाइट्रस ऑक्साइड गैस का उत्सर्जन कम होता है।

हरियाणा के लिए एकीकृत पोषण पद्धतियाँ व पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं लाभ

1. मूंग + यूरिया : डीएपी: एमओपी (81:15:19 किलोग्राम/एकड़): धान–गेहूँ कृषि पद्धति के अंतर्गत अप्रैल माह के अन्तिम सप्ताह में गेहूँ की कटाई करने के तुरन्त पश्चात् मूंग की बुवाई की जाये, और जुलाई के प्रथम सप्ताह में (लगभग 60 दिन बाद) फलियों की तुडाई करके बचे हुये पौध अवशेषों को मिट्टी में पावर टिलर की सहायता से दबा दिया जाये। इसके पश्चात् केवल 100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 16 किलोग्राम फास्फोरस और 28 किलोग्राम पोटाश की मात्रा धान रोपाई एवं फसल उत्पादन हेतु पर्याप्त होती है।
2. ढैंचा + यूरिया : डीएपी : एमओपी (81:15:19 किलोग्राम/एकड़): धान–गेहूँ पद्धति के अंतर्गत 15 मई के आसपास गेहूँ कटाई के उपरांत खाली समय में हरी खाद हेतु ढैंचा की बुवाई कर देनी चाहिये। 50 दिनों के बाद हरी खाद हेतु ढैंचा की फसल पावर टिलर की सहायता से मिट्टी में दबा दिया जाये। इसके पश्चात् केवल 100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 16 किलोग्राम फास्फोरस और 28 किलोग्राम पोटाश की धान रोपाई एवं फसल उत्पादन के लिए आवश्यकता होगी।
3. गोबर खाद (4 टन/एकड) + यूरिया: डीएपी: एमओपी (81:15:19 किलोग्राम/एकड़): इस कृषि पद्धति के अंतर्गत 10 टन प्रति हैक्टर की दर से गोबर की खाद खेत में पलेवा से पूर्व डालकर पावर टिलर की सहायता से मिट्टी में अच्छी तरह दबा दी जाती है, इसके उपरांत धान रोपाई हेतु मात्र 100 किलोग्राम नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। इसके पश्चात् केवल 100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 16 किलोग्राम फास्फोरस और 28 किलोग्राम पोटाश की धान रोपाई एवं फसल उत्पादन के लिए आवश्यकता होगी।
4. गेहूँ भूसा + यूरिया: डीएपी: एमओपी (81:15:19 किलोग्राम/एकड़): इस कृषि पद्धति के अंतर्गत गेहूँ की कटाई मृदा सतह से 30 सेंमी. ऊपर से करनी होती है। बचे हुये पौध अवशेषों को पलेवा से पूर्व पावर टिलर की सहायता से सूखी मिट्टी में दबा देना चाहिए। तत्पश्चात् केवल 100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 16 किलोग्राम फास्फोरस और 28 किलोग्राम पोटाश की धान रोपाई एवं फसल उत्पादन के लिए आवश्यकता होगी।
5. धान खाद (धान का भूसा, ताजा गोबर के साथ) + यूरिया: डीएपी: एमओपी (81:15:19 किलोग्राम/एकड़): इस अवशेष पोषक प्रबंधन पद्धति में पिछले वर्ष उत्पादित धान का पुआल कम्पोस्ट बनाने में प्रयोग होता है। धान के पुआल को चारा मशीन की सहायता से 5 सेंमी. के टुकडों में काटा जाता है। धान रोपाई के तीन महिने पहले कम्पोस्टिंग हेतु क्रमानुसार 5 सतह

(प्रत्येक सतह 10 सेंमी. मोटाई) में 50 किलोग्राम ताजा गोबर व 100 किलोग्राम धान पुआल फर्श पर बिछा देते हैं। गोबर का 100 प्रतिशत तरल घोल बनाया जाता है। सतह बिछाने के दौरान, तरल घोल में *ट्राईकोडरमा,* जैसे *ट्राईकोडरमा, विरीडी* और *ट्राईकोडरमा, हारजिएनम 1* किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम पुआल की दर से मिलाते है ताकि विघटन प्रतिक्रिया शीघ्र हो सके। धान खाद को तीन माह पश्चात् परिपक्व अवस्था में 10 टन प्रति हैक्टर या 4 टन/एकड की दर से धान रोपाई के पूर्व खेत में डाला जाता है। इस प्रक्रिया के पश्चात केवल 100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 16 किलोग्राम फास्फोरस और 28 किलोग्राम पोटाश की धान रोपाई एवं फसल उत्पादन के लिए आवश्यकता होगी।

निष्कर्ष

आंशिक रूप से सुधरी क्षारीय मिट्टी में संस्तुत की गई उपरोक्त एकीकृत अवशेष पोषण पद्धति प्रबंधन द्वारा पारंपरिक पद्धति की अपेक्षा 56, 62 और 67 प्रतिशत क्रमानुसार नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश की बचत होती है। इसके अलावा यह पद्धतियाँ पर्यावरण परिवर्तन और प्रदूषण रोकने में भी सहायक होती है तथा किसानो के आर्थिक लाभ में बढोत्तरी करती है।

समाप्त

अज्ञानी होना उतनी शर्म की बात नहीं है जितना कि सीखने की इच्छा न रखना।

बारानी क्षेत्रों में उपलब्ध सीमित जल से फसल उत्पादन बढ़ाने हेतु उपाय

बाबू लाल मीणा, रामेश्वर लाल मीणा, मनीष पाण्डेय एवं अश्वनी कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

भारतवर्ष के कुल कृषि उत्पादन में बारानी क्षेत्रों की खेती का महत्त्वपूर्ण योगदान है जिसके अंतर्गत हमारे देश में बारानी खेती के अंतर्गत 82 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल है जोकि कुल कृषि क्षेत्रफल 141 मिलियन हैक्टर का 60 प्रतिशत है। देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन का 44 प्रतिशत बारानी क्षेत्रों (वर्षा आधारित खेती) से प्राप्त होता है एवं भारत की 40 प्रतिशत मानव एवं 60 प्रतिशत पशु आबादी इन क्षेत्रों पर निर्भर है। फसलों के आधार पर कुल मोटे अनाजों का 95 प्रतिशत, दलहनों का 91 प्रतिशत, तिलहनों का 80 प्रतिशत एवं कपास का 65 प्रतिशत फसल क्षेत्र बारानी खेती के अंतर्गत आता है। वर्ष 2011–12 में देश का खाद्यान्न उत्पादन लगभग 257 मिलियन टन रहा जबकि 2020 तक लगभग 300 मिलियन टन खाद्यान्न की आवश्यकता होगी। इस प्रकार आने वाले समय में इसी सीमित कृषि क्षेत्र से 43 मिलियन टन अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन करना होगा, परिणास्वरूप मृदा पर अतिरिक्त दबाव पड़ेगा। सघन खेती के कारण हमारे देश में लगभग सभी कृषि उत्पादन प्रणालियों की उपज संतृप्त अवस्था में पहुँच चुकी है एवं फसलों की उत्पादकता कम हो रही है। जल संसाधनों की कमी के कारण देश के सिंचित क्षेत्र में वृद्धि करना लगभग नामुमकिन है एवं भविष्य की खाद्यान्न आवश्यकता इस बात पर निर्भर है कि उत्पादन बढ़ाने के लिए बारानी फसलों या बारानी क्षेत्रों का किस प्रकार समुचित प्रबंधन किया जाये। हम जानते हैं कि बारानी खेती पूर्णतया वर्षा पर आधारित होती है एवं फसल उत्पादन में पानी की कमी एक बहुत बड़ी समस्या है अतः इन क्षेत्रों में जल की एक–एक बूंद का समुचित एवं दक्ष उपयोग करना बहुत आवश्यक है।

जलवायु और बारानी क्षेत्र

बारानी क्षेत्रों में कम वर्षा एवं अधिक तापमान के कारण सापेक्ष आर्द्रता बहुत कम होती है जिससे मृदा सतह से वाष्पीकरण एवं वाष्पोत्सर्जन के रूप में जल की अधिक हानि होती है। इन क्षेत्रों में तापमान मई–जून के दौरान 50 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि हमारे देश में कुल वर्षा के पानी का लगभग 75 से 80 प्रतिशत दक्षिण–पश्चिमी मानसून (जून से सितम्बर) के दौरान प्राप्त होता है तथा इस दौरान वर्षा के समान वितरण एवं सघनता में भी भिन्नता पायी जाती है। बारानी क्षेत्रों में फसल उत्पादन पूर्णतया वर्षा पर आधारित होता है। बारानी क्षेत्रों में मृदा एवं फसल संबंधित निम्नलिखित समस्याएं रहती है।

मृदा समस्याएं

बारानी क्षेत्रों में मुख्यतयाः भूरी बलुई, काली, लाल एवं जलोढ़ मृदाएँ पायी जाती है। अलग–अलग मृदा समूहों में फसल की अधिक उपज लेने में भिन्न–भिन्न समस्याएं आती है जिनमें से मुख्य समस्याएं इस प्रकार हैः

- अधिक तापमान एवं कम वर्षा के कारण इन मृदाओं में जैविक क्रियाशीलता एवं कार्बनिक पदार्थ घट जाने से जल धारण क्षमता कम होती है।

तालिका 1: बारानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फसल प्रणालियाँ

एकल फसल प्रणालियाँ	अन्तःफसलीकरण प्रणालियाँ	दोहरी फसल प्रणालियाँ
बाजरा/ज्वार/मक्का	बाजरा + मूंग	मूंग/उड़द–सरसों
अरहर/मूंग/उड़द/लोबिया	अरहर + मूंग/उड़द/ सोयाबीन	मक्का–गेहूँ/जौ
मूंगफली/सोयाबीन	गेहूं + सरसों	मक्का–सरसों/चना
ग्वार	सरसों + चना	बाजरा–सरसों/चना
तोरिया/सरसों/तारामीरा	सरसों + मसूर	ग्वार–सरसों
चना/मसूर	चना + अलसी	मूंग/उड़द–गेहूं/जौ

तालिका 2: असिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फसलें एवं उन्नत किस्में

बाजरा	एच.एच.बी. 67, डब्लू.सी.सी. 75, पूसा 383, पूसा 443, पूसा 23, पूसा 612, आर.एच.डी. 30
ज्वार	सी.एस.एच. 14, सी.एस.एच. 13, सी.एस.एच. 6, एम 35–1, जे.एस. 20, सी.एस.बी. 15
अरहर	पूसा अगेती, शारदा, आई. सी.पी.एल. 87, सी. 11, पूसा 2001, पूसा 992, पी.पी.एच. 4
मूंग	पूसा बैशाखी, आर.एस. 4, आशा, के. 851, पूसा विशाल, पूसा 672, पूसा रतना
मोठ	जड़िया, ज्वाला, मरू मोठ 1, मरू बहार, आर.एम.ओ. 40, एके.एम.ओ. 35
उड़द	कृष्णा, टी. 9, बसंत बहार, पंत उड़द 40
ग्वार	दुर्गापुरा सफेद, एफ.एस. 277, आर.जी.सी. 1002, आर.जी.सी. 1003, मरू ग्वार
तिल	टी.सी. 46, टी. 13, आर.टी. 124, आर.टी. 125, प्रताप, पूर्वा 1
अरंड़ी	अरूणा, ज्योति, जी.सी.एच. 4, पी.सी.एच. 1, भाग्य, टी.एम.वी. 5
जौ	रत्ना, आजाद, आर.डी. 2052, आर.डी. 2035, कैलाश, आर.डी. 2592, आर.ड़ी. 2508, पी.एल. 419, आर.डी. 2624, के. 560, वी.एल.बी. 56
गेहूँ	सी. 306, डब्लू.एच. 410, पी.बी.डब्ल्यू 396, अमर, एच.आई. 1500, एच.डी.आर. 77, एच.ड़ी. 2888, एच.आई.1531, एच.ड़ब्ल्यू 2004
सरसों	पूसा बारानी, पूसा बहार, रजत, आर. बी. 50, गीता, अरावली, पी.बी.आर. 97
तारामीरा	करण तारा, टी 27, आर.एम.टी 1, आर.एम.टी. 2, आर.एम.टी. 314
चना	पूसा 1053, पूसा 256, पूसा 362, पूसा 1108, पूसा 2024

- इन मृदाओं में प्रायः कार्बनिक पदार्थ की मात्रा 0.5 प्रतिशत से भी कम होती है।
- इन मृदाओं का कणाकार प्रायः रेत के कणों के बराबर होने से वर्षा के दौरान निक्षालन के साथ मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की हानि होना।
- वायु क्षरण द्वारा मृदा की उर्वराशक्ति एवं उत्पादकता में कमी आना।

फसल संबंधित समस्याएं

- इन क्षेत्रों के किसानों द्वारा फसल उत्पादन हेतु आधुनिक कृषि यंत्रो का फसल प्रणालियों में उपयोग नहीं करना।
- अधिक तापमान सहन करने वाले खरपतवारों का बार–बार उगना आदि।
- बारानी क्षेत्रों में अधिक उत्पादन हेतु उगाई जाने वाली फसलों की नई किस्मों को न अपनाना।

बारानी क्षेत्रों के लिए फसल उत्पादन तकनीकियाँ

बारानी क्षेत्रों में फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए मृदा एवं फसल प्रबंधन की कुछ महत्वपूर्ण तकनीकियाँ इस प्रकार है:

फसल प्रबंधन

फसल प्रबंधन के तहत फसल प्रणालियाँ, उचित फसलों का चयन एवं अन्य सस्य क्रियाओं को अपनाकर इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं।

फसल प्रणाली: बारानी क्षेत्रों में पानी की कम मांग वाली अनाज फसलों को दलहनी फसलों के साथ या चक्र में बुवाई करनी चाहिए। इन क्षेत्रों के लिए फसल प्रणालियाँ मुख्यतः तीन प्रकार की होती है:

(क) एकल फसल प्रणाली मुख्यतः उन क्षेत्रों मे अपनायी जाती है जहाँ वार्षिक वर्षा 500 मि.मी. से कम होती है व सिंचाई की व्यवस्था नहीं होती है तथा एक फसल लेना ही संभव हो पाता है।

(ख) अंतर फसल प्रणाली उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है जहाँ वार्षिक वर्षा 600 से 800 मि.मी. होती है और इसमें दो या दो से अधिक फसलें एक साथ अलग–अलग कतारों में लगायी जाती है।

(ग) दोहरी फसल प्रणाली उन बारानी क्षेत्रों में उपयुक्त होती है जहाँ वार्षिक वर्षा 800–1000 मि.मी. होती है वहाँ खरीफ मौसम में वर्षा पर निर्भर रहने वाली फसल जबकि रबी में संचित जल का उपयोग करने वाली फसल की बुवाई करनी चाहिए। उत्तरी भारत के लिए उपयुक्त फसल प्रणालियाँ तालिका 1 में दी गयी है।

तालिका 3: वर्षा आधारित फसलों के लिए बीज दर एवं बुवाई दूरी

फसल	बीज दर (किलोग्राम/हैक्टर)	कतार से कतार की दूरी (सेंमी.)	पौधे से पौधे की दूरी (सेंमी.)
चना	80–100	30	10
ज्वार	10–12	45	10–12
मक्का	20	60–75	20–25
बाजरा	5	45–60	10
मूंग, उड़द, चंवला	20–25	30	10
तिल	4–5	30	10

उचित फसलों एवं किस्मों का चयन: बारानी क्षेत्रों के लिए मुख्यतः बाजरा, ज्वार, मक्का, मूंग, उड़द, तिल, अरहर, चंवला आदि फसलों का चयन करना चाहिए। इन फसलों की जल मांग भी कम होती है जिससे कम जल उपलब्धता में भी ये फसलें आसानी से उगाई जा सकती हैं। उत्तर–पश्चिमी भारत की कुछ मुख्य फसलों की किस्में तालिका 2 में दी गई है।

अन्य सस्य क्रियाएं: बारानी क्षेत्रों में अधिक उपज प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सस्य क्रियाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है:

- खरीफ फसलों की बुवाई जुलाई के प्रथम पखवाड़े में करना उचित रहता है तथा रबी फसलों की बुवाई मध्य सितम्बर से मध्य अक्तूबर तक कर देनी चाहिए। समय पर बुवाई करने से बीज अंकुरण अच्छा होता है तथा बीमारियाँ एवं कीट कम लगते हैं।

- बारानी क्षेत्रों में सामान्य से 20 से 25 प्रतिशत अधिक बीज दर का उपयोग करें तथा प्रति हैक्टर पौधों की संख्या सिंचित क्षेत्रों से कम रखें। कुछ मुख्य बारानी फसलों के लिए बीजदर एवं बुवाई दूरी संबंधित जानकारी तालिका 3 में दी गई है।

वर्षा से पहले खेत तैयार कर लें एवं संरक्षित नमी में बीज की उचित गहराई पर बिजाई कर दें जिससे बीज अंकुरण एवं फसल उत्पादन अच्छा होता है। वर्षा के साथ बुवाई करने से मृदा से नमी का नुकसान भी कम होता है।

मृदा प्रबंधन

मृदा प्रबंधन के तहत सूखाग्रस्त क्षेत्रों में फसल उत्पादन के लिए मृदा में पोषक तत्व प्रबंधन, नमी संरक्षण एवं इनके दक्ष उपयोग के लिए भूमि विन्यास के अनुरूप निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन

बारानी क्षेत्रों की मृदाएं प्यासी ही नहीं परन्तु भूखी भी रहती हैं, क्योंकि इन क्षेत्रों में मृदा व जल क्षरण के कारण तथा कम पोषक तत्वों के प्रयोग से मृदा उर्वरता कमजोर रहती है। बारानी क्षेत्रों में उर्वरकों का प्रयोग बुवाई से पूर्व ही करना चाहिए, क्योंकि बाद में नमी की कमी के कारण उर्वरक प्रयोग संभव नहीं हो पाता है। नमी की कम उपलब्धता के कारण इन क्षेत्रों की मृदाओं में रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से फसल व मृदा गुणवत्ता खराब हो जाती है, अतः इन स्थितियों में मृदा की

तालिका 4: विभिन्न फसलों के लिए समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन

फसल	पोशक तत्व (कि.ग्रा./हैक्टर)			समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन
	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	
ग्वार	15	60	0	राइजोबियम कल्चर के साथ बीज उपचार
ज्वार	60–90	20–30	0	5 टन/है. गोबर की खाद
बाजरा	60–80	30–40	0	5 टन/है. गोबर की खाद
मूंग, उड़द, चंवला	20–30	30–40	0	राइजोबियम कल्चर के साथ बीज उपचार
चना, मसूर	15–20	30–40	0	राइजोबियम कल्चर के साथ बीज उपचार
कपास	20–25	30–40	0	मूंग के साथ अन्तः सस्य एवं गोबर की खाद का उपयोग
सरसों	30	60		5 टन/है. गोबर की खाद एवं एजोटोबैक्टर के साथ बीज उपचार

उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिऐ समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन आवश्यक होता है। इस तकनीक में पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति करने के लिए उर्वरकों के साथ जैविक, हरी एवं जीवाणु खादों का उपयोग किया जाता है। कार्बनिक खाद जैसे गोबर की खाद (5–10 टन/हैक्टर), कम्पोस्ट (5–8 टन/हैक्टर), केंचुआ खाद (3–6 टन/हैक्टर), हरी खाद जैसे ढ़ैंचा, ग्वार, मूंग, चंवला इत्यादि, फसल अवशेष, जैव उर्वरक आदि का प्रयोग करने से भूमि की उर्वराशक्ति दीर्घ अवधि तक बनी रहती है। जीवाणु खादों जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरीलम, फास्फोरस घुलनशील बैक्टीरिया, वैसिकुलर आर्बस्कुलर माइकाराईजा आदि के उपयोग से फसल उत्पादन में 20 से 40 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है। कुछ मुख्य फसलों के लिए समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन तकनीकें तालिका 4 में दी गई है।

समन्वित पोषक तत्व में जैविक खादों के प्रयोग से मृदा में निम्नलिखित लाभ हैः–

- जैविक खादों में पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में रहते हैं एवं इस खाद में मृदा की प्राकृतिक उर्वराशक्ति को फिर से जीवित करने की क्षमता होती है। इसलिए इस खाद को प्रयोग करने के बाद इसका असर लंबे समय तक बना रहता है। जैविक खाद भूमि के वायु परिसंचरण एवं जल धारण क्षमता को सुधारती है तथा फसलों के जड़ फैलाव में भी वृद्धि करती है।
- कार्बनिक खादों में बहुत से ह्युमिक अम्ल रहते हैं जिनका कार्य पौधों की बढ़वार में वृद्धि के साथ ही धनायन विनिमय क्षमता व भूमि की भौतिक दशा सुधारना होता है।
- हरी खाद के रूप में दलहनी फसलें उगाने से अगली फसल की 20–25 प्रतिशत नाइट्रोजन की पूर्ति हो जाती है।

बारानी क्षेत्रों में उगाई गई तिलहन एवं दलहनी फसलों में 250 कि.ग्रा./हैक्टर जिप्सम का प्रयोग करना चाहिए जो गंधक एवं कैल्शियम की पूर्ति करता है। यदि खड़ी फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई देने लगे तथा मृदा में नमी की कमी के कारण उर्वरक प्रयोग संभव नहीं हो तो इस दशा में उर्वरकों का पर्णीय छिड़काव लाभदायक होता है। नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए अनाज वाली फसलों में 3 प्रतिशत यूरिया व दलहनी फसलों में 2 प्रतिशत डी.ए.पी. का छिड़काव करने से पोषक तत्वों की पूर्ति के साथ–साथ कुछ मात्रा में पानी भी प्राप्त हो जाता है। बारानी क्षेत्रों में सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे लौहा, जस्ता, एवं बोरोन की भी कमी पायी जाती है, इस दशा में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट, 1.0 प्रतिशत फेरस सल्फेट तथा 0.3 प्रतिशत बोर्डेक्स मिश्रण का छिड़काव करने से क्रमशः जस्ता, लौहा व बोरोन की कमी को दूर किया जा सकता है।

मृदा नमी का संरक्षण एवं दक्ष उपयोग

असिंचित क्षेत्रों की फसलों में होने वाली नमी के ह्रास को कम करके उसका दक्ष उपयोग करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं:

- बारानी क्षेत्रों में खरपतवारों से वाष्पोत्सर्जन द्वारा मृदा से नमी ह्रास को रोकने के लिए खरपतवार नियंत्रण हेतु फसल अवशेष, पोलीथीन, व पलवार (मल्च) का उपयोग करना चाहिए।

(अ) (ब) (स)

अ) बारानी क्षेत्रों में उपलब्ध नमी में बाजरे की फसल (ब) ऊपरी पपड़ी को तोड़कर व (स) पलवार से मृदा नमी का संरक्षण

- फसल में 20 से 40 दिन की अवस्था में निराई–गुड़ाई करने से भूमि की ऊपरी परत टूट जाने से नमी का वाष्पीकरण द्वारा नुकसान एवं खरपतवार का नियंत्रित किया जा सकता है।
- गर्मी में गहरी जुताई करें व वर्षा उपरांत जुताई करके पाटा लगाकर मृदा नमी का संरक्षण करना चाहिए।
- वाष्पोत्सर्जन रोधी रसायनों जैसे केओलिन (6 प्रतिशत) व साइकोसिल (0.03 प्रतिशत) का उचित अवस्था पर छिड़काव करें।
- पत्तियों को मुरझाने से बचाने के लिए पोटेशियम का पर्णीय छिड़काव (0.5 प्रतिशत) करें तथा पुरानी पत्तियों को निकाल दें।
- मृदा नमी संरक्षण के लिए पोलीमर्स जैसे–हाइड्रोजेल (2.5–5.0 कि.ग्रा./हैक्टर) का प्रयोग करें।

जल संचय के लिए भूमि विन्यास

भूमि विन्यास का अभिप्राय भूमि की आकृति में परिवर्तन से है जिससे मृदा में अधिक जल का संचय किया जा सके। अतः बारानी क्षेत्रों में जल के दक्ष उपयोग हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय इस प्रकार हैं:

(अ) अंतः क्यारी एवं अंतः पंक्ति जल संचयनः जिन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 250 मि.मी. से कम होती है उन क्षेत्रों में क्यारी के कुछ भाग में फसल उगाकर बचे भाग में जल संचयन किया जा सकता है। अंतः क्यारी विधि में दो क्यारियों के मध्य कुछ जगह खाली छोड़ दी जाती है जिसमें वर्षा का अतिरिक्त जल संचित किया जा सकता है। इसी प्रकार बाजरा, ज्वार, मक्का आदि फसलों में दो पंक्तियों के मध्य भी जल संचयन किया जा सकता है। इस विधि में खेत में मेड़ एवं नालियाँ बना दी जाती है, मेड़ पर फसल लगायी जाती है व नालियों में वर्षा जल का संचय किया जाता है। अधिक वर्षा की दशा में नालियों का उपयोग जल निकास के लिए किया जा सकता है।

(ब) चौड़ी क्यारी एवं खूड विधिः इस विधि का प्रयोग आजकल बारानी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इस विधि में खेत में लगभग 100 से 120 सेंमी. चौड़ी क्यारियाँ बनाई जाती है एवं प्रत्येक क्यारी के बाद 40 से 60 सेंमी. चौड़ा व 15 से 20 सेंमी. गहरा खूड बनाया जाता है। क्यारियों में फसल की बुवाई की जाती है एवं नालियों को जल संचयन के लिए उपयोग किया जाता है।

(स) संकरी क्यारी एवं खूड विधिः यह विधि चौड़ी क्यारी एवं खूड विधि के समान ही है परन्तु इस विधि में क्यारी की चौड़ाई 60 से 75 सेंमी. एवं खूड की चौड़ाई 30 से 40 सेंमी. तक रखी जाती है।

(द) पूरक मेड़बंदीः जिन क्षेत्रों में भूमि का ढलान 1 प्रतिशत से कम होता है उन क्षेत्रों के लिए यह जल संचयन का एक सरल एवं सस्ता तरीका है। इस विधि में खेत को मेड़बंदी द्वारा छोटे–छोटे भागों में विभाजित कर दिया जाता है जिससे प्रारंभिक वर्षा जल का अधिक से अधिक संचयन किया जा सके। मेड़बंदी करने से पानी का बहाव कम होता है व पानी की मृदा में प्रवेश दर में वृद्धि होती है।

(य) मृत खूड़ः इस विधि में पानी के बहाव के रास्ते में ढलान के विपरीत खूड बनाये जाते हैं। फसल बुवाई के साथ या बुवाई के तुरंत बाद 2 से 5 मीटर दूरी पर या 6 से 8 फसल पंक्तियों के बाद 20 से 25 सेंमी. गहरे खूड बनाये जाते है। यह विधि लाल मिट्टी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त रहती है। मृत खूड में फसल नहीं उगायी जाती है। मृत खूड से पानी का बहाव कम होता है जिससे पानी की मृदा में प्रवेश दर में वृद्धि होती है।

निष्कर्ष

बारानी क्षेत्रों में उचित मृदा जल एवं फसल प्रबंधन करने से सिंचित क्षेत्रों पर पड़ने वाले दबाव को कुछ कम करके फसल उत्पादन प्रणाली को टिकाऊ बनाया जा सकता है। इन तकनीकियों को अपनाकर बारानी क्षेत्रों में उपलब्ध पानी का उचित उपयोग करके फसल उत्पादन बढ़ाकर देश के खाद्यान्न भण्डार में योगदान किया जा सकता है।

समाप्त

लवणीय मृदाओं में जामुन की व्यवसायिक खेती

राजकुमार, अंशुमान सिंह, अश्वनी कुमार एवं राजेन्द्र कुमार यादव

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

जामुन एक लोकप्रिय स्वदेशी फल है। इसे विभिन्न स्थानीय नामों जैसे राजमन, काला जामुन, जमाली, ब्लैकबेरी आदि नाम से भी जाना जाता है। जामुन के फलों का आयुर्वेदिक दवाओं में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, विशेषकर मधुमेह रोगियों के लिए यह फल बहुत लाभदायक है। इन लाभों एवं गुणों के बावजूद भारत में जामुन की बौनी व अधिक उपज देने वाली किस्मों की अनुपलब्धता और इसकी खेती के लिए अपनायी जाने वाली पद्धतियों की समुचित जानकारी उपलब्ध न होने से जामुन की सुनियोजित व्यवसायिक खेती नहीं की जा रही है। इस लेख में जामुन की खेती संबंधी विभिन्न वैज्ञानिक जानकारियों को सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है।

जामुन के वृक्ष सदाबहार और लंबे होते हैं। वृक्षों का उपयोग प्रायः सड़कों और रास्तों पर छाया उपलब्ध कराने हेतु व तेज हवाओं को रोकने के लिए किया जाता है। जामुन की उत्पत्ति भारत में मानी गयी है। यह थाईलैंड, फिलीपींस, इण्डोनेशिया, मेडागास्कर और कुछ अन्य देशों में भी पाया जाता है। जामुन की खेती संयुक्त राज्य अमेरिका, अल्जीरिया व इजराइल सहित कई अन्य उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सफलतापूर्वक शुरू की गई है।

सुधरी क्षारीय भूमि पर जामुन का बगीचा

भारत में, जामुन के पेड़ों की अधिकतम संख्या उष्णकटिबंधीय और उप–उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाती है परन्तु कुछ स्थानों पर इसके पेड़ 1600 मीटर की ऊँचाई तक भी पाए जाते हैं। यह व्यापक रूप से दक्षिण में तमिलनाडु और उत्तर में गंगा के मैदानी क्षेत्रों तक विभिन्न कृषि जलवायु परिस्थितियों में पाया जाता है।

मृदा

जामुन की व्यवसायिक खेती लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में संभव है। हालांकि, पेड़ों की अच्छी वृद्धि, अधिक फल उपज और गुणवत्ता हेतु दोमट मिट्टी और अधिक जल धारण शक्ति वाली मृदाएँ उत्तम मानी जाती है। ऐसी मृदा जो पर्याप्त नमी बरकरार रखती हो, जामुन के विकास और अच्छी फलत के लिए लाभकारी होती है। जामुन के पेड़ लवणीय और जलभराव वाली संवेदनशील मृदाओं में भी रोपित किये जा सकते हैं। बहुत भारी या हल्की रेतीली मिट्टी जामुन के लिए उपयुक्त नहीं होती है।

जलवायु

जामुन को ज्यादातर उष्णकटिबंधीय और उप–उष्णकटिबंधीय जलवायु में उगाया जाता है। हालाँकि, हिमालय के कुछ निचले स्थानों में 1600 मीटर की ऊँचाई तक भी जामुन के पेड़ पाये जाते हैं। फल लगने के समय शुष्क मौसम सर्वोत्तम होता है। उप–उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में, बारिश का होना फलों के रंग, आकार, व स्वाद के समुचित विकास हेतु फायदेमंद माना जाता है।

प्रजातियाँ और किस्में

प्रजातियाँ

सीजीजियम जीनस मीर्टेसी कुल के अंतर्गत आता है। इस जीनस में लगभग 1200 प्रजातियाँ सम्मिलित है, जोकि दक्षिण–पूर्वी एशिया से लेकर अफ्रीका और मेडागास्कर तक पायी जाती है। इनमें से कुछ प्रजातियाँ फलों के लिए और कुछ सजावटी व अन्य औषधीय गुणों के लिए प्रसिद्ध है। सीजीजियम फ्रुटीकौसुम जंगली प्रजाति को फल उत्पादन के साथ–साथ एक

वायुरोधक वृक्ष के रूप में भी उगाया जाता है। इसके पेड़ बड़े एवं सदाबहार होते हैं जिनके ऊपर छोटे–छोटे गहरे बैंगनी रंग के फल लगते हैं, जिनमें बीज का आकार बड़ा होता है। इसके फलों में पकने के बाद भी कसैलापन पाया जाता है। दक्षिण भारत और पश्चिम बंगाल में लोकप्रिय सीजीजियम जम्बोस प्रजाति पायी जाती है, जिसके पेड़ सजावटी होते हैं और फलों का रंग पीला और स्वाद आमतौर पर फीका होता है, हालाँकि इनमें पैक्टिन की मात्रा ज्यादा होती है।

किस्में

जामुन की उगाई जाने वाली कोई भी मानक किस्म नहीं हैं। हालाँकि, उत्तर भारतीय परिस्थितियों में राम जामुन नामक सामान्य किस्म विकसित की गई है। इसके फल आकार में बड़े, लम्बे और पूर्ण परिपक्व होने की अवस्था में गहरे बैंगनी या नीले या काले रंग के होते हैं। पके फल का गूदा बैंगनी गुलाबी होता है और फल रसदार और मीठा एवं बीज आकार में छोटा होता है। इसके फल जून–जुलाई के महीने में पकते हैं जिनकी खपत ग्रामीण क्षेत्रों के साथ–साथ शहरी इलाकों में भी बहुत अधिक होती है।

जामुन की कुछ देर से पकने वाली किस्में भी होती है जिनमें फलों का आकार छोटा एवं गोल, और गहरे बैंगनी या काले रंग का होता है। गुद्दे का रंग, वजन, रस और मिठास राम जामुन की तुलना में कम होता है। इन किस्मों में फलों के बीज आकार में अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। इनके फल अगस्त के महीने में पकते है। वर्तमान में, भारत में जामुन में बहुत सारी विविधिता उपलब्ध है जोकि इसकी बेहतर किस्मों के चयन के लिए एक अच्छी संभावना प्रदान करता है।

प्रवर्धन

जामुन का प्रवर्धन बीज और वानस्पतिक दोनों तरीकों से किया जाता है। इसके बीज बहुभ्रूर्णीय प्रकृति के होते हैं, जिससे बीज के माध्यम से उत्पन्न पौधा मूल पौधे जैसा ही होता है। बीज द्वारा प्रवर्धन उचित नहीं होता है क्योंकि इसमें फलोत्पादन देर से होता है। इन कारणों से बीज द्वारा व्यवसायिक प्रवर्धन अभी भी एक मान्य पद्धति है। आजकल वानस्पतिक तरीकों से भी प्रवर्धन में आंशिक सफलता प्राप्त हुई है ।

इसके ताजा बीजों को बोया जा सकता है। बीजों का अंकुरण 10 से 15 दिनों में शुरू हो जाता है। बीज से उत्पन्न किए हुए पौधे बसंत (फरवरी–मार्च) या मानसून (अगस्त–सितंबर) में मूलवृन्त के रूप में उपयोग के लिए तैयार हो जाते हैं। जामुन का वानस्पतिक प्रवर्धन काफी सुगम और सुविधाजनक है। इसमें चश्मा विधि के लिए 10–14 मि.मी. मोटाई वाले, एक साल पुराने अंकुर वृंतों का प्रयोग किया जाता है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में इसके लिए सबसे अच्छा समय जुलाई–अगस्त है। हालाँकि, बारिश वाले क्षेत्रों में मई–जून उपयुक्त समय होता है। शील्ड, चश्मा विधि और फॉर्केट विधि जामुन में सफल सिद्ध हुई है। बेहतर सफलता के लिए फॉर्केट विधि या टी विधि को अपनाना चाहिए।

वर्षा ऋतु में लेनोलिन पेस्ट में 500 पीपीएम इंडोल बूटेरिक एसिड (आईबीए) के साथ गूटी बाँधकर लगभग 60 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त होती है। अर्ध–दृढ़ लकड़ी (20–25 सेंमी. लम्बी कलम) को 2000 पी.पी.एम. आईबीए का घोल लगाकर जुलाई में रोपित करने के बेहतर परिणाम होते है।

रोपण

जामुन एक सदाबहार पेड़ है। इसको दोनों मौसम, वसंत ऋतु यानी फरवरी–मार्च और जुलाई–अगस्त यानी मानसून में लगाया जा सकता है। फरवरी–मार्च में रोपित किये गए पेड़ों को गर्म और शुष्क (मई और जून) के महीनों को सहन करना पड़ता है, इसलिए रोपण के लिए जुलाई–अगस्त महीनों को बेहतर माना जाता है। रोपण करने से पहले खेत की अच्छी तरह से जुताई की जाती है। 1x1x1 मीटर आकार के गड्ढे 10 मीटर दूरी पर (दोनों तरफ) खोदे जाते हैं। आमतौर पर, गड्ढों की खुदाई का काम मानसून की शुरुआत से पहले पूरा हो जाना चाहिए। गड्ढों को 75 भाग ऊपरी मिट्टी और 25 भाग अच्छी तरह से सडे गोबर खाद या कम्पोस्ट मिश्रण से भरना चाहिए ।

उर्वरक एवं खाद

जामुन के पेड़ों में आम तौर पर खाद का उपयोग नहीं किया जाता है। वे बिना खाद के भी फल–फूल सकते हैं लेकिन जब तक पेड़ों पर फल नहीं लगते तब तक लगभग 25 किलोग्राम प्रति पेड़ और फल लगने वाले पेड़ों में 75 किलोग्राम गोबर की खाद प्रति पेड़ प्रति वर्ष के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए।

आम तौर पर, बीजीय जामुन के पेड़ 8 से 10 वर्ष की उम्र में फल देना शुरू करते हैं जबकि कलम से तैयार पेड़ 6 से 7 साल में ही फल देना शुरू कर देते हैं। उपजाऊ मिट्टी पर पौधों का

वानस्पतिक विकास ज्यादा होता है और फल लगने में देरी हो जाती है। अतः ऐसी भूमि में खाद और उर्वरक कम देने चाहिए और फरवरी–मार्च, सितम्बर–अक्तूबर में सिंचाई नहीं करनी चाहिए। इसलिए फल उत्पादक को खाद देने में सतर्कता बरतनी चाहिए और खाद एवं उर्वरकों की मात्रा को पेड़ों के विकास और फलने के हिसाब से ही समायोजित करना चाहिए।

सिंचाई

प्रारंभिक दौर में जब तक जामुन के पेड़ स्थापित नहीं हो जाते तब तक लगातार सिंचाई की आवश्यकता रहती है, लेकिन पेड़ लगाने के लगभग एक वर्ष बाद सिंचाई का अंतराल बढ जाता है। छोटे पेड़ों में वर्ष में 8 से 10 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। फल पकने के समय (मई–जून) सिंचाई की आवश्यकता होती है। सर्दियों के महीनों के दौरान जब मिट्टी सूख जाती है तब सिर्फ एक सिंचाई देनी चाहिए, इससे सर्दियों में ठंड़ के प्रभाव से पेड़ों का बचाव होता है।

अंतःसस्य क्रियाएँ

रोपण के प्रारंभिक वर्षों में बाग में काफी स्थान उपलब्ध होता है, जिसमें बरसात के मौसम में दलहनी फसलों और सब्जियों को उगाकर अतिरिक्त लाभ लिया जा सकता है।

कटाई–छँटाई

जामुन में नियमित कटाई–छँटाई की आवश्यकता नहीं होती है। हालाँकि, सूखी टहनियों और शाखाओं को हटा देना चाहिए। पौधों की कटाई–छँटाई इस तरह से करनी चाहिए कि शाखाएं जमीन से 60 से 100 सेंमी. ऊपर ही विकसित हों।

कीट एवं उनकी रोकथाम

जामुन में सफेद मक्खी और पत्तियां खाने वाली इल्ली पेड़ों को काफी नुकसान पहुँचाते हैं। इनका नियंत्रण निम्न विधि द्वारा किया जा सकता है।

सफेद मक्खी

सफेद मक्खी का प्रकोप भारत के सभी हिस्सों में देखा गया है। सफेद मक्खी प्रभावित फलों की सतह पर कीड़ों की उपस्थिति मिलती है। सफेद मक्खी को निम्न तरीकों से नियंत्रित किया जा सकता हैः (अ) पेड़ के चारों ओर स्वच्छता बनाए रखें। (ब) सभी प्रभावित फलों को नष्ट कर दें। (स) प्रभावित फलों और कीड़ों की सुप्तावस्था (प्यूपा) को पेड़ के तने के चारों ओर मिट्टी को खोदकर इसमें ही नष्ट कर देना चाहिए।

पत्ता खाने वाली इल्ली

यह इल्ली केवल कोयंबटूर में पाया जाती है। यह कीट पत्तियों को प्रभावित करता है और कई बार पूरे के पूरे वृक्ष को पत्ती रहित बना देता है। इसको रोगोर 30 ईसी या मेलाथियान 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करके नियंत्रित किया जा सकता है।

रोग

श्यामवर्ण कवक रोग (*ग्लोमेराला सिंगुलटा*)

जामुन के रोगों में यह रोग अधिक पाया जाता है। इस कवक जनित रोग से पत्तियों पर धब्बे बन जाते हैं और फलों से सड़ांध आने लगती है। प्रभावित पत्तियों पर छोटे–छोटे हल्के भूरे या लाल भूरे रंग के धब्बे दिखाई देने लगते हैं और प्रभावित फलों पर काले रंग के धब्बे बनने शुरू हो जाते हैं तथा अंत में, फल सड़कर सूख जाते हैं। डाइथेन जेड–78 का 0.2 प्रतिशत या बोर्डेक्स मिश्रण (4:4:50) का एक साथ छिड़काव करने से बीमारी की रोकथाम की जा सकती है।

फूल और फलन

फूल टहनियों पर पत्तियों की धुरी में उत्पन्न होते हैं। उत्तर भारत की जलवायु परिस्थितियों में इसके फूल मार्च के पहले सप्ताह में शुरू होकर अप्रैल के अंत तक आते रहते है। परागण मौसम के शुरूआत में अधिक रहती है। वर्तिका की अधिकतम ग्रहणशीलता फूल खिलने के एक दिन बाद तक बनी रहती है। जामुन एक पर–परागित वृक्ष है और इसमें परागण मधु मक्खियों, मक्खियों और वायु के माध्यम से होता है। अधिक फलन के लिए हाथ से भी परागण किया जा सकता है।

फूल खिलने के 3 से 4 सप्ताह तक फूलों और फलों में टूटकर गिरना एक स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। प्राकृतिक फूल जब पूरी तरह से खिलना बंद कर देते हैं और फलों की प्रारंभिक अवस्था के बाद जिर्बेलिक अम्ल 60 पी.पी.एम. के घोल का दो बार छिड़काव करके फूलों एवं फलों का गिरना कुछ कम किया जा सकता है।

जामुन के फल के विकास को तीन चरणों में बांटा जा सकता हैः पहले चरण में फल आने के बाद 15–52 दिनों तक फल की धीमी

तालिका 1 : जामुन फल के पौष्टिक गुण

पोषक तत्व	प्रतिशत मात्रा	पोषक तत्व	प्रतिशत मात्रा
नमी	28.2	कार्बोहाइड्रेट	19.7
प्रोटीन	0.7	कैल्शियम	0.02
वसा	0.1	फॉस्फोरस	0.01
खनिज	0.4	लौहा	1.0
रेशा	0.9	कैलोरी मान (जूल)	83/100

वृद्धि होती है। दूसरे चरण में फल आने के 52 से 58 दिन बाद तेजी से विकास और तीसरे चरण में फल आने के बाद 58 से 60 दिनों तक अंतिम चरण में धीमी गति से विकास और फल के वजन में बहुत कम बढ़वार होती है।

कटाई एवं उपज

जामुन के कलमी पौधे रोपण के 6 से 7 वर्ष बाद फल देना शुरू कर देते हैं। बीजीय जामुन के पौधे रोपण के 8 से 10 वर्ष बाद फल देना शुरू करते हैं। हालांकि, व्यवसायिक स्तर पर फलोत्पादन रोपण के 8 से 10 वर्ष के बाद ही शुरू होता है तथा 50 से 60 वर्ष तक जारी रहता है। जामुन के फल जून–जुलाई के महीने में पकते हैं। पूर्ण रूप से पके हुए फल की मुख्य विशेषता गहरे बैंगनी या काले रंग का हो जाना होता है। पकने के बाद फल को पेड़ पर नहीं रहने देना चाहिए। फलों की तुडाई कंधे पर बैग लटकाकर पेड़ पर चढ़कर की जाती है। फलों की तुडाई के समय संभावित नुकसान से बचने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए। एक पूर्ण विकसित बीजीय पेड़ से फल की औसत उपज 80 से 100 किलोग्राम प्रति वर्ष तक और एक कलमी पौधे से 60 से 70 किलोग्राम प्रति वर्ष तक होती है।

भण्डारण एवं विपणन

जामुन के फल बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं। इनको साधारण परिस्थितियों में 3 से 4 दिनों के लिए भंडारित किया जा सकता है। हालांकि, 8 से 10 डिग्री सेल्सियस तापमान व 85 से 90 प्रतिशत सापेक्षिक आर्द्रता पर पॉलिथीन बैग में अच्छी तरह से पैक फलों को लगभग तीन सप्ताह के लिए संग्रहित किया जासकता है। विपणन के लिए पके और स्वस्थ फल ही चुनने चाहिए। क्षतिग्रस्त, रोगग्रस्त और अपरिपक्व फलों को खारिज कर देना चाहिए। इन चयनित फलों को सावधानीपूर्वक लकड़ी के बॉक्स में पैक करके स्थानीय बाजारों में भेजना चाहिए।

संरचना एवं उपयोग

जामुन का फल 70 प्रतिशत खाने योग्य होता है। इसमें ग्लूकोज और फ्रक्टोज दो मुख्य शर्करा के स्रोत होते हैं। जामुन के फलों में काफी पोषक तत्व मौजूद होते हैं। अन्य फलों की तुलना में यह कम कैलोरी प्रदान करता है। इस फल के बीज में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और कैल्शियम की अधिकता होती है। इसमें विटामिन बी, कैरोटिन, मैग्नीशियम और रेशे होते हैं। इसके पोषक तत्व तालिका 1 में दिए गए है।

जामुन के औषधीय गुण

जामुन के फलों में अम्लीयता और कसैलापन होने के साथ स्वाद में मीठापन होता है। इनकी अम्लीय प्रकृति के कारण फलों को नमक के साथ खाया जाता है। मधुमेह के उपचार के लिए, पाचन शक्ति मजबूत करने और यकृत (लिवर) से जुड़ी बीमारियों के बचाव में जामुन रामबाण साबित होता है। इसकी गुठली में जंबोलीन नामक ग्लूकोसाइट पाया जाता है जो स्टार्च को शर्करा में परिवर्तित होने से रोकता है, जिससे मधुमेह के नियंत्रण में सहायता मिलती है। जामुन के कच्चे फलों का सिरका बनाकर पीने से पेट के रोग ठीक होते हैं। जामुन में विटामिन बी और लौहा पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। एनीमिया (खून की कमी) दूर करने और रक्त में हीमोग्लोबिन बढ़ाने के लिए जामुन का सेवन लाभप्रद है।

समाप्त

भिण्डी के संकर बीज उत्पादन का महत्व एवं तकनीक

सतीश कुमार सनवाल एवं प्रबोध चन्द्र शर्मा

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

किसी भी सब्जी उत्पादक के लिए बीज अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। अच्छी फसल के लिए अच्छे एवं शुद्ध बीजों का होना आवश्यक है। गुणवत्ता वाले शुद्ध बीज उत्पादन के लिए उन कारको की जानकारी आवश्यक है जो बीज की शुद्धता तथा गुणवत्ता ह्रास का कारण हो सकते हैं क्योंकि बीजों की गुणवत्ता केवल अनुवांशिक कारको पर ही नहीं बल्कि वातावरणीय कारकों तथा फसल क्रियाओं पर भी निर्भर करती है। सब्जियों का संकर बीज उत्पादन किसानों के लिये एक लाभदायक व्यवसाय है।

तालिका 1: सब्जियों के संकर बीजों की अनुमानित मांग

सब्जी	संकर बीजों की मांग (मीट्रिक टन)
भिण्डी	1700
कद्दू वर्गीय	800
तरबूज	130
गोभी वर्गीय	110
टमाटर	90
मिर्च	80
बैंगन	75
खीरा	30
शिमला मिर्च	4

सब्जियों में बीज बदलाव दर लगभग 80 प्रतिशत है और अगले दो–तीन सालों में यह 100 प्रतिशत होने की संभावना है। संकर बीजों के कारण भारत में प्रति हैक्टर सब्जियों का उत्पादन बहुत बढ़ा है। 2000–2001 में प्रति हैक्टर सब्जी उत्पादकता 15 टन थी जो अब बढ़कर 17.5 टन हो गयी है। अच्छी व अधिक पैदावार के लिये उत्तम गुणों वाले संकर बीजों का उपयोग आवश्यक है। आज सब्जी फसलों की खेती किसानों की आय बढ़ाने में अधिक सक्षम है। लेकिन किसानों को अपनी आवश्यकता के अनुसार सब्जियों का बीज उपलब्ध नहीं हो पाता है। भारत में विभिन्न सब्जियों में संकर बीजों की मांग तालिका 1 में दी गई है।

भिंडी में संकर बीजों की मांग बहुत ज्यादा है। भारत में इस समय भिंडी का संकर बीज उत्पादन लगभग 1500 टन है जोकि जरुरत के हिसाब से कम है। इसलिये किसानों और बेरोजगार युवकों के लिये यह एक लाभदायक व्यवसाय है।

भिण्डी भारत की एक लोकप्रिय सब्जी है जो देश के लगभग सभी भागों में उगायी जाती है। विश्व की 70 प्रतिशत भिण्डी का उत्पादन भारत में होता है एवं 5.78 मिलियन टन भिण्डी उत्पादन के साथ भारत का इस समय पूरे विश्व में भिण्डी उत्पादन में प्रथम स्थान है। भिण्डी एक बहुपयोगी सब्जी है। इसको केवल कच्चे हरे फल खाने के लिए ही नहीं प्रयोग किया जाता बल्कि इसकी जड़ और तना का गुड़ और शक्कर साफ करने में भी प्रयोग किया जाता है। ताजा भिण्डी के निर्यात की भी काफी सम्भावनाएं हैं इस समय निर्यात की जाने वाली हरी सब्जियों में लगभग 60 प्रतिशत भिण्डी ही निर्यात की जाती है।

भिण्डी गर्म मौसम की सब्जी है। इसकी खेती के लिए उपयुक्त औसत तापमान 25 से 30° सेल्शियस पाया गया है। जब औसत तापमान 15° सेल्शियस से कम हो जाता है तो बीज के जमाव पर प्रतिकूल असर पड़ता है। एक रिपोर्ट के अनुसार भिण्डी के बीजं का जमाव 20° सेल्शियस पर 17 दिन बाद, 25° सेल्शियस पर 13 दिन बाद एवं 30° सेल्शियस पर 7 दिन बाद होता है। जब तापमान 42° सेल्शियस से अधिक होता है तो भिण्डी के फूल गिरने शुरू हो जाते है। भिण्डी बीज उत्पादन से सम्बन्धित विभिन्न कारकों की जानकारी निम्नानुसार है:

खेत का चुनाव – ऐसे खेत का चुनाव करें जो उपजाऊ हो और जिसमें सिंचाई की व्यवस्था के साथ जल निकासी की समस्या न हो। इन सामान्य बातों के अतिरिक्त पृथक्करण दूरी भी बीज उत्पादन हेतु लगाई फसल के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है यानि यह दूरी कम से कम 200 मीटर होनी चाहिए। वैसे प्रजनक अथवा मूल बीजोत्पादन के लिए तो यह दूरी 400 मीटर या उससे अधिक ही रखी जाती है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक होता है कि दूसरी

संकरण के लिये चुनी गयी मादा कली

मादा कली परागकोश के साथ

मादा कली विपुंसीकरण

नर फूल का परागण के लिये चयन

नर फूल का परागण मादा फूल के वर्तिकाग्र पर रखना

परागण के बाद मादा फूल को रूई से ढकना एवं लेबल लगाना

किस्म के परागकण बीजोत्पादन वाली फसल के फूलों तक न पहुँच सकें। यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो दूसरी किस्म के परागण बीजोत्पादन वाली फसल के फूलों तक पहुँचकर निषेचन क्रिया कर सकते हैं जिससे उत्पादित होने वाले बीजों की शुद्धता प्रभावित होगी और इस प्रकार तैयार बीजों से उत्पादित अगली पीढ़ियों में किस्म विशेष के गुणों का ह्रास हो जाएगा।

बीज स्रोत का सत्यापन – जिस बीज द्वारा बीजोत्पादन वाली फसल ली जा रही हो यदि वह किसी विश्वसनीय स्रोत से नहीं लिया गया होगा तो बीज की शुद्धता बनाए रखना अत्यन्त कठिन होगा यानि कि जितना अधिक शुद्ध बीज होगा, बीजोत्पादन के दौरान उतना ही कम प्रयास उसकी शुद्धता को बनाए रखने में करना होगा। अतः बीज के स्रोत का विश्वसनीय होना आवश्यक है।

बुवाई का उचित समय, विधि एवं बीज दर की मात्रा

भिण्डी के बीजोत्पादन के लिए खेत की 3–4 जुताई करके बीजाई करते हैं। बीज की बुवाई समतल क्यारियों अथवा मेड़ों पर दोनों ही विधियों से कर सकते हैं लेकिन यदि मेड़ों पर करें तो अधिक सुविधाजनक रहेगा। बीज की बुवाई 2.5 से 3 सेंमी. गहराई पर करें। बुवाई के समय अंकुरण हेतु खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। गर्मी की फसल के लिए बुवाई 30 x 20 सेंमी. अथवा 45 x 30 से.मी. तथा बरसात की फसल के लिए 45 x 30 अथवा 60 x 30 सेंमी. की दूरी पर करें।

बीज उत्पादन हेतु फसल की बुवाई का समय वर्षा के अनुसार निर्धारित किया जाता है क्योंकि बीज की फसल पकने का समय वर्षा के मौसम के पहले अथवा बाद में होना चाहिए अन्यथा बीजों के सड़ने का डर रहता है। उत्तर भारत में भिण्डी की बुआई फरवरी से मार्च में तथा वर्षा के मौसम की फसल जून से जुलाई में लगाते हैं। बीज की मात्रा, बोने के समय व कत्तार से कत्तार तथा पौधे से पौधे की दूरी पर निर्भर करती है। गर्मी की फसल के लिए 12–15 कि.ग्रा. तथा बरसात की फसल के लिए 8–10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर आवश्यकता होती है।

विपुंसीकरण तथा परागण

भिंडी एक स्वयं परागित सब्जी है परंतु कई बार 10–12 प्रतिशत तक परपरागण हो जाता है। संकर बीज उत्पादन के लिये संकर पौधे की नर व मादा पैतृक वंशावलियों के बुवाई का समय उनकी पुष्पन अवस्था के हिसाब से समायोजित करें। खेतों में पौधों का रोपण 2 मादा : 1 नर के अनुपात में करना चाहिये। भिंडी में प्रफुल्लन सुबह के समय होता है और ज्यादातर फल सुबह 9 से 10 बजे तक खुलते हैं। संकरण के लिये ऐसी मादा कलियों का चुनाव करें जोकि अगले दिन खुल जाए। मादा पौधे की पुष्प कली पर प्रफुल्लन से एक दिन पहले विपुंसीकरण करें तथा रूई से अच्छी तरह ढक दें। नर पौधे की प्रत्येक पुष्प कली को प्रफुल्लन से एक दिन पहले सूती धागे से अच्छी तरह बांध दें। परागण के दिन बंधी हुई कलियों को एकत्रित करें। विपुंसीकृत पुष्पों के वर्तिकाग्र पर परागकणों को झाड़कर रूई से ढक दें। आने वाली नई पुष्प कलियों के साथ लगातार 30–40 दिन तक यही विपुंसीकरण व परागण प्रक्रिया दोहराते रहें। प्रतिदिन प्रति हैक्टर में विपुंसीकरण व परागण प्रक्रिया के लिये 15–20 श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

निराई–गुड़ाई एवं सिंचाई

भिण्डी की फसल की निराई–गुड़ाई समय से करनी चाहिए और सिंचाई का ध्यान रखना चाहिए। खरपतवारों के कारण भिण्डी फसल की उपज 50 प्रतिशत तक कम हो जाती है। इसलिए समय–समय पर इसकी रोकथाम बहुत जरूरी है। पहली निराई 15–20 दिन बाद एवं दूसरी निराई 30–35 दिन बाद करनी चाहिए। पेन्डीमेथालिन नामक दवा का 1.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर

तना एवं फल भेदक कीट के प्रारम्भिक लक्षण

तना एवं फल भेदक कीट की सूंडी फल के अन्दर

वयस्क तना एवं फल भेदक कीट

हरा फुदका कीट के वयस्क एवं निम्फ

फुदका के चूसने से प्याले के आकार की हुई पत्ती

की दर से बीज बुवाई के दो दिन के भीतर स्प्रे एवं एक बार हाथ से निराई कर देने से 40–45 दिन तक फसल बिल्कुल खरपतवार रहित रहती है।

फूल एवं फल बनने वाली अवस्था में पानी की कमी के कारण 70 प्रतिशत तक पैदावार कम हो सकती है इसलिए सिंचाई नियमित अन्तराल पर करनी चाहिए। सिंचाई मार्च में 10–12 दिन पर, अप्रैल में 7–8 दिन पर और मई–जून में 4–5 दिन के अन्तराल पर करें। बरसात में यदि बराबर वर्षा होती है तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्षा ऋतु में भिण्डी की फसल में ज्यादा पानी अधिक देर तक नहीं ठहरना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

बीज की अच्छी फसल के लिए खेत में 20–25 टन सड़ी गोबर की खाद, 100 कि.ग्रा. नत्रजन तथा 50–50 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा पोटाश प्रति हैक्टर की दर से दें। नत्रजन की एक तिहाई मात्रा बुआई के समय तथा शेष मात्रा बुआई के 30 व 50 दिन बाद टाप ड्रेसिंग के रूप में दें।

अवांछनीय पौधों को निकालना

शुद्ध एवं गुणवत्तायुक्त बीजोत्पादन के लिए बीज वाली फसल का प्रारम्भ से अन्त तक नियमित निरीक्षण अत्यन्त आवश्यक है तथा जो भी पौधे लगाई गई किस्म के पौधों के गुणों से मेल न खाते हो उन्हें खेत से उखाड़ देना चाहिए अन्यथा वह बीज की शुद्धता प्रभावित करेंगे। यह काम पूरे फसल काल के दौरान करते रहना चाहिए लेकिन खासतौर पर फूल आने के पहले, फूल और फल लगते समय तथा फल परिपक्वता के समय इस पर खास ध्यान देना जरूरी है। पौधों की ऊँचाई, पत्तियों का रंग, आकार, तने का रंग, फलों का आकार और उन पर धारियों की संख्या आदि गुणों के आधार पर अवांछनीय पौधों को छांटा जाता है। किस्म विशेष के आधार पर अवांछनीय पौधों को छांटा जाता है। किस्म विशेष के इन सब लक्षणों के अतिरिक्त भिण्डी बीज उत्पादन में पीत शिरा विषाणु रोग से ग्रसित पौधों को भी तुरन्त खेत से निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।

बीज फसल की तुड़ाई एवं बीज निष्कर्षण

फली लगने के लगभग 35 दिन बाद बीज वाली फली पूरी तरह सूख जाती है। फलियों को खेत में चिटखने से पहले ही तोड़ना आवश्यक होता है। पूर्ण रूप से सूखी फलियों को हंसिया अथवा सिकेटियर की सहायता से पौधों से अलग करके एकत्र कर लेते हैं और फिर 2–3 दिन खलीहान में सुखा लेते हैं। इस प्रकार एकत्रित सूखी फलियों को डंडे से पीटकर, फलियों के हिस्सों को खोलकर बीज अलग कर लेते हैं। इस बात का ध्यान रखते है कि निकाले गए बीजों में नमी 10 प्रतिशत से अधिक न हो।

साफ–सफाई एवं भण्डारण

बीज निकालने के बाद सुरक्षित नमी के स्तर तक सुखाकर उनकी साफ–सफाई भी आवश्यक है अवांछित अवयवों (जैसे मिट्टी के ढेले, कंकड़ आदि), खरपतवार के बीजों, कटे बीज आदि को यथासम्भव अलग करके एक निश्चित आकार के बीज को छांटना आवश्यक है जिससे बीजों की सम्पूर्ण गुणवत्ता अच्छी हो। इस प्रकार से छाँटे गए निश्चित आकार के बीजों को किसी ठण्डे तथा शुष्क स्थान में भण्डारित करें जिससे उनकी गुणवत्ता बनी रहे।

लाल माइट के वयस्क

माइट से प्रभावित पौधा

उपज

बीज उत्पादन की मात्रा प्रजाति, बुआई का मौसम एवं अन्य फसल क्रियाओं पर भी निर्भर करता है। औसतन प्रति बीघा लगभग दो कुण्टल भिण्डी का बीज प्राप्त होता है।

व्यवसायिक स्तर पर संकर बीज उत्पादन

भिंडी में व्यवसायिक स्तर पर संकर बीज उत्पादन मानक बीज कम्पनियों द्वारा किसानों के साथ कोन्ट्रैक्ट के आधार पर किया जाता है। यह खुले क्षेत्र में विपुंसीकरण प्रक्रिया के द्वारा तथा भारत के दक्षिण राज्यों में जैसे कर्नाटक और आंध्रप्रदेश में, जहाँ पर अनुकूल जलवायु, कुशल और कम लागत पर श्रमिक उपलब्ध हो वहाँ पर हस्त परागण के द्वारा किया जाता है। कोन्ट्रैक्ट के आधार पर सुनियोजित तरीके से बीज उत्पादन 100–150 हैक्टर में स्थानीय आयोजक द्वारा किसी प्रशिक्षित निरीक्षक के तकनीकी निरीक्षण में किया जाता है। संकर बीज उत्पादन के लिये एक लघु स्तर का किसान 0.4 हैक्टर में 10,000 तक पौधे लगा सकता है। मूल बीज सामग्री बीज कम्पनियों द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। प्रति 0.4 हैक्टर में संकर बीज उत्पादन की कीमत लगभग 10,700 रुपये तक आ जाती है। संकर बीज उत्पादन की सरकारी खरीद 120–150 रुपये प्रति कि.ग्रा. होती है। 0.4 हैक्टर में बीज की मात्रा औसतन 250 कि.ग्रा. तक होती है जोकि 200–300 कि.ग्रा. तक हो सकती है। 0.4 हैक्टर में औसत शुद्ध आय लगभग 34,300 होती है।

प्रमुख कीट

तना एवं फल छेदक कीट

सुंड़ियाँ फलों में छेद करती हैं जिससे प्रभावित फल सब्जी योग्य नहीं रहते हैं व ग्रसित फल सही आकार नहीं ले पाता है और टेढ़ा हो जाता है। इसकी सुड़ियाँ तने के शीर्ष भाग को नुकसान करती है, शीर्ष भाग मुरझा जाता है जिससे पौधे की बढ़वार रूक जाती है। इसके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं:

- 4 प्रतिशत नीम की गिरी व 1 मिली. इण्डोसल्फान प्रति ली. पानी के साथ मिलाकर फूल लगते समय छिड़काव करना चाहिए।
- अण्डा परजीवी ट्राइकोग्रामा 50,000 को फल लगते समय साप्ताहिक अन्तराल पर खेत में छोड़ने से फल भेदक कीट का प्रकोप कम किया जा सकता है।
- डायमिथोएट 1.25 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से इस कीट का नियंत्रण सम्भव है।
- गर्मी के मौसम में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए।

सावधानियाँ

रासायनिक दवाओं के उपयोग के साथ अण्डा परजीवी कीटों को खेत में नहीं छोड़ना चाहिए। लाल माईट एवं जैसिड के आक्रमण होने पर साईपरमेथ्रिन का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

पीत शिरा मोजैक के लक्षण

पूरी तरह प्रभावित पौधा

हरा फुदका (जैसिड)

हरे रंग के छोटे कीट के शिशु व प्रौढ़ दोनों भिण्डी की पत्तियों के निचले हिस्से में रहते हैं और रस चूसते हैं। जिसके फलस्वरूप पत्ती किनारे से पीली होकर सिकुड़ती है तथा प्यालानुमा आकार बनाती है और धीरे–धीरे सूख जाती हैं। इसके नियंत्रण के लिए निम्न उपाय करना चाहिए:

- बीज को इमिडाक्लोप्रिड (1.5–2 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करके बोने से कीट का प्रकोप 40–45 दिनों तक नहीं होता है।
- इमिडाक्लोप्रिड का 0.5 मिली प्रति ली. पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़कने से 30 दिन तक इस कीट का प्रकोप नहीं होता है।
- 4 प्रतिशत नीम की गिरी एवं 0.5 मिली इण्डोट्रान (चिपकने वाला पदार्थ) प्रति लीटर पानी के साथ छिड़कने से फुदका का प्रकोप कम हो जाता है।

भिण्डी की लाल माईट

गर्मी वाली भिण्डी में यह बहुत हानिकारक होती है। शिशु तथा प्रौढ़ पत्तियों की निचली सतह पर रस चूसते हैं और वहीं सिल्कनुमा जाला से ढ़के रहते हैं। इनके रस चूसने से पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीली चित्तियाँ उभर आती हैं और धीरे–धीरे पत्तियाँ लाल होकर सूख जाती है:

- इसके नियंत्रण के लिए खेत में गर्मी के मौसम में हमेशा नमी बनाये रखना चाहिए।
- डायकोफाल 18.5 ई.सी. का 2.5 मिली प्रति ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।
- क्वीनालफास 30 ई.सी. का 1 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से माईट का नियंत्रण किया जा सकता है।

पत्ती काटने वाला कीट

पिछले कुछ सालों से भिण्डी में इसका प्रकोप बढ़ता जा रहा है। इस कीड़े की सुंड़ियाँ पत्ती के दोनों सतहों पर पायी जाती है, लेकिन छोटी सुंड़ी पत्तियों की निचली सतह पर व बड़ी सुंड़ी ऊपरी सतह पर रहकर पत्तियों में छेद करती हैं। इससे बचाव के लिए निम्नलिखित में से कोई एक उपाय अपना सकते हैं।

- इमिडाक्लोप्रिड का 0.5 मिली या पालीट्रिन सी नामक दवा 0.7 मिली प्रति ली. पानी में मिलाकर (बरसात वाली भिण्डी में स्टिकर टीपोल 0.5 मिली मिलाकर) 15 दिनों के अन्तराल पर 2–3 बार छिड़काव करना चाहिए।

सफेद मक्खी

इस कीट के शिशु तथा प्रौढ़ वयस्क पत्तियों के निचली सतह से रस चूसते है तथा पित शिरा मोजैक (पीलिया) रोग फैलाते हैं।

- कीट की प्रारंभिक अवस्था में डायमिथोएट की 2 मिली मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

पत्ती मरोड़ विषाणु रोग के लक्षण

- अधिक प्रकोप की अवस्था में थायोमिथोक्साम 25 डब्ल्यू.जी. की 5 ग्राम मात्रा प्रति 15 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

प्रमुख रोग

पीत शिरा मोजैक

यह एक विषाणु रोग है जो सफेद मक्खी के द्वारा फैलता है। इसके प्रकोप से पौधों की बढ़ोत्तरी रूक जाती है एवं पत्तियों की शिराएं पीली पड़ जाती है। जब तने और फलों का रंग पीला पड़ जाए तो समझें कि रोग का प्रकोप ज्यादा है। इसके बचाव के लिए निम्नलिखित उपाय करें।

- इस रोग से अवरोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- बीज को इमिडाक्लोप्रिड (1.5–2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) से शोधित करके लगाना चाहिए।
- मैटासिस्टाक्स 1.5 मिली/लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अन्तराल पर 3 बार छिड़काव करें।

भिण्डी का पत्ती मरोड़ विषाणु रोग

इस रोग में पत्ती का डंठल अंग्रेजी के 'एस' आकार का हो जाता है। पत्ती की शिराओं में मोटी–मोटी गांठें उभार लिए हुए बन जाती हैं। इसके प्रकोप से ग्रसित पत्ती को सूर्य के प्रकाश में देखने पर शिराओं के बीच मोटी हरे रंग की गांठें स्पष्ट दिखाई देती है। इसकी पत्ती कुछ मोटी व मोमी हो जाती है। इससे प्रभावित पौधे सामान्य से कुछ ज्यादा ही हरे दिखाई देते हैं एवं पौधों में फूल नहीं आते हैं। यदि फूल आ भी जाते हैं और फली बन जाती है तो उसमें बीज नहीं बनता है। पीत शिरा मोजैक विषाणु रोग की रोकथाम के लिए फैलाने वाले वाहक (सफेद मक्खी) के नियंत्रण हेतु दिये गए सुझाव निर्देशों का पालन इसके नियंत्रण के लिए भी कारगर होते हैं।

सूखा व जड़ गलन रोग

यह जमीन में उपस्थित फफूँद से फैलता है। इस रोग से फसल किसी भी अवस्था में प्रभावित हो जाती है। शुरूआत में पौधे पीले दिखाई देते हैं तथा बाद में सूख जाते हैं। यह दो प्रकार के फफूँदों से होता है। इसके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं।

- फसल चक्र का प्रयोग करके इसको कुछ हद तक रोका जा सकता है।
- बीज को 0.3 प्रतिशत थिरम या कैप्टान 2.5 ग्राम प्रति किग्रा की दर से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए।
- गर्मी की फसल को समय से सिंचाई करते रहना चाहिए।
- बरसात में जल निकास का उचित प्रबन्ध करना चाहिए।

समाप्त

परिवर्तनशील पर्यावरण में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए जलवायु निपुण कृषिः एक अनूठी पहल

[1]एच.एस. जाट, [1]झाबर मल, [1]लव कुमार सिंह,[1] मुनमुन राय,[1] अरविन्द कुमार,[2] मधु चौधरी,[2]
पी.सी. शर्मा,[2] एवं एम.एल. जाट[1]

[1]अन्तर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, मैक्सिको (इण्ड़िया ऑफिस)
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार वर्ष 2050 तक दुनिया की आबादी को भरपेट खिलाने के लिए कुल कृषि उत्पादन में 60 प्रतिशत वृद्धि की आवश्यकता होगी। दुनियाभर में विशेषज्ञों को कृषि में जलवायु परिवर्तन से सामना करने के लिए उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का अधिक कुशलता से उपयोग करते हुये गरीबी एवं भूखमरी से छुटकारा पाने के लिए पर्यावरण अनुकूल खेती के उपायों को अपनाने की जरुरत महसूस हो रही है। सन् 2050 तक गरीबी तथा कुपोषण के कारण बच्चों और महिलाओं की स्थिति दक्षिण एशिया की एक मुख्य चुनौती के रूप में उभरकर सामने आयेगी। दक्षिण एशियाई क्षेत्रों में बाढ़, सूखा, चक्रवात एवं गर्मी के रूप में जलवायु के जोखिम की संभावना बहुत है। सिंधु–गंगा के मैदानों में धान–गेहूँ मुख्य फसल चक्र है। यहाँ धान की खेती अभी भी किसान परंपरागत तरीके से करते हैं। जिसके तहत खेतों की जुताई के बाद पानी भरकर कद्दू करने की प्रक्रिया अपनाते हैं और बाद में धान की रोपाई करते हैं। इससे भारी मात्रा में सिंचाई जल की खपत होती है। जिससे भूजल स्तर दिनोंदिन गिरता जा रहा है तथा पंपिंग का खर्च हर साल बढ़ता जा रहा है। इसके अलावा कद्दू के कारण मिट्टी की संरचना पर भी विपरीत असर पड़ता है। आज के समय में कृषि कार्यों के लिए श्रमिकों की कमी है। धान की रोपाई के समय मजदूर नहीं मिलते हैं। गेहूँ की बिजाई का तरीका भी परंपरागत है। जिसमें धान की कटाई के बाद बचे हुए अवशेषों को बहुत से किसान अज्ञानतावश जला देते हैं। जिसका ना केवल पर्यावरण पर विपरीत असर पड़ता है अपितु मृदा की सेहत भी खराब होती है। विशेषकर कार्बनिक पदार्थ एवं मुख्य पादप पोषक तत्वों का नुकसान होता है तथा सुक्ष्मजीवों की संख्या भी तेजी से घटती है। भविष्य की खाद्यान्न एवं आय सुरक्षा के लिए सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों के प्राकृतिक संसाधनों को कायम रखने के लिए नवीनतम तकनीकियों का उपयोग करना आज की जरुरत बन गया है। बढ़ती कृषि लागत, श्रम, उर्जा और पानी की संभावित कमी को ध्यान में रखते हुऐ हमें पर्यावरण निपुण कारगर तकनीकियों के प्रचार व प्रसार की नितांत आवश्यकता है।

सिंधु–गंगा के मैदानों में जहाँ धान–गेहूँ मुख्य फसल चक्र है वहाँ फसल अवशेषों को जलाने से फसल पोषक तत्वों को हो रहे नुकसान एवं पर्यावरणीय प्रदुषण से बचने के लिए नवीनतम तकनीकियों की विशेष जरुरत है। फसल अवशेषों को जलाने से कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड आदि ग्रीन हाउस गैसें निकलती है जो पर्यावरण एवं मानव जीवन के लिए बहुत हानिकारक है। आज ऐसी खेती की जरुरत है जो कार्बन को मृदा में अधिक समय के लिए संचित करके ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जन को कम करने, वैश्विक तापमान में बढ़ोत्तरी को रोककर जलवायु परिवर्तन के कारण हो रहे दुष्परिणामों को एक सीमा तक कम करने में सहायक हो। किसी फसल विशेष का टिकाऊ उत्पादन लेने के लिए फसल प्रणालियों में बेहतर संसाधन संरक्षण के तरीकों और अन्य फसलों के शामिल करने से मिट्टी की उर्वराशक्ति एवं उत्पादन क्षमता बनी रहती है। अतः बदलते कृषि जलवायु परिवेश में दुनिया की आबादी की खाद्यान्न आपूर्ति को सुनिश्चित करने एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए जलवायु निपुण कृषि का नाम उभरकर सामने आता है।

जलवायु निपुण कृषि का इतिहास

खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) की खाद्य सुरक्षा, कृषि और जलवायु परिवर्तन पर 2010 हेग सम्मेलन के लिए तैयार पृष्ठभूमि दस्तावेज में जलवायु निपुण कृषि शब्द का विशेष तौर पर उपयोग किया गया। यह अवधारणा भविष्य में जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन के साथ खाद्य सुरक्षा पर मजबूती से ध्यान केंद्रित

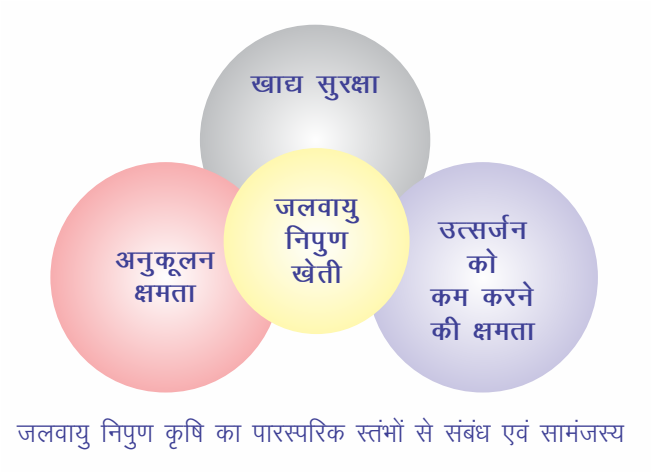

जलवायु निपुण कृषि का पारस्परिक स्तंभों से संबंध एवं सामंजस्य

करने के लिए विकसित की गयी। जलवायु निपुण कृषि पर उभरते वैश्विक और क्षेत्रीय (अफ्रीका) गठबंधन सभी इच्छुक पार्टियों के बीच साझा सीखने और सहयोग के लिए एक मंच प्रदान करते हैं। जलवायु जोखिम एवं ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन, अतीत की तुलना में अधिक तीव्रता के साथ हो रहा है, जिसकी वजह से खाद्य सुरक्षा को हासिल करने तथा गरीब किसानों की आजीविका में सुधार लाने और लाभ पहुंचाने के लिए कृषि प्रौद्योगिकी और दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है।

जलवायु निपुण कृषि

खाद्य सुरक्षा और विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए जलवायु निपुण कृषि पद्धति ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करते हुये खेती की स्थायी उत्पादकता को बढाती है। बदलते पर्यावरण में, प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन रोकने, खाद्य सुरक्षा बनाए रखने व कम लागत में अधिक फसल उत्पादन एवं अधिक मुनाफा देकर किसान को आर्थिक व सामाजिक रूप से मजबूत बनाने के लिए यह पद्धति अपनाना जरुरी है। जलवायु निपुण तकनीकों के माध्यम से किसानों को मौसम एवं जलवायु के अनुसार तकनीकी एवं गैर तकनीकी सहयोग प्राप्त हो जाता है। इन सभी तकनीकियों के उपयोग से बदलते वातावरण में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ खाद्य सुरक्षा के लिए भी गाँवों को सक्षम बनाया जा रहा है। इस कृषि पद्धति में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए जल, पोषक तत्व, कार्बन, ऊर्जा, मौसम एवं ज्ञान निपुण तकनीकियों का समावेश किया गया है।

जलवायु परिवर्तन नकारात्मक रूप से वैश्विक तथा स्थानीय स्तर पर कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रहा है जिससे स्थायी खाद्य सुरक्षा हेतु आवश्यक संसाधनों को बनाए रखने के लिए भारी चुनौतियों का सामना करना पड रहा है। फसल, पशुधन और मछली पालन के लिए जलवायु जोखिम विशेष रूप से अनुकूलन क्षमता कमजोर कर रहा है। खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण आजीविका और व्यापक आधार के विकास में कृषि की निर्णायक भूमिका पर जलवायु परिवर्तन का बुरा प्रभाव पड़ रहा है। जलवायु निपुण कृषि विकास का लक्ष्य सतत् विकास के तीन आयामों (आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरण संबंधी) को एकीकृत करके संयुक्त रूप से खाद्य सुरक्षा और जलवायु चुनौतियों के समाधान हेतु किया जा रहा है। खाद्य सुरक्षा मुख्य रूप से निम्न तीन स्तंभों पर निर्भर करती है: (क) टिकाऊ खाद्य सुरक्षा (ख) कृषि अनुकूलन क्षमता (ग) ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने की क्षमता।

जलवायु निपुण कृषि, जलवायु परिवर्तन के तहत खाद्य सुरक्षा के लिए टिकाऊ कृषि विकास को प्राप्त करने के लिए तकनीकी, नीति और निवेश शर्तों को विकसित करने का एक दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण की पहचान करने और जलवायु परिवर्तन के स्पष्ट मापदंडों के भीतर स्थायी कृषि विकास परिचालित करने, कृषि प्रणालियों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने, राष्ट्रीय कृषि योजना बनाने, निवेश और कार्यक्रमों में इन प्रभावों का व्यापक एकीकरण सुनिश्चित करने के लिए इस प्रणाली को विकसित किया गया है।

मौसम एवं उपलब्ध संसाधनों के साथ जलवायु निपुण कृषि

ग्रीनसीकर की सहायता से धान में नाइट्रोजन का उपयोग

जलवायु निपुण कृषि की आवश्यकता

मानवीय गतिविधियों के कारण जलवायु परिवर्तन की वर्तमान दर पिछले 10,000 साल के किसी भी समय की तुलना में तेजी से हुई है। इन्हीं मानवीय गतिविधियों के कारण उत्सर्जन के नए स्रोतों में वृद्धि एवं जंगलों के आकार को भी निरंतर प्रभावित किया है। हरित गृह (ग्रीन हाउस) गैसों (कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड इत्यादि) के उत्सर्जन में मानवजनित क्रियाओं द्वारा वर्ष 1970 से 2004 के बीच 70 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई है और अनुमान है कि 25 से 95 प्रतिशत तक की वृद्धि वर्ष 2030 तक हो सकती है। जलवायु परितर्वन पर अंतर्शासकीय जलवायु परिवर्तन पैनल (आईपीसीसी) ने अपनी चौथी आंकलन रिपोर्ट में कहा है कि जलवायु परिवर्तन 1990 के बाद तेजी से बढ़ा है, इसके लिए मानवीय गतिविधियों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जिसका पारिस्थितिकी प्रणालियों पर प्रभाव पड़ेगा। जीवाश्म ईंधन के दोहन और कृषि पद्धतियों से 20वीं सदी के दौरान वैश्विक तापमान में औसतन वृद्धि क्रमशः 0.6 डिग्री सेल्सियस एवं 0.17 डिग्री सेल्सियस हुई है। जलवायु निपुण कृषि के तरीकों को अपनाकर हम हरित गृह गैस उत्सर्जन कम करने के अलावा पानी, मिट्टी और हवा की गुणवत्ता में भी सुधार कर सकते हैं।

पारिस्थितिकी अनुकूल कृषि प्रणाली आज हमारे देश में कृषि के समक्ष आ रही समस्याओं का उचित विकल्प हो सकती है। कृषि का यह रूप, हमारी जलवायु की रक्षा, कृषि विविधता को बढ़ाकर, जैव विविधता सुनिश्चित कर, मिट्टी और पानी के संसाधनों का संरक्षण कर, खाद्य सुरक्षा उपायों की आजीविका के लिए मांगों को पूरा करता है। संक्षेप में, यह किसान को स्वच्छ पर्यावरण में पौष्टिक भोजन के साथ–साथ शुद्ध लाभ प्रदान करता है एवं उसकी आजिविका को सुनिश्चित करता है। जलवायु परिवर्तन एक गंभीर वैश्विक चिंता का विषय है जो मुख्य रूप से वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों (जीएचजी) के निर्माण की वजह से है। ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन फसलों में नाइट्रोजन का उचित प्रबंधन करके कुछ हद तक कम किया जा सकता है।

जलवायु निपुण कृषि तकनीकियां

प्राकृतिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन के कारण जलवायु में लगातार परिवर्तन हो रहा है जो एक चिंता का विषय बन गया है। खेती की नवीनतम् तकनीकियों के साथ हमें ऐसी खेती की आवश्यकता है जो समय के साथ सभी प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग करते हुये खाद्य सुरक्षा बरकरार रखने में सक्षम हो। जलवायु निपुण कृषि की सभी तकनीकियां तीन मुख्य घटकों में समाहित है। पहली– अनुकूलन क्षमता, दुसरी–निम्नीकरण क्षमता एवं तीसरी–खाद्य सुरक्षा।

जलवायु परितर्वन के विपरीत प्रभाव को कम करने के लिए संरक्षित खेती आधारित क्रियाएं समाधान का एक हिस्सा हो सकती है। ऐसे समय में जलवायु निपुण कृषि की मुख्य तकनीकियों को अपनाया जा सकता है।

जल निपुण तकनीकियां: धान की सीधी बिजाई, फसल विविधीकरण कर मक्का की खेती, बैड प्लांटिंग, भूमि का समतलीकरण, धान में वैकल्पिक जल प्रबंधन, जीरो टिलेज (तप्पड़ में बिजाई)।

पोषक तत्व निपुण तकनीकियां: प्रक्षेत्र विशेष पादप पोषण प्रबंधन, मक्का और गेहूँ में पोषण प्रवीन सॉफ्टवेयर के माध्यम से खाद की मात्रा का निर्धारण करना, ग्रीनसीकर से यूरिया का इस्तेमाल एवं फसल चक्र में दलहनों का समावेश।

कार्बन निपुण तकनीकियां: जीरो टिलेज व फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन। अवशेष नहीं जलाने से पर्यावरण संरक्षण होता है।

खडी फसल में मानव रहित वायुयान से एन.डी.वी.आई. लेकर यूरिया का स्थान विशेष पर छिडकाव करना

ऊर्जा निपुण तकनीकियां: कम ईंधन की खपत में ज्यादा खेत की बिजाई करना (जीरो टिलेज), फसल अवशेषों का प्रबंधन, धान की सीधी बिजाई।

मौसम निपुण तकनीकियां: मौसम का पूर्वानुमान – किसानों को मोबाइल फोन पर संदेश दिया जाता है। इसमें किसानों को फसल की कीटों से सुरक्षा, सिंचाई इत्यादि की जानकारी देना होता है। इस तकनीक के लिए किसान संचार संस्था सीमिट–सीकैफस के साथ मिलकर काम कर रही है। इस तकनीकी में किसानों ने काफी रूचि दिखाई है। उन्हें फसल संबंधी विभिन्न पहलुओं पर निर्णय लेने में मदद मिलती है। फसलों की सूचकांक आधारित बीमा की भी जानकारी दी जाती है। मौसम निपुण तकनीक में मौसम का पूर्वानुमान, सूचकांक आधारित बीमा, जरूरतों के अनुसार बीज, फसल विविधीकरण व कृषिवानिकी को लागू करने पर बल दिया जा रहा है।

ज्ञान निपुण तकनीकियां: क्षमता विकास – जिसके तहत किसानों का, उनके साथ काम करने वाली संस्थाओं के सदस्यों को समय–समय पर विभिन्न प्रशिक्षणों के माध्यम से कुशल बनाने का प्रयास है। महिला सशक्तिकरण भी इस परियोजना का मुख्य बिंदू है जिसमें महिलाओं की कृषि में ज्यादा से ज्यादा भागीदारी के प्रयास है। ज्ञान निपुण सूचना एवं प्रसारण तकनीकियां, महिला सशक्तिकरण व क्षमता विकास मुख्य तकनीकियाँ है।

जलवायु निपुण गांव बनाने की योजना

अंतरर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परामर्श समूह (सीजीआइएआर) के जलवायु परिवर्तन एवं खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम (सीकैफस) को भारत में अंतरराश्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान मैक्सिको संचालित कर रहा है। सीकैफस प्रोजेक्ट के तहत भारत में जलवायु निपुण गांव बनाने की परियोजना पर कार्य चल रहा है। अभी तक परियोजना हरियाणा, पंजाब व बिहार राज्यों में पिछले 2 वर्ष से कार्यरत है। यह परियोजना हरियाणा राज्य के करनाल जिले में किसानों के सहयोग से चल रही है। पर्यावरणीय परिस्थितियों के मद्देनजर करनाल के कई गांव जलवायु निपुण परियोजना से जुड़ रहे है। अनुसंधान वैज्ञानिकों का मानना है कि भविष्य में जलवायु निपुण गांव कृषि के रोल मॉडल होंगे। जलवायु निपुण तकनीकों का मुख्य उद्देश्य लागत खर्च को कम करके किसानों की आय में बढ़ोत्तरी करना एवं उनको आर्थिक व सामाजिक रूप से मजबूत बनाना है।

अंतरराष्ट्रीय समुदाय, राष्ट्रीय संस्थाओं और स्थानीय संस्थाओं ने जलवायु निपुण कृषि पर तेजी से काम करना शुरू कर दिया है। हालांकि, इस दृष्टिकोण को लागू करने में उपकरण और अनुभव की कमी आंशिक रूप से चुनौती भरा कार्य साबित हो रहा है। जलवायु निपुण हस्तक्षेप स्थान विशेष और अत्यधिक ज्ञान पर आधारित है। इसलिए जलवायु निपुण कृषि को एक वास्तविकता बनाने के लिए ज्ञान और क्षमताओं को विकसित करने के लिए काफी प्रयास की आवश्यकता है।

समाप्त

लवणग्रस्त मृदाओं में बाजरे की उन्नत खेती

बाबू लाल मीणा, रामेश्वर लाल मीणा, प्रवीण कुमार एवं अश्वनी कुमार

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

भारत की खाद्य सुरक्षा के लिये अनिवार्य फसलों गेहूँ एवं धान के अलावा बाजरा शुष्क, लवणीय एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों की प्रमुख फसल है। भारतवर्ष में बाजरे की खेती वर्ष 2013–14 में, 79.5 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में सिंचित एवं असिंचित दोनों अवस्थाओं में की गई। वर्तमान में बाजरे का उत्पादन 87.9 लाख टन एवं उत्पादकता 1106 किलोग्राम प्रति हैक्टर है। बाजरे का लगभग 90 प्रतिशत क्षेत्रफल, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं हरियाणा राज्यों के अंतर्गत आता है। भारत में इस फसल का उपयोग मुख्यतः दाने एवं चारे के रूप में होता है। वर्तमान में इन राज्यों में लवणता एवं क्षारीयता समस्या कृषि के विकास के लिये एक गंभीर चुनौती बन गई है। देश में लगभग 6.73 मिलियन हैक्टर भूमि लवणग्रस्त है जिसमें 3.77 मिलियन हैक्टर ऊसर (क्षारीयता) एवं 2.96 मिलियन हैक्टर भूमि लवणता से ग्रसित है। क्षारीय भूमि में प्राकृतिक तौर पर कुछ पोषक तत्वों (जिंक व आयरन) की प्रचूर मात्रा होते हुए भी यह पौधों को आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। लवणप्रभावित मृदाओं के सुधार व प्रबंधन के लिए इनकी उचित पहचान करना आवश्यक है। सही पहचान के बाद ही इनके सुधार के लिए उचित उपचार की सिफारिश की जा सकती है। लवणीय भूमि की सतह पर सफेद लवण पपड़ी का जमाव ऐसी मृदाओं को पहचानने में सहायक होता है। इसी कारण से ऐसी मृदाओं को कभी–कभी सफेद कल्लर भी कहा जाता है। कभी–कभी इनकी पहचान लवण की

तालिका 1: लवणीय एवं सूखाग्रस्त मृदाओं में बाजरे की प्रमुख किस्में

उन्नत किस्में	औसत दाने की पैदावार (कुण्टल/हैक्टर)	उगाने की उपयुक्त स्थिति	अनुमोदन वर्ष	प्रमुख विशेषताएं
एच.एच.बी. 60	32.5	उच्च संसाधन स्थितियां	1988	यह 74–76 दिनों में पकती है डाउनी फफूंदी, सूखा और लवण तनाव प्रतिरोधी है तथा अधिक उत्पादन व अच्छी गुणवत्ता का चारा देती है।
एच.एच.बी. 67	31.0	जल्दी व देरी से बुवाई	1990	यह अल्प अवधि 60–62 दिनों में पकती है डाउनी फफूंदी, सूखा और लवण तनाव प्रतिरोधी तथा अंतःफसलीकरण से भी अच्छी पैदावार ले सकते हैं।
एच.एच.बी. 146	37.5	जल्दी रोपण के लिए	2003	यह 70–80 दिनों में पकती है, डाउनी फफूंदी, सूखा और लवण तनाव प्रतिरोधी है। उच्च अनाज, चारा उत्पादकता और उर्वरक के प्रति संवेदनशील।
एच.एच.बी. 197	35.0	सिंचित व बारानी स्थिति	2007	यह 65–70 दिनों में पकती है व पुष्पगुच्छ रोएंदार होते है डाउनी फफूंदी, सूखा और लवण तनाव प्रतिरोधी है।
एच.एच.बी. 226	44.0	सिंचित व बारानी स्थिति	2011	उच्च उपज क्षमता, डाउनी फफूंदी व सूखे के लिए प्रतिरोधी, बालियों के भूरे लंबे बाल, पकने पर हरे रंग का बने रहना।
एच.एच.बी. 234	31.0	सिंचित व बारानी स्थिति	2013	यह किस्म 70–75 दिनों में पकती है सूखा प्रतिरोधी है।

क्षति से पौधों की पत्तियों के अग्र सिरों के जलने और पत्तियों की हरिमाहीनता (हल्का पीला रंग) से भी की जा सकती है। लवणता अधिक होने पर यह मृदाएं वातावरण से वाष्प सोखने के कारण गीली–गीली भी लगती है, जबकि इनमें पौधों के लिए प्राप्य जल नहीं होता है। क्षारीय मृदाएं जिन खेतों में पाई जाती है, उनके विशेषकर निचले भागों में सिंचाई अथवा वर्षा के उपरांत लंबे समय तक जल भरा रहता है। सतह से कुछ सेंमी. नीचे यह मृदा जल से भीगी हो सकती है परंतु फिर भी उनकी सतह शुष्क तथा कठोर दिखाई देती है। इसके विपरीत सतह भीगी हो सकती है और कुछ सेंमी. नीचे की मिट्टी सूखी भी हो सकती है। सूखने पर क्षारीय मृदा में 1 से 2 सेंमी. चौड़ी और कई सेंमी. गहरी दरारें पड़ जाती है जो गीला होने पर भर जाती है। खेतों में देख कर मृदाओं की पहचान करके भी क्षारीय व लवणीय मृदाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। लेकिन समस्या के सही वर्गीकरण के लिए यह आवश्यक है कि मृदा के नमूने लिए जाएं तथा प्रयोगशाला में विश्लेषण के बाद ही मृदाओं का वर्गीकरण किया जाए। लवण प्रभावित मृदाओं में बाजरे का समुचित उत्पादन प्राप्त करने के लिए उन्नत कृषि तकनीकियां जैसे किस्म का चुनाव, खेत की तैयारी, पोषक तत्वों का प्रबंधन, सिंचाई प्रबंधन इत्यादि को अपनाया जा सकता है जिनका विवरण निम्नांकित है।

अधिक उपज वाली किस्में

लवणग्रस्त मृदाओं में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए भूमि एवं जलवायु की स्थिति के अनुसार किस्म का चुनाव करना अति आवश्यक है। बाजरा उत्पादन करने वाले क्षेत्रों के लिए उन्नत प्रमुख संकर किस्में तालिका 1 में प्रदर्शित की गई है। शुष्क क्षेत्रों के लिए अनुमोदित की गई किस्में लवणग्रस्त मृदाओं में भी काफी हद तक अच्छी उपज देती है।

खेत की तैयारी

लवणीय भूमि हो वहाँ खेत में पानी भरकर घुलनशील लवणों को पौधों के जड़ क्षेत्र से निक्षालित्त किया जा सकता है। पानी के निकास का भी उचित प्रबंध होना चाहिए। फसल बोने से पहले उच्च क्षारीय मृदा के नमूने की जाँच के आधार पर आवश्यक मात्रा में जिप्सम मिला देनी चाहिये। खेत की तैयारी इस प्रकार करनी चाहिए कि पूर्व फसल के अवशेष एवं अवांछित खरपतवार अच्छी तरह मिट्टी के नीचे दब जाये एवं मिट्टी भुरभुरी हो जाये। मिट्टी पलटने वाले हल से एक गहरी जुताई करनी चाहिए उसके बाद डिस्क द्वारा 2–3 जुताई की जा सकती है। खेत से अतिरिक्त पानी की निकासी एवं लवणों के निक्षालन के लिए खेत का समतल होना अति आवश्यक है।

बुवाई का समय

खेत में बुवाई के समय पर्याप्त नमी होनी चाहिए। बारानी अथवा असिंचित क्षेत्रों में मानसून की पहली वर्षा के बाद खेत में पर्याप्त नमी होने पर बुवाई करनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में जुलाई के प्रथम पखवाड़े तक बाजरे की बुवाई की जा सकती है।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार

लवण प्रभावित मृदाओं में बीज की मात्रा सामान्य भूमि की अपेक्षा 25 प्रतिशत अधिक रखनी चाहिए। बीज दर प्रजाति की अंकुरण क्षमता, 1000 दानों का भार एवं पौधों की संख्या प्रति हैक्टर पर निर्भर करती है। बाजरे की फसल में बीज की मात्रा 3–5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर प्रयोग की जाती है। भूमि एवं बीज जनित बीमारियों एवं कीटों की रोकथाम के लिए बीज का उपचार आवश्यक है। विशेषतः उन क्षेत्रों में जहाँ डाउनी मिल्ड्यू होने की संभावना हो, बीज को मेटाक्लेजाइल (6 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करना चाहिए।

बिजाई का तरीका

अधिक उपज प्राप्त करने के लिए, बाजरे की बुवाई कतारों में मेड़ पर करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी 45–60 सेंमी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 12–15 सेंमी. रखनी चाहिए। खेत में पौधों की संख्या 18 पौधे प्रति वर्गमीटर होनी चाहिए। यदि खेत में अच्छा जल निकास हो तो मेड पर बुवाई न करके सीधे खेत में कर सकते हैं।

खाली जगह भरना

लवणीय भूमि में बिजाई के लगभग तीन सप्ताह बाद किसी वर्षा वाले दिन खाली स्थानों की पूर्ति की जा सकती है क्योंकि खेत में कई जगहों पर अधिक लवणों के कारण बीज अंकुरित नहीं होते है। कतारों में जहाँ आवश्यकता से अधिक पौधे हों उनको उखाड़कर खाली जगहों में इनकी रोपाई इस प्रकार से करनी चाहिए कि कतारों में पौधे से पौधे की दूरी 12 सेंमी. रहे।

रोपाई

बाजरे की बिजाई का सबसे अच्छा समय 1–15 जुलाई है। साधारण अवस्था में बाजरे की रोपाई की सिफारिश नहीं की जाती परन्तु कुछ परिस्थितियो में, जैसे अधिक लवणों के कारण कुछ बीज अंकुरित न होना, वर्षा का समय पर न होना या लगातार होते रहना, तब पछेती अवस्था में रोपाई की जाती है।

पौध उखाड़ने का समय

तीन से चार सप्ताह की पौध का ही रोपण करें। पहली जुलाई की बोई नर्सरी से तीन से चार सप्ताह की पौध रोपना समय पर खेत में सीधी बिजाई न कर पाने से अच्छा है। पौध उखाड़त्ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इसकी जड़ों को कम से कम क्षति पहुंचे। पौध उखाड़ते समय यदि वर्षा न हुई हो तो प्लाट को सिंचाई करके गीला करना जरूरी है। पौध के ऊपरी भागों को काट देना चाहिए। डाउनी मिल्ड्यू रोगग्रस्त पौध उखाड़ते ही नष्ट कर देनी चाहिए।

पौध रोपने का तरीका

खेत में किसी वर्षा वाले दिन पौध को उखाड़ कर लगाना अच्छा रहता है। पौध को 45 सेंमी. के अन्तर पर कतारों में रोपें व पौधों में फासला 12 सेंमी. रखे। चार सप्ताह की पनीरी के दो पौधे एक स्थान (हिल) पर रोपें। वर्षा न हुई हो तो हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा पौध लगाने के 10 दिन पश्चात् देनी चाहिये और अगर हो सके तो खाद को मिट्टी में अच्छी तरह मिलाने के लिये एक गुडाई कर देनी चाहिए। इससे मिट्टी ढीली हो जायेगी और उसमें वायु संचार अच्छा होगा व लवणों का उपर की ओर आना भी रूक जायेगा। नाइट्रोजन की शेष मात्रा उस समय डालें जब फसल घुटने की ऊंचाई की हो जाये। मध्य–अगस्त तक पैदावर में बिना गिरावट के रोपाई की जा सकती है।

उर्वरक एवं प्रयोग की विधि

उर्वरकों का प्रयोग करने से पहले मिट्टी की जाँच करा लेनी चाहिए। उर्वरकों की मात्रा सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों के लिए अलग–अलग होती है। सिंचित क्षेत्रों में नाइट्रोजन 80–100 कि. ग्रा., फॉस्फोरस 40–50 कि.ग्रा. एवं पोटाश 40–50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः नाइट्रोजन की आधी एवं फॉस्फोरस एवं पोटाष की पूरी मात्रा बुवाई के समय दी जानी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा दो भागों में बुवाई के 3 सप्ताह एवं 5 सप्ताह बाद प्रयोग कर सकते हैं। असिंचित क्षेत्रों के शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में नाइट्रोजन 30–40 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 25 कि.ग्रा. एवं पोटाश 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग किया जा सकता है। खारे पानी वाले क्षेत्रों में 0.25 से 0.5 कुण्टल प्रति हैक्टर जिप्सम का प्रयोग पैदावार बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है। लवणग्रस्त मृदाओं में बाजरा–सरसों फसल चक्र में अगर सरसों की फसल में जिंक सल्फेट नहीं ड़ाला गया हो तो बाजरे में 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से बिजाई के समय डाल दें। यदि मिट्टी में आयरन की बहुत कम उपलब्धता हो, तो इस कमी को दूर करने के लिए फसल की बुवाई करने से पहले 10 टन गोबर की खाद तथा बुवाई के समय 50 कि.ग्रा. फैरस सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

सूक्ष्म पोषक तत्वों का पत्तियों पर छिड़काव

लवणग्रस्त मृदाओं में विशेष तौर से आयरन व जिंक कम विलेयता के कारण पौधों को आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। इन मृदाओं में जिंक की कमी से बाजरे में इंटरनोड की लम्बाई कम हो जाती है और ऊपरी पत्तियां मुड़ जाती है।

बाजरे में जिंक की कमी के लक्षण 2 से 3 सप्ताह में दिखाई देने लगते हैं इसकी कमी के लक्षण नई पत्तियों पर सबसे पहले दिखाई देते है। पत्तियों की मध्यसिरा के चारों ओर पीले बैंड और लकीरें दिखाई देती है परन्तु मध्यसिरा और पत्ती का किनारा हरा रहता है। आयरन की कमी के कारण बाजरे की नई पत्तियों में हरिमाहीनता हो जाती है। पौधे छोटे एवं कमजोर रह जाते हैं जिससे फसल की पैदावार कम प्राप्त होती है। फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों का पत्तियों पर छिड़काव करना सबसे प्रभावी तकनीक है। पर्ण–अनुप्रयुक्त पदार्थ पत्तियों की जाली या स्टोमेटल मार्ग के माध्यम से प्रवेश कर सकते है। पत्ते पर छिड़काव सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को तेजी से दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता है। बाजरे की खड़ी फसल में जिंक व आयरन की कमी को दूर करने के लिए जिंक सल्फेट का 0.5 प्रतिशत तथा फैरस सल्फेट का 1 प्रतिशत का घोल बनाकर बुवाई के 25–35 दिनों के बाद दो से तीन बार (15 दिन के अंतराल पर) छिड़काव करने से इनकी कमी के लक्षणों को दूर किया जा सकता है।

खरपतवार नियंत्रण

अच्छी पैदावार व लवणों को उपरी सतह पर न आने के लिए, समय से खरपतवार नियंत्रण अति आवश्यक है अन्यथा उपज में 50 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। बुवाई से 30 दिन तक, खेत को खरपतवार मुक्त रखना आवश्यक है। खरपतवार नियंत्रण के लिए, बुवाई के 15 दिन बाद खुरपी द्वारा पहली निराई करनी चाहिए। इसे 15 दिन के अन्तराल पर दोहराना चाहिए। यदि फसल की बुवाई मेड़ पर की गयी है तो खरपतवार नियंत्रण ट्रैक्टर एवं रिज मेकर द्वारा भी किया जा सकता है। अगर मजदूरों की कमी है तो खरपतवारनाशक एट्राजीन 1 कि. ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के तुरन्त बाद अथवा 1–2 दिन बाद करने से खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। एट्राजीन 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 800 लीटर पानी में घोलकर भी छिड़काव किया जा सकता है।

सिंचाई

फूल आने एवं दाने बनने के समय, खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। यदि इस अवस्था में वर्षा न हो तो सिंचाई करनी चाहिए अन्यथा उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 400 मि.मी. से कम हो वहाँ बाजरे की फसल अच्छी तरह जम जाने के बाद रेतीली तथा दोमट रेतीली भूमियों में 8 डेसीसीमन प्रति मीटर वैद्युत चालकता तथा अच्छे जल–निकास वाली दोमट भूमि में 6 डेसीसीमन प्रति मीटर वैद्युत चालकता वाले खारे पानी से एक या दो सिंचाइयाँ करें। इससे दाने की पैदावार में विशेष कमी नहीं आती है। जिन क्षेत्रों में वर्षा कम हो वहाँ मिश्रण विधि से वैद्युत चालकता को घटाकर आधी कर देनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में अच्छा जल उपलब्ध नहीं हो और वर्षा की विषमता ज्यादा हो वहाँ किसान खराब गुणवत्ता (लवणीय व क्षारीय) वाला पानी भी प्रयोग कर सकते हैं ऐसी परिस्थितियों में सिंचाई प्रबंधन बहुत आवश्यक है बाजरे की फसल में वैसे तो बहुत कम पानी की जरूरत होती है तथा यह लवणों एवं क्षारीयता के प्रति अधिक सहनशील होती है। लवणीय व क्षारीय पानी को प्रयोग करने में छिड़काव (फव्वारा) तथा टपक (ड्रिप) सिंचाई विधियाँ अधिक सक्षम है। क्षारीय/लवणीय जल से सिंचाई करते समय एक बार में अधिक पानी देने के बजाय कम अंतराल पर दो सिंचाइयाँ करना ठीक रहता है। अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेटयुक्त सिंचाई जल के लिए जिप्सम की आवश्यक मात्रा का निर्धारण मिट्टी एवं पानी जाँच करने वाली प्रयोगशाला में सिंचाई जल का नमूना भेजकर किया जा सकता है।

बीमारियाँ

बाजरे की फसल में रोगों का प्रकोप बहुत कम होता है। लेकिन रोग का प्रकोप होने की अवस्था में, इसका प्रबंधन अति आवश्यक है। बाजरे में मुख्यतः डाउनी मिल्डयू, अरगट, स्मट, ब्लास्ट एवं रतुआ रोगों का प्रकोप होता है। किसान रोगरोधी किस्मों का चुनाव एवं रसायनों का प्रयोग कर रोगों से होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं। डाउनी मिल्ड्यू अधिक हानि पहुँचाने वाला मुख्य रोग है। इस रोग की तीव्रता अधिक होने से, उपज में 60–70 प्रतिशत तक कमी हो सकती है।

डाउनी मिल्ड्यू (जोगिया या हरी बालों वाला रोग)

इस रोग से प्रभावित पौधे बौने रह जाते हैं, पत्ते पीले पड़ जाते हैं और पत्तियों की निचली सतह पर सफेद पावडर–सा जमा हो जाता है। इस रोग से प्रभावित फसल दूर से ही पीली दिखाई देती है। पत्ते सूखने शुरू हो जाते हैं तथा पौधा नष्ट हो जाता है। हरी बालों की स्थिति में संभावित बालें घास जैसा रूप धारण कर लेती है जो काफी समय तक हरी रहती है। उग्र संक्रमण से फसल पूर्णतया नष्ट हो सकती है।

अरगट (चेपा)

रोगग्रस्त बालों से हल्दी या गुलाबी रंग का चिपचिपा गाढ़ा रस टपकने लगता है जो कि बाद में गहरा–भूरा हो जाता है। कुछ दिनों बाद दानों के स्थान पर गहरे–भूरे रंग के पिंड बन जाते है। चिपचिपा पदार्थ व पिंड दोनों ही पशुओं और मनुष्य के लिए हानिकारक (जहरीले) होते हैं।

स्मट (कांगियारी)

बालों की शुरू की अवस्था में जगह–जगह रोगग्रस्त दाने बनते हैं जो आकार में बडे, चमकदार व गहरे–हरे रंग के होते हैं तथा बाद में ये भूरे रंग के हो जाते है। अन्त में इनमें काले रंग का पावडर–सा भर जाता है जो कि रोगजनक फफूंद के बीजाणु होते हैं।

रोकथाम के उपाय

बीजोपचारः बीज का भली–भांति निरीक्षण करें और देखें कि उनमें अरगट (चेपा) के पिंड न हो। यदि बीज किसी प्रमाणित

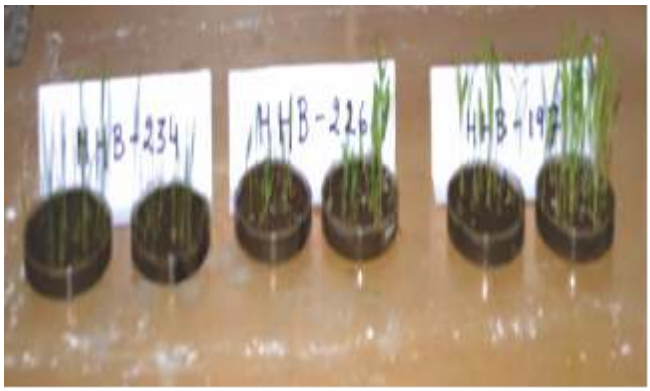

लवणीय मृदा में बाजरे की एच.एच.बी. 197 कर 72 प्रतिशत अंकुरण के साथ बेहतर प्रदर्शन

संस्था से न लिया गया हो तो अरगट के पिंड हाथ से चुनकर बाहर निकाल दें। यदि किसान अपना ही बीज प्रयोग में ला रहे हो तो पिण्डों को हाथ से चुनकर निकाल दें या नमक के घोल में बीज को डुबोकर निकाल दें। इस विधि में 10 प्रतिशत नमक के घोल में बीज को डालकर 10 मिनट तक चलाएं और ऊपर तैरते हुए पिण्डों को निकाल दें और बाद में जलाकर नष्ट कर दें। घोल में नीचे बैठे भारी स्वस्थ बीज को बाहर निकाल लें और साफ पानी से अच्छी तरह धो लें जिससे बीज की सतह पर नमक का कोई अंश न रहने पाये। यदि नमक का कोई अंश बीज की सतह पर रह जाता है तो उससे बीज के अंकुरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अन्त में धुले हुए सारे बीज को छाया में सुखा लें। ऐसे बीज को बोने से पहले 2 ग्राम एमीसान तथा 4 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम बीज की दर से सूखा उपचार करें।

रोगग्रस्त पौधों को निकालना: पत्तों पर ज्यों ही डाऊनी मिल्ड्यू रोग के लक्षण दिखाई पडें, इन्हें उखाड़कर नष्ट कर दें। उखाड़े हुए रोगग्रस्त पौधों का सम्पर्क स्वस्थ पौधों से न हो। यह काम बुवाई के 20 दिन के अन्दर अवश्य करना चाहिए। मध्य से अधिक पौधे निकाल देने की स्थिति में उस जगह पर स्वस्थ पौधे रोप दें। रोगग्राही किस्मों में, रोगग्रस्त पौधों को निकालने के बाद, फसल पर 0.2 प्रतिशत जाइनेब या मैन्कोजैब के घोल (500 ग्राम दवा व 250 लीटर पानी प्रति एकड़) का छिड़काव करें।

कटाई, उपज एवं भण्डारण

फसल पकने के समय दाने गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। सामान्यतः बाजरे की फसल 75–85 दिन के अन्दर पक जाती है।

डाउनी मिल्ड्यू (जोगिया या हरी बालों वाला रोग)

बाजरे की बालियाँ पहले काट ली जाती है उसके बाद डंठल को काटकर सुखा लेते हैं। फसल की बालियों को मंडाई से पूर्व अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए। बालियों से दाने अलग करने के लिए थ्रेशर का प्रयोग किया जा सकता है या बालियों को डण्डों से पीटकर दानों को अलग कर सकते हैं। इसके बाद दानों को साफ कर एवं सुखा कर उनका भण्डारण किया जाता है। किस्म के अनुसार बाजरे की औसत उपज 20–35 कुण्टल प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है। बाजरे के भण्डारण के समय दानों में नमी की मात्रा 12–14 प्रतिशत होनी चाहिए। भण्डारण के लिए लकड़ी या धातु बिन का प्रयोग किया जा सकता है।

समाप्त

मूँगफली में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण और वांछित प्रबंधन

अनिता मान[2], ए॰एल॰ सिंह[1], महेश महात्मा[1], सुजीत कुमार[1], लोकेश कुमार[1], अश्वनी कुमार[2] एवं प्रवेन्द्र श्योराण[2]

[1]भाकृअनुप–मूँगफली अनुसंधान निदेशालय, जूनागढ (गुजरात)
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

मूँगफली उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में से एक महत्त्वपूर्ण खाद्य फली और तिलहन फसल है। मूँगफली 40 प्रतिशत क्षेत्रफल व 60 प्रतिशत उत्पादन के साथ भारत की तिलहन फसलों में पहले स्थान पर है। मूँगफली की खेती भारत, अमेरिका, ब्राजील, नाइजीरिया, चीन, अर्जेंटीना और इंडोनेशिया जैसे 90 से अधिक देशों में की जाती है। भारत में, गुजरात, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र प्रमुख मूँगफली उत्पादक राज्य हैं, लेकिन हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और उड़ीसा में भी मूँगफली की खेती की जाती है। मूँगफली मुख्य रूप से शुष्क क्षेत्रों में वर्षा आधारित फसल के रूप में उगाई जाती है तथा शुष्क जलवायु क्षेत्रों में भूमि पोषक तत्वों की कमी से ग्रस्त होती है जिसके परिणामस्वरूप मूँगफली की उपज में कमी होती है। मिट्टी में इतनी भिन्नता है कि कुछ खास पोषक तत्वों की असाधारण कमी सामान्यतया हो रही है। इसके अलावा, एक ही खेत में निरंतर फसल उगाने से भी एक अवधि के उपरांत पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। मूँगफली की फसल में, प्रमुख रूप से उपज में कमी का कारण फॉस्फोरस, लौहा, बोरोन, कैल्शियम और जिंक की कमी है। इसीलिए मिट्टी का प्रकार तथा उसके खनिज पोषक तत्व की स्थिति का अनुकूलन करने के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण और अंत में मूँगफली का उत्पादन बढाना वर्तमान समय की अनिवार्य आवश्यकता है।

आवश्यक पोषक तत्व

पौधों की वृद्धि के लिए 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इन तत्वों की कमी या अनुपस्थिति में पौधे अपना जीवन चक्र ठीक से पूरा नहीं कर पाते हैं। सूर्य के प्रकाश के साथ इन आवश्यक तत्वों को दिया जाता है, तो पौधे अपने सामान्य विकास के लिए सभी जरूरी यौगिकों का निर्माण कर सकते हैं।

हाइड्रोजन, कार्बन और ऑक्सीजन को आवश्यक खनिज पोषक तत्व नहीं माना जाता क्योंकि ये पानी या हवा (कार्बन डाइऑक्साइड) से मुख्य रूप से प्राप्त होते हैं। आवश्यक खनिज तत्वों को आम तौर पर पौधे के विभिन्न ऊतकों में उनकी मात्रा के अनुसार सघन या सूक्ष्म पोषक तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर और सिलिकोन को प्राथमिक पोषक तत्व के रूप में और बोरान, क्लोरीन, तांबा (कॉपर), लौहा, मैंगनीज, मोलिब्डेनम, निकिल, कोबाल्ट, सोडियम और जिंक को सूक्ष्म पोषक तत्वों के तहत वर्गीकृत किया गया है। मूँगफली की फसल को भी अधिकतम विकास और उत्पादकता के लिए इन सभी 17 खनिज तत्वों की आवश्यकता होती है। आम तौर पर निम्नलिखित सूक्ष्म पोषक तत्व सभी पौधों के लिए आवश्यक है उनमें बोरोन, क्लोरीन, तांबा (कॉपर), लौहा, मैंगनीज, मोलिब्डेनम, निकिल और जिंक हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों की जरूरत ऊर्जा चयापचय, प्राथमिक और माध्यमिक चयापचय, कोशिका–संरक्षण, जीन–विनियमन, हार्मोन धारणा, संकेत पारगमन और पौध–प्रजनन की तरह लगभग सभी चयापचय और शारीरिक क्रिया के कार्यों में होती है।

आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व, कमी के लक्षण एवं प्रबंधन

बोरोन: बोरोन मुख्यतः H_3BO_3 (बोरिक एसिड) और H_2BO_3 (बोरेट) के रूप में पौधों द्वारा लिया जाता है। बोरोन प्रोटीन–संश्लेषण, शर्करा के परिवहन, श्वसन, आरएनए, हार्मोन और कार्बोहाइड्रेट चयापचय सहित कई महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं में शामिल है। यह कोशिकाओं की दीवारों में लिग्निन–गठन में भी काम करता है। ये सभी कार्य मेरिस्टेमेटिक–ऊतकों के लिए मौलिक है इसीलिए बोरोन की कमी सक्रिय रूप से बढते अंगों के लिए हानिकारक है जैसे तना या जड़ का सिरा जिससे पूरे पौधे का संचलन अवरुद्ध हो सकता है। बोरोन की कमी अधिकत्तर क्षारीय मिट्टी में होती है। मूँगफली में बोरोन की कमी तमिलनाडू, कर्नाटक, और आंध्र प्रदेश में होती है परंतु गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में बोरोन की कमी खतरनाक स्तर पर होती है।

कमी के लक्षण: तने की एपेक्स की मौत, पार्श्व बड से फुटाव, पत्तों की सिराओं का ठीक से न बनना, पीलापन, तेजी से बढ़ रही पत्तियों में बेसल मार्जिन का परिगलन। परंतु ये सभी लक्षण खेत में खडी मूँगफली की फसल में बहुत कम दिखाई देते है। बोरोन की कमी से मूँगफली में फली की भराई कम होती है जिसकी वजह से शेल्लिंग कम हो जाती है और बोरोन की कमी का सबसे अच्छा उदाहरण है खोखला दाना (होलो–हार्ट), जिसमे मूँगफली का दाना बीच से खाली होता है।

प्रबंधन: बोरोन की कमी वाली मिट्टी में, एक किलोग्राम बोरेक्स, बोरिक एसिड या अन्य किसी दूसरे स्रोत के रूप में उपयोग करने से कमी ठीक हो जाएगी। चूंकि बोरोन की कमी मुख्यतः मूँगफली के दाने को ही प्रभावित करती है, इसलिए, एक किलोग्राम बोरोन प्रति हैक्टर बुवाई से पहले या उगने के 20–25 दिन बाद, मूँगफली के भरे दाने और गुणवत्ता बीज के उत्पादन के लिए उत्तम है। बोरोन बहुत ही कम मात्रा में आवश्यक है। इसलिए दस किलोग्राम से अधिक बोरोन की मात्रा नुकसानदायक हो सकती है।

क्लोरीन: क्लोरीन प्रकृति में हर जगह और अत्यधिक घुलनशील है और पौधे क्लोरीन को अधिक तेजी से मिट्टी से सोखते हैं और आवश्यकता से अधिक क्लोराइड आयन जमा कर लेते हैं। क्लोरीन पौधों में 130 से अधिक कार्बनिक यौगिकों की सरंचना के लिए जरूरी होता है। क्लोरीन मुख्यतः क्लोराइड आयन के रूप में पौधों द्वारा लिया जाता है। पौधों में क्लोरीन की मात्रा 20,000 मिलीग्राम प्रति ग्राम सूखे पौधे के वजन के अनुपात में होती है। क्लोरीन, जटिल क्लोराइड के रूप में, ओसमोसिस और आयनिक संतुलन के लिए आवश्यक है, यह संश्लेषण में भी एक भूमिका निभाता है। क्लोरोप्लास्ट में, क्लोराइड प्रकाश संश्लेषण का एक संरचनात्मक घटक है। गार्ड–कोशिकाओं (स्टोमेटा) का खुलना और बंद होना भी पोटेशियम और मैलट तथा क्लोराइड के प्रवाह द्वारा ही संचालित है। ।छुई–मुई (मिमोसा पुडीका) की सेसोमोनास्टिक पत्ता मूवमेंट सीधे क्लोरीन पर निर्भर है।

कमी के लक्षण: हरिद्रोग (पीलापन) के कारण युवा पत्तियों का कमजोर पड़ना, पत्ती की सतह क्षेत्र की कमी, पौधे का मुरझाना व धीमा विकास, प्रतिबंधित या अत्यधिक शाखित जड़प्रणाली मुख्यतः क्लोरीन की कमी के लक्षण हैं। मूँगफली के साथ–साथ ज्यादातर फसलों में क्लोरीन की कमी नहीं होती है क्योंकि क्लोराइड की कमी आम तौर पर उच्च वर्षा और रेतीली मिट्टी के क्षेत्रों तक ही सीमित है।

प्रबंधन: क्लोराइड युक्त उर्वरक जैसे कैल्शियम क्लोराइड के इस्तेमाल से क्लोरीन की कमी को दूर किया जा सकता है।

तांबा (कॉपर): कॉपर की मात्रा एक पौधे में लगभग 1–20 मिलीग्राम प्रति ग्राम सूखे पौधे के वजन के अनुपात में होती है। तांबा दो ऑक्सीकरण रूपों में मौजूद होता है तथा इन दोनों रूपों के बीच विनिमय कर सकता है। कॉपर ओक्सिडटिव–तनाव के संरक्षण के लिए, कार्बन और नाइट्रोजन चयापचय के लिए, प्रकाश संश्लेषण और मायटोकोन्ड्रियल श्वसन के लिए आवश्यक है और कोशिका–भिती संश्लेषण के लिए भी आवश्यक है। कॉपर जैव रासायनिक प्रतिक्रियाओं में एजेंट का काम करने या ऑक्सीकरण के रूप में भी कार्य करता है। पौधों में आधे से ज्यादा तांबा क्लोरोप्लास्ट में पाया जाता है जहाँ ये संश्लेषक प्रतिक्रियाओं में भाग लेता है। इसलिए तांबे की कमी सबसे पहले नई पत्तियों और प्रजनन अंगों में दिखाई देती है उसके बाद पूरे पौधे का अवरुद्ध विकास और पत्ते हल्के पीले होते हुये सूख जाते हैं।

कमी के लक्षण: तांबे की कमी से मूंगफली के पौधों में नई पत्तियाँ अंदर की तरफ मुड जाती है। पूरी पत्ती कप की तरह हो जाती है और पत्ती ऊपर मार्जिन की तरफ मुड जाती है। पत्तों में हल्का पीलापन, पौधे का धीमा विकास और उसकी बढत रुकना आदि कॉपर की कमी के लक्षण है। तांबे की कमी तने के विकास की तुलना में जड़ के विकास को ज्यादा प्रभावित करती है जिसकी वजह से एक प्रतिकूल तने और जड़ का अनुपात बन जाता है। फूलों में रंगीन पिगमेंट की कमी हो जाती है। फूल और फल बनने के दौरान पत्ती में तांबे का पर्याप्त स्तर 5–20 पीपीएम है और मूंगफली में कॉपर की कमी 5 पीपीएम से नीचे जाने पर नजर आती है।

प्रबंधन: तांबा किसी भी फसल के लिए पोषक तत्व के रूप में कम ही उपयोग किया जाता है, लेकिन कवकनाशी के रूप में यह आमतौर पर प्रयोग किया जाता है। दो किलोग्राम प्रति हैक्टर कॉपर सल्फेट या बोरडेक्स मिश्रण उर्वरक के साथ मिलाकर कॉपर की कमी दूर की जा सकती है। तांबे के चिलेट्स का मिट्टी में उपयोग या पत्ते पर छिड़काव भी प्रभावी उपाय है।

लौहा: लौहा पृथ्वी पर मिट्टी में चौथा सबसे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तत्व है परंतु अभी भी लौह की कमी दुनिया भर में सबसे ज्यादा व्यापक है। आयरन पौधों व मनुष्यों के जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। मूँगफली में सभी पोषक तत्वों में लौह तत्व की कमी सबसे ज्यादा पायी जाती है। मूंगफली के दाने द्वारा उच्च कैल्शियम की आवश्यकता के अधिमानतः मूँगफली ज़्यादातर चूनेदार मिट्टी में उगाई जाती है जहाँ यह चूना प्रेरित लौहे की कमी (आयरन क्लोरोसिस) से ग्रस्त है। यह दो रूपों फेरिक व फेरस में उपलब्ध होता है। पौधों में लौहे की मात्रा 50–150 मिलीग्राम प्रति ग्राम सूखे पौधे के वजन के अनुपात में होती है। कोशिकीय लौह तत्व का 80 प्रतिशत भाग क्लोरोप्लास्ट में पाया जाता है जो प्रकाश संश्लेषण में इसकी प्रमुख भागीदारी के साथ तर्कसंगत है। क्योंकि आयरन क्लोरोप्लास्ट में पत्तियों को हरा रंग देने वाले तत्व क्लोरोफिल के संश्लेषण के लिए आवश्यक होता है इसलिए लौहे की कमी के कारण क्लोरोफिल नहीं बन पाता और पत्ते पीले हो जाते हैं। उच्च पीएच वाली विशेष रूप से शुष्क व कैल्शियम युक्त मिट्टी में लौहे की उपलब्धता सीमित हो जाती है। खराब मिट्टी व अत्यधिक नमी चूना मिट्टी में लौह तत्वों की कमी को बढ़ावा देते हैं। अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों, विशेष रूप से तांबा, मैंगनीज, जस्ता और मोलिब्डेनम की अत्यधिक मात्रा भी लौहे की उपलब्धता को कम कर सकते हैं।

कमी के लक्षण: लौहे की कमी के लक्षण हरेपन में कमी (आयरन क्लोरोसिस) है। ये लक्षण सबसे पहले नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं क्योंकि लौहा पुरानी पत्तियों से जल्दी नहीं जुटाया जा सकता है। लंबे समय तक या ज्यादा कमी होने पर, पत्तियों की सिराएं भी पीली पड़ जाती है जिससे सारा पत्ता सफेद हो जाता है। अत्यंत गंभीर कमी होने पर पौधा सूख जाता है और पूरी फसल मर जाती है। लौहे की कमी से जड़ो में गांठ का विकास अवरुद्ध हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप नाइट्रोजन की कमी हो जाती है।

प्रबंधन: 20 किलोग्राम प्रति हैक्टर आयरन–सल्फेट, जिप्सम, फॉस्फोजिप्सम, सल्फर और पाइराईट का मिट्टी में उपयोग क्लोरोसिस की रोकथाम के लिए अनुमोदित है। लौह युक्त उर्वरक ड्रिप सिंचाई के माध्यम से सबसे प्रभावी है। मूंगफली की खड़ी फसल में क्लोरोसिस की रोकथाम के लिए 0.1 प्रतिशत फेरस सल्फेट, आयरन–साइट्रेट या 0.5 प्रतिशत फेरस सल्फेट सिट्रिक एसिड के साथ छिड़काव प्रभावी असर दिखाते हैं।

मैंगनीज : मैंगनीज पौधों में चयापचय और विकास के लिए आवश्यक है व एक कोशिका के लगभग 35 एंजाइमों में होता है। उच्च पीएच वाली मिट्टी में मैंगनीज की उपलब्धता सीमित होती है क्योंकि उच्च पीएच मान पर मैंगनीज के झाग बन जाते है। भारतीय मिट्टी मैंगनीज में सघन है परंतु फिर भी मैंगनीज की कमी पंजाब, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान और गुजरात में आम है।

कमी के लक्षण: नई पत्तियों की शिराओं का पीलापन जो बाद में पुराने पत्तों में चला जाता है, इस रोग से प्रमुख शिराओं में गहरे हरे रंग के बोल्ड पैटर्न का उत्पादन जोकि लौहे की कमी से होने वाले पीलेपन से अलग ही पहचाना जाता है।

प्रबंधन: उर्वरक के साथ मैंगनीज सल्फेट, मैंगनीज कार्बोनेट या मैंगनीज क्लोराइड के रूप में 4–6 किलोग्राम मैंगनीज प्रति हैक्टर का पत्तों पर 0.2 प्रतिशत मैंगनीज सल्फेट का छिडकाव मैंगनीज की कमी की रोकथाम के लिए अनुमोदित है।

मोलिब्डेनम : मूंगफली में मोलिब्डेनम नाइट्रोजन स्थिरीकरण, नाइट्रोजिनेज एंजाइम और नाइट्रेट रिडक्टेस एंजाइम के लिए आवश्यक है। गैर तिलहनी फसलों या फलियों में (जैसे गोभी,टमाटर, सूरजमुखी या मक्का), मोलिब्डेनम पौधे को मिट्टी से नाइट्रेट उपयोग करने के लिए सक्षम बनाता है। अम्लीय मिट्टी में मोलिब्डेनम पौधे के लिए उपलब्ध नहीं हो पाता, इसलिए मोलिब्डेनम की कमी के लक्षण अम्लीय मिट्टी में ज्यादा दिखाई देते हैं। मोलिब्डेनम की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले अन्य कारक है, एसिड ऑर्गेनिक्स और मुक्त रूप में ज्यादा आयरन। सभी सूक्ष्म तत्वों की तुलना में, मोलिब्डेनम की सबसे कम मात्रा में जरूरत होती है।

कमी के लक्षण: मोलिब्डेनम की कमी के लक्षण नाइट्रोजन की कमी जैसे ही नजर आते है। मोलिब्डेनम की कमी क्लोरोफिल (पत्तों को हरा रंग देने वाला तत्व) कम कर देता है और पत्तियाँ चमकीले पीले, हरे (शिराओं के बीच में हरा व पीलापन) क्लोरोटिक मोटलिंग दिखाने लगती हैं। मोलिब्डेनम की कमी के लक्षण पुरानी पत्तियों में पहले दिखाई देते हैं और फिर धीरे धीरे नई पत्तियों में फैल जाते हैं और पौधे मरने लगते हैं। मोलिब्डेनम की कमी से नाईट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक जडों में गांठ भी कम बनती है।

प्रबंधनः सोडियम या अमोनियम मोलिब्डेट उर्वरक के साथ 0.5–1.0 किलोग्राम प्रति हैक्टर ही फसल के लिए काफी है। पत्ते पर छिडकाव मोलिब्डेनम की कमी को दूर करने के लिए उपयुक्त और प्रभावी विधि है। गोबर की खाद का इस्तेमाल करने से मोलिब्डेनम की कमी होने की संभावना कम होती है।

निकिल : निकिल बीज अंकुरण के दौरान नाइट्रोजन की उपलब्धि और अंकुर के जल्द विकास के लिए आवश्यक है। दलहनी फसलों में नाइट्रोजन यूरिएड्स के रूप में उपलब्ध होती है जो जडों की गांठ में बनता है और फिर ऊपर पौधे को आपूर्ति की जाती है जहाँ से बीज में भंडारण के लिए जमा हो जाता है। सभी प्रकार मिट्टी में निकिल बहुतायत में होता है और पौधों में इसकी आवश्यकता निम्न (लगभग 1–100 नैनो प्रति ग्राम सूखा वजन) है।

कमी के लक्षणः निकिल की कमी से यूरिएड्स विभाजित हो कर यूरिया के रूप में जमा हो जाता है जो की पौधे के लिए हानिकारक होता है।

प्रबंधनः निकिल सल्फेट जैसे घुलनशील लवण जिसमें निकिल आयन होते हैं, निकिल की कमी को रोकने या दूर करने के लिए उपयुक्त उर्वरक का काम करते हैं। पत्ते पर 0.03–0.06 पीपीएम का छिड़काव भी पर्याप्त है।

कोबाल्ट : यह राईजोबियम जीवाणुओं के विकास के लिए आवश्यक है जो फलियों की जड में गांठ (नोड्यूल) बनाने और वायुमंडलीय नाइट्रोजन के अमीनो एसिड और प्रोटीन स्थिरीकरण में सहायक होता है। विटामिन बी 12, जिसमें कोबाल्ट प्रमुख तत्व होता है, राईजोबियम द्वारा संश्लेषित और हीमोग्लोबिन में वितरित किया जाता है। जड़ों के नोडयूल गांठ में हीमोग्लोबिन नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए सीधे संबंधित है।

कमी के लक्षणः कोबाल्ट की कमी के लक्षण विटामिन बी 12 का कम उत्पादन और नाइट्रोजन स्थिरीकरण में कमी होना है जिससे जड़ों में छोटी गांठ बनती है। असमान रूप से हरी, पीली पत्तियां, पुराने पत्तों पर सबसे गंभीर, कुछ फसलों में लाल पत्तियों का विकास, लाल दाना भी हो सकता है। दाने या बीज का उत्पादन मंद हो सकता है।

प्रबंधनः कोबाल्ट के केवल कुछ औंस प्रति एकड़ डालने से 10 से 21 दिनों में कमी के लक्षण को हल कर सकते हैं।

सोडियम : सोडियम की कमी केवल अत्यधिक स्वच्छ वातावरण में बड़े पौधों में देखी गई है जहाँ उन्हें प्राकृतिक या कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में नहीं रखा गया हो। इसके विपरीत, सोडियम की विषाक्तता व्यापक है और कई देशों में गंभीर समस्याओं का कारण भी है। सोडियम तीन अलग तरीकों से पौधों को लाभ पहुंचा सकता है। सोडियम आवश्यक हो सकता है या पोटेशियम की आपूर्ति कम होने पर सोडियम पोटेशियम के लिए विकल्प हो सकता है या सोडियम, पोटेशियम की ज्यादा आपूर्ति होने पर भी विकास में वृद्धि कर सकता है। सोडियम पौधों में ओस्मोटिक पानी निर्वहन और आयनिक संतुलन में शामिल है। सोडियम फसल की गुणवत्ता बेहतर बनाता है जैसे शर्करा बढा कर गाजर के स्वाद में सुधार लाता है।

कमी के लक्षणः सोडियम की कमी प्रकृति में पौधों की वृद्धि को कभी सीमित नहीं करती लेकिन मूँगफली में सोडियम की कमी पत्ते की कम वृद्धि, हरेपन में कमी, और नेक्रोसिस का कारण बनती है।

जस्ता (जिंक) : जिंक पौधों और मानव, दोनों के विकास और प्रजनन में शामिल एंजाइमों की एक बड़ी संख्या के कामकाज के लिए एक आवश्यक पोषक तत्व है। यह संश्लेषण और क्लोरोफिल के कामकाज के लिए आवश्यक है, हारमोन प्रणाली और विकास नियामक औक्जिन के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में शामिल है। जिंक की कमी ज्यादातर हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडू और गुजरात में होती है जहाँ मिट्टी कैल्शियम युक्त और क्षारीय, उच्च उपलब्ध फास्फोरस और उच्च घनत्व वाली होती है।

कमी के लक्षणः जिंक सीमित या कम आपूर्ति में फसल की पैदावार और मुनाफे पर भी असर करता है और अन्य उर्वरक पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन को फसल के उपयोग के लिए भी कम कर देता है। जिंक की कमी से नई पत्तियों का पीलापन, शिराओं का पीलापन व ऊपरी पत्तियों में अनियमित मोटलिंग जिससे नई पत्तियाँ छोटे आकार और गुच्छे में निकलती है। छोटे, गहरे हरे रंग की विकृत पत्तियों के शाखाओं के साथ छोटा इंटरनोड और कभी–कभी पत्तियाँ रंगविहीन भी हो जाती है।

प्रबंधनः जिंक की कमी को आसानी से अकार्बनिक स्रोतों और जस्ता युक्त उर्वरक जैसे जिंक सल्फेट, जिंक ऑक्साइड,से

सुधारा जा सकता है। पत्तों पर जिंक सल्फेट का छिड़काव भी जिंक की कमी को दूर करने में सक्षम है। ड्रिप सिंचाई के द्वारा जिंक का प्रयोग अधिक प्रभावशाली होता है।

निष्कर्ष

खनिज तत्वों की कमी और विषाक्तता की समस्या को दूर करने के लिए विभिन्न पोषक तत्व प्रबंधन तकनीकों का समेकित प्रयोग ही एकमात्र उपाय है। जलोढ़ मिट्टी का पीएच मान क्षारीय से तटस्थ है जो फॉस्फोरस और पोटेशियम में सघन है परंतु उसमे जैविक कार्बन की कमी होती है। इसी तरह लेटराइट मिट्टी (पीएच 4.0–6.0) अम्लीय और कैल्शियम, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम की कमीयुक्त है। लाल मिट्टी नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, कैल्शियम में सघन है तो काले कैल्शियम युक्त मिट्टी नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और कार्बनिक पदार्थ में। आमतौर पर क्षारीय मिट्टी मूंगफली के लिए सबसे उपयुक्त है। इस तरह, अलग–अलग तरह की मिट्टी में विभिन सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा भिन्न–भिन्न होती है और इसके सुधार के लिए केवल एक तकनीक सफल नहीं हो सकती है। फसल की एक बेहतर किस्म की पहचान और उसको अपनाना, प्रबंधन की उचित समझ, मौसम, उपयुक्त किस्मों, उपयुक्त पोषक तत्व, मिट्टी परीक्षण, फसल के कार्बनिक और अकार्बनिक पोषक तत्व प्रबंधन आदि प्रक्रियाएँ खेती की लागत को कम करने और फसल की उपज बढ़ाने के लिए आवश्यक है।

समाप्त

चरित्र को बनाए रखना आसान है,
उसके भ्रष्ट हो जाने पर सुधारना कठिन है।

लवणग्रस्त भूमि पर कृषिवानिकी की चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

राकेश बनियाल, आर॰ के॰ यादव एवं प्रवीण कुमार

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

वर्त्तमान में दुनिया की सबसे बडी समस्या बढ़ती हुई आबादी को भोजन एवं आवास की सुविधा उपलब्ध कराने की है। इस विकास की दौड़ में हमने पर्यावरण संरक्षण के प्रति काफी उदासीनता दर्शाई है। जिसके परिणामस्वरूप वातावरण में कार्बन डाईआक्साईड की मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। आज वातावरण में कार्बन डाईआक्साईड का स्तर लगभग 398 पी.पी.एम. है तथा एक अनुमान के अनुसार यदि यह इसी गति से बढ़ती रही तो वर्तमान सदी के अन्त तक इसका स्तर 800 से 1000 पी.पी.एम. तक पहुँच जायेगा। कार्बन डाईआक्साईड के इस गति से बढ़ने के कारण दुनिया के वर्तमान प्रारूप को खोने तक का खतरा पैदा हो गया है। पर्यावरण में कार्बन डाईआक्साईड की मात्रा कम करने में वृक्षारोपण सबसे सस्ता और आसान तरीका है। सामान्य भूमि पर वृक्षारोपण नहीं किया जा सकता क्योंकि अनाज़ पैदा करना दुनिया की पहली प्राथमिकता है। इसलिए इस तरह की गतिविधि के लिए हमारे पास समस्याग्रस्त भूमि ही रह जाती है। यह समस्या चाहे लवणता की हो या किसी दूसरी प्रकार की। भारतवर्ष का वनावरण (ट्री कवर) लगभग 21.23 प्रतिशत है जो कि राष्ट्रीय वन नीति, 1988 के दिशानिर्देशों के अनुसार बहुत कम है। इस वन नीति के अनुसार 33 प्रतिशत मैदानी और 60 प्रतिशत पहाड़ी क्षेत्र वृक्षों के अर्न्तगत होना चाहिए। हरियाणा और पंजाब जो कृषि प्रधान राज्य है में स्थिति और भी चिंताजनक है।

परंपरागत वन ही रोजमर्रा की जरूरतों का दबाव कम करने का एक मात्र उपाय है इसलिए हमें खाली पड़ी समस्याग्रस्त भूमि जिसमें सरकारी, सामुदायिक, निज़ी और अन्य प्रकार की भूमि को भी वृक्षारोपण कार्यक्रम के अंतर्गत लाना होगा। निर्देशित वन क्षेत्र के बाहर वृक्षारोपण द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की ऊर्जा पूर्ति के साथ–साथ वहाँ की दूसरी प्रकार की मांग की आपूर्ति भी कार्बन तटस्थ तकनीकी नमूनों के रूप में वृक्षारोपण द्वारा की जा सकती है। इसलिए समय की मांग है कि लवणग्रस्त भूमि को भी उपयोग में लाया जाए। इस प्रकार की भूमि पर वृक्षों के साथ–साथ फसलों की खेती व सुधार करके सामान्य बनाया जा सकता है। अब समय आ गया है कि फसलों और वृक्षों के पुनःसंयोग से होने वाले लाभों द्वारा समस्याओं जिनमें अनाज उत्पादन में वृद्धि, मृदा पोषक तत्वों की सुरक्षा, उपजाऊ भूमि का कटाव एवं बढ़ते हुए मरूस्थल क्षेत्र को रोकना, आदि के निदान में उपयोग किया जाए। कृषिवानिकी स्वरूप और कार्यात्मक आधार पर स्रोतों (पोषक तत्व, प्रकाश, पानी) का दोहन करने की एक जटिल परन्तु कारगर पद्धति है जोकि स्वरूप की विविधता के साथ–साथ संयोजक चक्र को भी पूर्ण करती है। आधुनिक कृषि एवं वानिकी की सफलता बिल्कुल एक ही तरह और कम प्रकार की फसलों व वृक्षों पर ही निर्भर हो कर रह गई है। जिससे पारिस्थितिकी त्रासदी पैदा होने का अंदेशा हो रहा है। परंपरागत खेती की तरफ उदासीन रवैये से कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। लेकिन पिछले कुछ समय से कृषिवानिकी की भूमिका को आज की कई प्रकार की पर्यावरण और सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए कारगर माना जा रहा है।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकार की लवणग्रस्त भूमियों के लिए कृषिवानिकी के विकास के साथ–साथ इस तरह की भूमि को सुधारने एवं उत्पादकता बढ़ाने के सन्दर्भ में आने वाली चुनौतियों और संभावनाओं से अवगत कराना है।

लवणग्रस्त भूमि

लवणीय भूमि से अभिप्राय यह है कि ऐसी भूमि जिसमें घुलनशील लवण की मात्रा 4.0 डेसी.सी./मी. वैद्युत चालकता से ज्यादा और सामान्यतः पीएच मान 8.2 के बराबर या इससे अधिक होती है। इस तरह की भूमि को दो श्रेणियों में बांटा गया है। एक जिसमें घुले हुए लवण मुख्यतः सोडियम क्लोराईड और सोडियम सल्फेट के साथ–साथ कैल्शियम और मैग्नीशियम के क्लोराईड और सल्फेट भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इस तरह की भूमि को लवणीय कहा जाता है। दूसरी प्रकार की लवणग्रस्त भूमि में विनिमय योग्य सोडियम की मात्रा मिट्टी के कुल घनायन

लवणग्रस्त भूमि का दृश्य

जलौढ़ लवणीय भूमि

विनिमय क्षमता के 15 प्रतिशत से अधिक हो तथा पीएच मान 8.2 से अधिक हो, इन भूमियों को क्षारीय मृदा कहते हैं। दोनों प्रकार की भूमि एक दूसरे से पूरी तरह रासायनिक, भोगौलिक, भौतिक और जैविक दृष्टि से अलग होती है। इसलिए दोनों प्रकार की समस्या ग्रसित भूमि के उपचार के लिए अलग–अलग तरह की पद्धति का समावेश होता है। लेकिन लवणग्रस्त भूमि का उपयोग उत्पादन वाले कार्यों में आर्थिक दृष्टि से करना समझदारी नहीं मानी जाती है। इसलिए ऐसी भूमि पर कोई भी फसल व पौधा उगाना अपने आप में बड़ी चुनौती है।

एक अनुमान के अनुसार पूरी दुनिया में 20 प्रतिशत भू–भाग लवणों की समस्या से ग्रसित है। भारत में लगभग 6.73 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में इस तरह की भूमि पाई जाती है। इस तरह की भूमि के क्षेत्र में दिन प्रतिदिन विभिन्न कारणों से वृद्धि हो रही है इसलिए इसका आंकड़ा वर्ष 2050 तक लगभग 20 मिलियन हैक्टर तक पहुँचने की संभावना है। इस तरह के क्षेत्र की अनियंत्रित वृद्धि में कृषि में सिंचाई का विस्तार मुख्य कारण माना जा रहा है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की कई शोध संस्थाओं द्वारा इस प्रकार की भूमि को सुधारने के लिए कई तरह की तकनीकियाँ विकसित की है लेकिन इस तरह की तकनीकियों की उपयोगिता बहुत ही सीमित है।

लवणग्रस्त भूमि पर कृषिवानिकी में अनुसंधान संस्थाओं का योगदान

लवणग्रस्त भूमि के सुधार में राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा विभिन्न प्रकार की कृषिवानिकी पद्धतियाँ विकसित की गई है। इन नमूनों से कई लाख हैक्टर लवणग्रस्त भूमि को सुधारा जा सका है। सुधारी हुई भूमि में सामान्य फसल चक्र से राष्ट्रीय खाद्यान्न आपूर्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान हो रहा है जिसके फलस्वरूप भारतवर्ष अनाज़ उत्पादन में आत्म–निर्भरता प्राप्त कर सका है। इस संस्थान द्वारा लवणग्रस्त भूमि को सुधारने के लिए विकसित तकनीकियों से किये गये प्रयासों से सिंधु गंगा के मैदानी क्षेत्रों में लगभग 2.0 मिलियन हैक्टर भूमि को सुधारा गया

अधिक क्षारीय भूमि में सिल्वी–पैस्टोरल पद्धति

है। इस क्षेत्र से लगभग 16.0 मिलियन टन धान एवं गेहूँ की पैदावार होती है। शोध कार्यों में यह पाया गया है कि लवणग्रस्त भूमि को संशोधन प्रक्रिया द्वारा सुधारना काफी महंगा कार्य है। यहाँ तक कि सांझा पूँजी और सामुदायिक लवणग्रस्त भूमि में संशोधन करना एक बहुत बड़ी समाजिक समस्या है। इसलिए यह पाया गया कि कृषिवानिकी ही लवणग्रस्त भूमि को सामान्य भूमि में बदलने का एक मात्र सरल, सस्ता और कारगर उपाय है। कृषिवानिकी के क्षेत्र में केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित तकनीकियों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

क. अत्यधिक क्षारीय भूमि के लिए विकसित कृषिवानिकी

इस तरह की भूमि में सुधार करने के लिए सिल्वी–पैस्टोरल नमूना उपयुक्त पाया गया है। इस पद्धति में बबूल (*प्रोसोपिस*) और फरास (*टैमेरिक्स*) वृक्षों के साथ *लैपटाक्लोआ फुस्का, क्लोरिस गुयाना* और *ब्रकेरिया मयुटिका* घास की प्रजातियों को ऐसी भूमि पर लगाना फायदेमंद पाया गया है। इन सभी वृक्षों और घास की परखी हुई प्रजातियों में विलायती बबूल के साथ कल्लर घास (*लैपटाक्लोआ फुस्का*) लगाना सबसे सफल और प्रभावशाली रहा है। इस प्रकार के विकसित नमूने में वृक्षों और पंक्ति में अन्तर 2 गुणा 2 मीटर रखा जाना चाहिए। छः वर्षों के बाद इस तरह की भूमि में काफी हद तक सुधार पाया गया। चार वर्षों के बाद कल्लर घास की जगह अन्य रूचिकर घास की प्रजातियाँ जिनमें सफतल (*ट्राइफोलियम रेसुपीनेटम*), बरसीम (*ट्राइफोलियम अलेक्जेनड्रीनम*) और सैन्जी (*मेलीलोटस पारवीफ्लोरा*) को विलायती बबूल के साथ सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। वानिकी और फलदार वृक्षों की कई प्रजातियाँ अत्यधिक क्षारीय (पीएच मान 10) भूमि पर लगाई जा सकती है लेकिन उनमें से कुछ जैसे अनार, ऐसी भूमि जिसमें पानी खड़ा रहने की भी समस्या हो, नहीं उग सकता है। ऐसी भूमि के लिए "उभरी और धंसी हुई क्यारी तकनीक" विकसित की गई है। इस तकनीक में वृक्षों को उभरी हुई मेड़ों और धान–गेहूँ और बरसीम–कल्लर घास धंसी हुई क्यारियों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इस तकनीक में केवल दो वर्षों के अन्तराल में ही सार्थक रूप से पीएच मान में काफी कमी पाई गई है।

ख. निम्न क्षारीय भूमि के लिए कृषिवानिकी पद्धति

इस पद्धति में तीन तरह के व्यवसायिक वृक्षों की प्रजातियाँ जैसे पोपलर (*पौपुलस डैलटयोडस*), सफेदा (*यूकेलिप्टस ट्रिटीकोरनिस*) और बबूल (*अकेसिया निलोटिका*) को अकेले और फसल अनुक्रम के साथ उगाया जाता है। फसल अनुक्रम जिसमें धान–गेहूँ पहले चार वर्षों के लिए और गिनी घास (*पैनिकम मैक्सिमम*) – जई (*एवीना सेटाईवा*) अगले दो वर्षों के लिए, धान–बरसीम पहले चार वर्षों के लिए और लोबिया – बरसीम अगले दो वर्षों के लिए एवं अरहर/ज्वार–सरसों पहले तीन वर्षों के लिए और हल्दी बाकी शेष तीन वर्षों के लिए परखी गई। पांच वर्षों के अन्तराल के बाद भूमि सुधार का क्रम जिसमें बबूल>पोपलर>सफेदा>अकेली फसल सफल पाई गई। इस पद्धति से यह ज्ञात हुआ कि कृषिवानिकी भूमि की उत्पादकता, रख–रखाव और आर्थिक तौर पर निम्न क्षारीय भूमि पर सबसे उत्तम विकल्प है।

लवणग्रस्त भूमि पर सफेदा आधारित कृषिवानिकी

ग. जलौढ लवणीय भूमि के लिए कृषिवानिकी पद्धति

इस तरह की भूमि में "सतही या उपसतही जलनिकास तकनीक" अत्यंत उत्तम पाई गई है। परन्तु यह तकनीक बहुत ही मंहगी पड़ती है इसलिए लवण सहिष्णु वृक्षों और फसलों के प्रयोग से इस तरह की भूमि में सुधार लाया जा सकता है। वृक्षों की प्रजातियां जिनमें मुख्यतः *अकेसिया फरनीसियाना, पारकिनसोनिया एकूलिएटा, प्रोसोपिस जूलिफलोरा, सालवाडोरा परसिका* और *टैमेरिक्स* को जलौढ़ लवणीय भूमि के सुधार के लिए उपयुक्त पाया गया है इन वृक्षों के साथ–साथ चारा, फूलों, औषधीय व सुगंधित पौधों को भी ऐसी भूमियों के सुधार के लिए लाभकारी पाया गया है। घास की प्रजातियों में पैनिकम, सैन्करस और ब्रकेरिया मुख्य है। औषधीय पौधों में इसबगोल, पुदीना, एलोय, तुलसी और सुगंधित पौधों में सीम्बोपोगौन वैटिवर, पैरीविन्कल इत्यादि को कृषिवानिकी द्वारा इस तरह की भूमि के सुधार के लिए लाभकारी पाया गया है। फूलों की प्रजातियों में सटौक, पन्टीरहाईनम, स्वीटविलियम, कैन्डीटफ्ट, कैलेन्डुला, मैरीगोल्ड, सजावटी सरसों, गुलदाउदी और मैट्रीकेरिया को लवणीय भूमि के लिए उपयुक्त माना गया है।

चुनौतियाँ

कृषिवानिकी एक जटिल पद्धति है क्योंकि इसमें कृषि फसलों के साथ–साथ वृक्षों और जानवरों का भी समावेश होता है। यह पद्धति भूमि के ऊपर और निचले पारिस्थितिकी तन्त्र को स्थिरता प्रदान करती है। इसलिए कृषिवानिकी का दोहन लवणग्रस्त भूमि के सुधार में अत्यन्त लाभकारी एवं उपयोगी है। लेकिन इस दोहन को वास्तविकता में बदलने के लिए विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का हल ढूंढ़ने की आवश्यकता है। इन चुनौतियों को संक्षिप्त रूप से नीचे दर्शाया गया है।

- कृषिवानिकी की सभी प्रचलित पद्धतियों में तकनीकी और आर्थिक जानकारी का अभाव होना।
- प्रचलित पद्धतियों में उत्पादकता का कम होना।
- प्रभावशाली ढंग से समय और स्थान का उपयोग न होना।
- बहुत ही कम फसलों और वृक्षों की लवणीय भूमि पर कृषिवानिकी में जानकारी होना।
- किसानों द्वारा विभिन्न कारणों से बहुत कम पैमाने पर इस पद्धति का अभिग्रहण करना।
- तकनीक विकसित करने वालों और प्रयोग करने वालों में सामंजस्य का अभाव होना।
- किसानों को आकर्षित करने वाली उपयुक्त तकनीकों का अभाव होना।
- लवणग्रस्त भूमि के लिए विकसित कृषिवानिकी के नमूनों की बड़े स्तर पर प्रासंगिकता का अभाव होना।
- कृषिवानिकी को केवल कृषि और वानिकी की तुलना में कम महत्त्व मिलना।

संभावनाएँ

कृषिवानिकी से लवणग्रस्त भूमि में सुधार हेतु फसलों और पौधों का प्रबंधन ही सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। इसी सन्दर्भ में पिछले कुछ समय से विभिन्न प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं ताकि इस पद्धति द्वारा कम से कम समय और लागत में इस प्रकार की भूमि को कार्यक्षम बनाया जाए। लवणग्रस्त भूमि पर कृषिवानिकी की अपार संभावनाएँ हैं जिनमें से मुख्य इस प्रकार है:

- लवणीय भूमि अकेले कृषि फसलों के लिए उपयुक्त नहीं मानी जाती है और अगर इस तरह की भूमि एक सीमा तक ठीक भी हो तो आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं होती है। इसलिए फसलों के साथ–साथ लवण सहिष्णु वृक्षों को एक साथ इस तरह की भूमि में सुधार के लिए प्रयोग किया जा सकता है।
- इस तरह की भूमि वृक्षों के लिए एक सीमा तक उपयुक्त मानी जाती है इसलिए पहले वृक्षों को ऐसी भूमि पर लगाने के बाद कृषि फसलों का समावेश किया जाना चाहिए।
- कृषिवानिकी द्वारा भूमि में कम गुणवत्ता वाले पानी को पुनःचक्रण (रीसाईकल) करके इसमें काफी सुधार किया जा सकता है।

- लवणग्रस्त भूमि सुधार के लिए कृषिवानिकी को एक उपचारात्मक अभिप्राय के रूप में देखा जा रहा है। इसको पूरी तरह से सकल रूप देने के लिए उपयुक्त वृक्षारोपण की विधि और लवण प्रतिरोधक वृक्षों का चयन बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है। इस प्रकार खाली पड़ी लवणग्रस्त भूमि को आर्थिक दृष्टि से कार्यक्षम बनाया जा सकता है।
- वृक्षारोपण से सतही लवण भूमि की निचली सतह पर आसानी से चले जाते हैं जिससे ऊपरी सतह कृषि फसलों के लिए उपयुक्त बन जाती है।

निष्कर्ष

कृषिवानिकी के लाभों को लवणग्रस्त भूमि के सुधार में निरन्तर समझने का प्रयास हो रहा है। लेकिन अभी तक इस सन्दर्भ में बहुत सारी चुनौतियाँ है जिनका समाधान ढूंढ़ना समय की मांग है। इस लेख में चुनौतियों के साथ–साथ संभावनाओं के बारे में भी बताया गया है। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आने वाले समय में कृषिवानिकी एक बहुगुणीय दीर्घकालिक लवणग्रस्त भूमि प्रबंधन का बहुआयामी साधन होगा जो विश्व समुदाय की सेवा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम होगा।

समाप्त

जिनके भीतर आचरण की दृढता रहती है,
वही विचार में निर्भीक और स्पष्ट हुआ करते हैं।

सुधरी क्षारीय भूमि पर बहुउद्देशीय कृषि में कृषक सहभागिता

गजेन्द्र, हनुमान सहाय जाट, आर.के. यादव, आर. राजू एवं दिनेश कुमार शर्मा

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

हरित क्रांति के 4 दशक बाद भी लघु एवं सीमान्त किसानों को फसलोत्पादन से होने वाली आय से आजीविका सुरक्षा की अनिश्चितता बनी रहती है। देश की बढ़ती जनसंख्या व शहरीकरण के कारण जोत का आकार सिकुड़ना व फसलों की लगातार बढ़ती लागत के बावजूद कम उत्पादकता है, इसके मुख्य कारण आज देश में 50 प्रतिशत किसानों के पास एक हैक्टर से भी कम जमीन है एवं 80 प्रतिशत किसानों के पास दो हैक्टर से भी कम जमीन है। सिंधु–गंगा के मैदानी क्षेत्रों में लगभग 70–75 प्रतिशत क्षेत्रफल सीमान्त एवं लघु किसानों के अन्तर्गत आता है जहाँ धान–गेहूँ फसल प्रणाली को अपनाया जाता है। भारत के इन क्षत्रों में पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश से कुल खाद्यान्न का लगभग 25 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है जिस कारण इस क्षेत्र को देश का 'अनाज का कटोरा' कहा जाता है। किन्तु अब यह क्षेत्र भी कई समस्याओं से ग्रस्त होता जा रहा है जैसे लगातार धान उगाने से भूमिगत जलस्तर काफी नीचे गिरता जा रहा है जो आज चिंता का विषय बन गया है। आजकल धान–गेहूँ फसल प्रणाली के टिकाऊपन पर भी सवालिया निशान लगा हुआ है क्योंकि अधिक पैदावार पाने के लिए खेती की सघन पद्धति को लगातार अपनाने से मृदा में कार्बनिक पदार्थों एवं पोषक तत्वों की कमी, उनका बिगडता संतुलन, भूजल स्तर का नीचे जाना, कीटों, रोगों तथा खरपतवारों का अधिक प्रकोप इत्यादि समस्याएं आ रही है। इसके अतिरिक्त बढ़ते वैश्विक ताप (ग्लोबल वार्मिंग) के प्रभाव से उत्तर भारत में सर्दी की अवधि कम होती जा रही है और फरवरी माह से ही तापमान में वृद्धि शुरू हो जाती है जिसके फलस्वरूप गेहूँ के उत्पादन में पिछले कुछ वर्षों से कमी आई है। ऐसे में उम्मीद के मुताबिक उपज पाने के लिए किसानों को 5–10 प्रतिशत अधिक खर्च करना पडता है। यदि अभी कोई कारगर उपाय नहीं अपनाया गया तो आने वाले समय में उपरोक्त समस्याएं और अधिक विकराल हो जायेगी।

धान–गेहूँ फसल प्रणाली को अपनाने से फसल की कटाई के समय वर्ष में केवल दो बार ही आमदनी प्राप्त होती है जबकि किसान को प्रतिदिन खर्चे के लिए पैसे की आवश्यकता पडती है। मध्य एवं दक्षिण भारत में जहाँ एकल फसल प्रणाली अपनाई जाती है वहाँ फसल में रोग की संभावनायें अधिक रहती है व अन्य कारणों से भी वांछित उपज प्राप्त नहीं होती है जिसके कारण किसान कर्ज के बोझ तले आ जाता है व उसे चुकाने में असमर्थ हो जाता है। सीमान्त एवं लघु किसानों के लिए अपने औसतन 5–6 सदस्यों के परिवार एवं इतने ही पशुओं की दैनिक जरुरतों को पूरा करना एक बडी समस्या है। अतः हमें ऐसी खेती की जरुरत है जो प्राकृतिक संसाघनों की उपयोग दक्षता में वृद्धि के साथ–साथ किसान की रोजमर्रा की जरुरतों को पूरा कर सके एवं उसके परिवार के सदस्यों के लिए रोजगार के अवसर प्रदान कर सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रचलित धान–गेहूँ फसल प्रणाली में फसल विविधीकरण के साथ सुधार किया जाये और फसलोत्पादन को कृषि के सहायक व्यवसायों के साथ जोड़ा जाये ताकि भूमि की उर्वराशक्ति को कायम रखने और भूजल स्तर को गिरने से रोकने के साथ ही किसान को वर्ष भर लगातार आमदनी प्राप्त होती रहे। ऐसी स्थिति में बहुउद्देशीय कृषि मॉडल एक उपयुक्त समाधान के रूप में उभर कर आता है।

बहुउद्देशीय कृषि मॉडल, कृषि के एक दूसरे से संबंधित और परस्पर पूरक विभिन्न घटकों पर आधारित एक समन्वित कृषि तकनीक है। इस तकनीक में किसान फसलोत्पादन (अन्न, चारा, सब्जी, फूल एवं फल उत्पादन) के साथ–साथ कृषि से संबंधित अन्य घटकों या कृषि आधारित उद्योगों, जैसे पशुपालन, मछली पालन, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, बत्तख पालन, मशरुम उत्पादन, कम्पोस्ट उत्पादन, सौर उर्जा उत्पादन एवं जैविक गैस (बायो गैस) उत्पादन इत्यादि को अपनाकर उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग के साथ

परिवार की नियमित आमदनी और रोजगार को गुणात्मक रूप से बढ़ा सकता है। बहुउद्देशीय कृषि मॉडल में एक घटक से बचे हुए उत्पादों तथा अवशेषों को दूसरे घटक में उपयोग किया जा सकता है जिससे उत्पादन लागत कम होने से शुद्ध लाभ में वृद्धि होती है और रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं। इस मॉडल में फसलों के अवशेषों को कम्पोस्ट बनाने में प्रयोग किया जा सकता है और पशुओं से प्राप्त गोबर का उपयोग गोबर गैस, मछली उत्पादन और वर्मीकम्पोस्ट आदि बनाने में किया जाता है। अतएव् बहुउद्देशीय कृषि सीमान्त एवं लघु किसानों के जीविकोपार्जन को एक नई दिशा प्रदान करता है, साथ ही भूमि एवं जल संसाधनों की गुणवत्ता को भी स्थिरता प्रदान करता है।

बहुउद्देशीय कृषि के घटक

संस्थान प्रक्षेत्र के 2 हैक्टर क्षेत्रफल को मुख्य घटकों के लिए 0.2 हैक्टर के बराबर आकार के भागों में विभाजित किया गया है जिसमें विभिन्न कृषि उत्पादों का उत्पादन निम्नांकित ढंग से किया गया। बहुउद्देशीय कृषि मॉडल के विभिन्न घटकों को मुख्यतः दो भागों (फसल घटक एवं सहायक घटक) में विभाजित किया गया है।

फसल घटकः 1.8 हैक्टर क्षेत्र में विभिन्न फसल एवं फसल चक्र अपनाए गए हैं जो निम्नानुसार है।

क. अन्न उत्पादन (50 प्रतिशत क्षेत्रफल/1.0 हैक्टर) : धान–गेहूँ फसल प्रणाली को लगातार अपनाने से भूजल स्तर एवं भूमि की उर्वराशक्ति में कमी आ रही है क्योंकि इस फसल प्रणाली को अधिक सिंचाइयों एवं पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इस मॉडल में धान–गेहूँ फसल प्रणाली के अलावा 3 अन्य वैकल्पिक फसल प्रणालियों का चयन किया गया है। भूमि की उर्वरता को बनाये रखने के लिए धान–गेहूँ फसल प्रणाली के अलावा सभी फसल प्रणालियों में दलहनी फसल को सम्मिलित किया गया है जो कि वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के भूमि में स्थिरीकरण द्वारा मृदा की उर्वराशक्ति को बढाती है। अन्न उत्पादन के अंतर्गत 4 फसल प्रणालियों को अपनाया गया है जो इस प्रकार हैः

20 प्रतिशत/0.4 हैक्टर क्षेत्रफल में धान – गेहूँ – मूंग फसल प्रणाली

20 प्रतिशत/0.4 हैक्टर क्षेत्रफल में मक्का – गेहूँ – मूंग फसल प्रणाली

10 प्रतिशत/0.2 हैक्टर क्षेत्रफल में धान – जई फसल प्रणाली

ख. चारा उत्पादन (20 प्रतिशत क्षेत्रफल/0.4 हैक्टर) : मॉडल में सम्मिलित चार बडे पशुओं की वर्षभर हरे चारे की पूर्ति करने के लिए 20 प्रतिशत क्षेत्रफल में चारा फसलें जैसे खरीफ में ज्वार, बाजरा एवं मक्का और रबी में बरसीम, बरसीम+सरसों और जई उगाई जाती है। चारा फसलों को एक क्रम में लगाया जाता है ताकि हरे चारे की सालभर कमी नहीं हो।

ग. सब्जी उत्पादन (10 प्रतिशत क्षेत्रफल/0.2 हैक्टर) : पूरे वर्ष सब्जियों की उपलब्धता बनाये रखने के लिये खरीफ मौसम में टमाटर, घीया, खीरा, भिंडी आदि एवं रबी में पत्ता

गोभी, फूल गोभी, टमाटर आदि एव जायद में टमाटर, घीया, खीरा आदि सब्जियों को लगाया गया। बाजार में सब्जियों की कीमत को ध्यान में रखते हुये इन्हें उचित समय पर लगाया गया।

घ. फल एवं सब्जी उत्पादन (10 प्रतिशत क्षेत्रफल/0.2 हैक्टर) : इस उत्पादन घटक के अंतर्गत अमरूद की इलाहाबादी सफेदा प्रजाति को 5 मीटर गुणा 5 मीटर की दूरी पर सब्जी वाली फसलों के साथ लगाया गया। फलों के वृक्षों की कतारों के बीच पड़े खाली स्थान में अन्तःफसल के रूप में मौसमी सब्जियाँ उगाई गयी। सब्जियाँ जैसे टमाटर, भिंडी, पत्ता गोभी, फूल गोभी आदि को लगाया जाता है इसमें फैलने वाली सब्जियों (घीया, खीरा आदि) को नहीं लगाना चाहिए। चित्र में बहुउद्देशीय कृषि प्रणाली के तहत धान, मक्का, गेहूँ, आलू और बरसीम फसलों को दर्शाया गया है ।

सहायक घटक : 0.2 हैक्टर

क. मछली उत्पादन (10 प्रतिशत क्षेत्रफल/0.2 हैक्टर) : बहुउद्देशीय कृषि मॉडल में मछली पालन 0.2 हैक्टर क्षेत्रफल के तालाब में किया गया। मछली पालन के साथ–साथ तालाब के बंध (6–8 मीटर चौड़ाई) पर फलदार वृक्ष जैसे अमरूद, केला, आँवला एवं करौंदा लगाया गया तथा वृक्षों के बीच खाली जगह पर मौसम के अनुसार विभिन्न सब्जियाँ जैसे पालक, मेथी, मूली, गोभी तथा गर्मी और बरसात में भिंडी, कददू, तोरई, लौकी आदि उगाई जाती है। फलों एवं सब्जियों में सिंचाई सौर ऊर्जा तथा ऊँचाई पर स्थित पानी की टंकी से उत्पन्न होने वाले दबाव द्वारा चलित ड्रिप विधि से की जाती है।

इसके अलावा तालाब के बंध के पास बहुउद्देशीय कृषि के अन्य घटकों को अपनाया गया है।

ख. पशु पालन

ग. मूर्गी पालन

घ. जैविक गैस उत्पादन

ड़ कम्पोस्ट उत्पादन

बहुउद्देशीय कृषि का आथिक विश्लेषण

फसल एवं सहायक घटकों से उत्पन्न कुल आमदनी, क्रियान्वयन लागत एवं शुद्ध आमदनी का विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है। 2 हैक्टर बहुउद्देशीय कृषि मॉडल को अपनाने से कुल आमदनी रुपये 795576 में से लगभग रुपये 406129 की शुद्ध आमदनी प्राप्त हुई।

फसल घटकों से कुल आमदनी रुपये 333810 अर्जित हुई। पशु पालन कृषि का एक महत्त्वपूर्ण घटक है जिसके द्वारा वर्षभर आमदनी और रोजगार मिलता है। पशु पालन के बिना बहुउद्देशीय कृषि अधूरी प्रतीत होती है इसलिए इसका समावेश करना बेहद जरुरी है। पशुओं से दुग्ध उत्पादन के अलावा गोबर एवं मूत्र भी मिलता है जो कम्पोस्ट, केंचुआ खाद एवं बायो गैस आदि बनाने के काम लिया गया। पशुओं के लिए दाना मिश्रण भी लागत को कम करने तथा गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए फसल उत्पादों से फार्म पर ही बनाया गया। सहायक घटकों से कुल आमदनी 461766 रुपये अर्जित हुई।

धान–गेहूँ फसल प्रणाली को अपनाने से फसल कटाई के समय वर्ष में केवल दो बार ही आमदनी प्राप्त होती है जबकि बहुउद्देशीय कृषि मॉडल को अपनाने से सहायक घटकों से प्रतिदिन आमदनी प्राप्त होती है जोकि किसान की रोजमर्रा की जरुरतों को पुरा करने एवं रोजगार के अवसर प्रदान करने में सहायक होती है।

संसाधनों का पुनःचक्रण/समेकित प्रबंधन

बहुउद्देशीय कृषि मॉडल में उपलब्ध विभिन्न संसाधनों के पुनःचक्रण द्वारा इनकी उपयोग दक्षता को बढ़ाया जा सकता है। पशु, मछलियाँ, मुर्गियां एवं बतखें अपना भोजन चारा और खाद्यान्न फसलों से प्राप्त करते हैं। पशुओं से प्राप्त गोबर का अधिकतर भाग कम्पोस्ट बनाने में इस्तेमाल किया जाता है और उस खाद का उपयोग तालाब के ऊपर बनी मेड़ों पर उगाए गये फल वृक्षों और सब्जी उत्पादन में किया जाता है। तालाब की मेड़ों पर किसी भी रासायनिक खाद का प्रयोग नहीं किया जाता जिससे जैविक उत्पाद प्राप्त किया जा सके। ऐसा करने से मृदा में जैविक कार्बन का प्रतिशत बढता है।

बहुउद्देशीय कृषि प्रणाली के तहत धान–मक्का, गेहूँ, आलू और बरसीम फसलें

तालिका 1: बहुउद्देशीय कृषि मॉडल से उत्पन्न आय (वर्ष 2014)

अवयव	क्षेत्र (हैक्टर)	सकल आय (रुपये)	कुल लागत (रुपये)	शुद्ध आय (रुपये)	लाभःलागत अनुपात
कृषि अवयव					
धान – गेहूँ – मूंग	0.4	95900	22231	73669	4.31
धान – जई	0.2	61900	21035	40865	2.94
मक्का – गेहूँ – मूंग	0.4	65000	30879	34121	2.10
बागवानी	0.2	17385	12500	4885	1.39
सब्जियाँ	0.2	57075	32629	24446	1.75
चारा	0.4	36550	27251	9299	1.34
योग 1		333810	146526	187284	2.28
सहायक अवयव	0.2				
दूध – खाद– बायो गैस		288768	183353	105415	1.57
मछली उत्पादन		103500	12873	90627	8.04
फल सब्जियाँ (तालाब क्षेत्र)		25620	7528 18092	3.40	
मुर्गी पालन		43878	39167	4711	1.12
योग 2		461766	242921	218845	1.90
कुल योग (1+2)	2	795576	389447	406129	2.04

गोबर से उत्पन्न बायो गैस 4–5 लोगों के एक औसत परिवार का खाना बनाने के लिए पर्याप्त होती है। पशुओं का मूत्र एवं उनके शेड़ की धोवन को मछलियों के भोजन हेतु तालाब में डाला जाता है जिससे तालाब में उपस्थित पादप प्लावकों (फाइटोप्लेंकटोन्स) एवं जीव प्लावकों (जूप्लेंकटोन्स) की संख्या में अच्छी बढ़ोत्तरी पाई गई जो मछलियों के लिए खाने का अच्छा स्रोत है। केले के पत्ते, अधिक पक्के फलों और पकी हुयी सब्जियों को भी मछलियों के भोजन के रूप इस्तेमाल किया जाता है। तालाब का पादप पोषक तत्व युक्त पानी गर्मी के मौसम में चारा फसलों की सिंचाई में इस्तेमाल किया जाता है। तालाब की मिट्टी को भी खेत में प्रयोग करने से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा में सुधार होता है।

निष्कर्ष

वर्तमान प्रतिस्पर्धी परिदृष्य में सीमित एवं महंगे संसाधनों का कुशल उपयोग कर, फसल उत्पादन के साथ अन्य कृषि उद्यमों का समावेश करना आज की व्यवहारिक प्रासंगिकता है। किसान अपने खेत पर उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग करते हुये बहुउद्देशीय कृषि के अन्तर्गत मुख्य फसलों के साथ–साथ कृषि आधारित अन्य घटकों जैसे पशु पालन, मछली पालन, कुक्कुट एवं बत्तख पालन, मधुमक्खी पालन एवं मशरूम उत्पादन इत्यादि को अपनाकर खेती में जोखिम को कम कर सकता है। लघु किसानों के लिए बहुउद्देशीय कृषि मॉडल एक लाभदायक विकल्प है क्योंकि यह न केवल नियमित आमदनी एवं रोजगार का जरिया है बल्कि यह किसान के परिवार को खाद्य और पोषण सुरक्षा के साथ–साथ आजीविका सुरक्षा में भी सहायक है। फसल के अवशेष एवं फसल उत्पादन प्रणाली में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध जैव भार का उचित प्रबंधन करके प्रस्तावित समुचित लाभ प्राप्त किए जा सकते है। बहुउद्देशीय कृषि मॉडल में उपलब्ध घटकों से उत्पन्न अवशिष्ट एवं अपशिष्ट पदार्थों का उचित समावेश होने के कारण हमें पर्यावरणीय लाभ भी मिलता है। इस कृषि प्रणाली में विभिन्न घटकों का पुनःचक्रण करने से उत्पादन लागत में कमी एवं शुद्ध लाभ और रोजगार के अवसर भी बढ़ाये जा सकते हैं। एकीकृत दृष्टिकोण के साथ ऊर्जा, उर्वरक एवं सिंचाई जल का प्रबंध करने से इनकी उपयोग क्षमता में सुधार होता है जिसके परिणामस्वरुप कृषि की शुद्ध आय में बढ़ोत्तरी होती है।

समाप्त

सफल होने के लिए पहले खुद पर विश्वास करना होगा कि हम कर सकतें हैं और सफल होंगे।

प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं कृषि में टिकाऊ उपयोगः एक अवलोकन

प्रवेन्द्र श्योराण, रंजय कुमार सिंह, अश्वनी कुमार एवं रणधीर सिंह

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

भारतवर्ष में विश्व का लगभग 2.4 प्रतिशत भू–क्षेत्र तथा 4.2 प्रतिशत शुद्ध पानी उपलब्ध है, जिस पर 18 प्रतिशत मानव आबादी तथा 15 प्रतिशत पशुधन निर्भर करता है। कपड़े और मकान की तुलना में भोजन मनुष्य जाति की पहली आवश्यकता है। इन परिस्थितियों में बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन तथा आवश्यकता के बीच असंतुलन के कारण खाद्य सुरक्षा को खतरा हो रहा है जिसका अनुपात समय के साथ बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारतीय जनसंख्या लगभग प्रतिवर्ष 1.76 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। जो वर्ष 2030 में लगभग 153 करोड़ हो जायेगी। इसके विपरीत हमारा खाद्यान्न उत्पादन विगत 3–4 वर्षों से लगभग 260 मिलियन टन के करीब है। इसका मतलब यह है कि वर्ष 2030 तक आवश्यकतानुसार हमारे खाद्यान्न भण्डार को लगभग 345 मिलियन टन तक करने के लिये हमें लगभग 5.5 मिलियन टन प्रतिवर्ष बढ़ाने की आवश्यकता है। इसके अलावा फल, सब्जियों, मछली उत्पादन, मुर्गी उत्पादन को भी लगभग दोगुना करने की जरुरत है। बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये हम प्राकृतिक संसाधनों विशेषकर भूमि तथा पानी का अत्यधिक दोहन कर रहे हैं जिसके कारण अनेक चुनौतियाँ जैसे फसलों की पैदावार में स्थिरता, गिरता भूजल स्तर, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, नये–नये कीड़े–मकौड़े एवं बीमारियों के प्रकोप का सामना करना पड़ रहा है।

आने वाले समय में पानी एक आर्थिक कारक होगा, जिसके लिये औद्योगिक एवं घरेलू जगत ज्यादा मूल्य देने को तैयार होंगे, इसलिये वो पहली प्राथमिकता में होंगे (तालिका 1)। इसके विपरीत कृषि में पानी के उपयोग की मांग बढ़ने के बावजूद भी इस क्षेत्र में 10–12 प्रतिशत खपत की कमी आयेगी।

तालिका 1: वैश्विक स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में पानी का उपयोग

उपयोग (प्रतिशत)	विश्व	यूरोप	अफ्रीका	भारत
कृषि	69	33	88	83
औद्योगिक	23	54	05	12
घरेलू	08	13	07	05

तालिका 2: भविष्य में उपयोग होने वाले पानी की स्थिति

वर्ष	बिलियन लीटर प्रतिदिन				प्रति व्यक्ति (लीटर/दिन)
	कृषि	औद्योगिक	घरेलु	कुल	
भारत					
2000	1658	115	93	1866	88.9
2050	1745	441	227	2413	167.0
चीन					
2000	1024	392	105	1521	82.7
2050	1151	822	219	2192	155.4
संयुक्त राज्य अमेरिका					
2000	542	605	166	1313	582.7
2050	315	665	187	1167	484.6

राष्ट्रीय स्तर पर हमारा कृषि उत्पादन विभिन्न चुनौतियों एवं समस्याओं से जूझ रहा है क्योंकि उपयोग में आने वाले प्राकृतिक संसाधनों (मिट्टी, पानी, जंगल, पशु इत्यादि) का समय के साथ मांग एवं आपूर्ति के चक्र में अत्यधिक क्षरण हो रहा है। साथ ही साथ समस्या और बढ़ जाती है जब खाद्यान्न की आपूर्ति और मांग, पशुओं के लिये चारा, दूसरे मानवीय उपयोग की वस्तुओं की मांग के साथ–साथ जलवायु परिवर्तन, नई–नई बीमारियाँ तथा बदलता हुआ सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेश प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में चक्रवृद्धि जोखिम को बढ़ावा दे रहे है।

अभी भी चीन और अमेरिका की तुलना में भारत की प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 88.9 लीटर पानी की खपत है जो 2050 तक बढ़कर 167.0 लीटर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति होगी जो अमेरिका तथा चीन के आँकड़े को पार कर जाएगी (तालिका 2)। पानी के उपयोग की इस अप्रत्याशित वृद्धि की वजह से प्राकृतिक संपदा में न केवल भूजल अपितु पूरे पारिस्थितिकी तंत्र को खतरा पैदा होगा।

वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पानी, जंगल तथा पशुओं के समगतिशील संरक्षण एवं प्रबंधन की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। इस परिवेश में भारतीय कृषि की यह आवश्यकता बन जाती है कि वर्तमान कृषि पद्धतियों एवं प्रणालियों को इस तरीके से समगतिशील बनाया जाये, जिससे प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षण प्राप्त हो और स्थानागत तकनीकियों का उपयोग करते हुए सामाजिक–आर्थिक वृद्धि को गतिमान बनाने के साथ–साथ पारिस्थितिकी तंत्र को टिकाऊपन प्राप्त हो।

प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण

भारतीय कृषि में हरित क्रान्ति काल से ही उन्नतशील बीज, खाद, पानी तथा दूसरे रासायनिक तत्वों का ज्यादा उपयोग कर उत्पादन में बढ़ोत्तरी को प्राथमिकता दी गई। लेकिन लगभग 6 दशक के बाद यह अनुभव किया गया कि कृषि विकास एवं फसलोत्पादन के साथ–साथ मृदा का स्वास्थ्य खराब हुआ है, पानी की गुणवत्ता में कमी आई है। मिट्टी, पानी तथा हवा का प्रदूषण बढ़ा है। इन सबके अलावा बहुत सी बहुमूल्य फसलों, पशुओं तथा दूसरे जीवों की विविधता में अपूरणीय क्षरण हुआ है। इन समस्याओं के पीछे अगर देखा जाये तो ज्ञात होगा कि समग्र एवं समगतिशील विकास की रूपरेखा को हम कहीं न कहीं भूले हुए थे। हालांकि संतोषप्रद तथ्य यह है कि फसलों की सार्थक उत्पादकता बढ़ाने तथा मिट्टी की उपजाऊ क्षमता एवं स्वास्थ्य को बरकरार रखने के लिये अब हमने उपयुक्त संरक्षित खेती की रणनीति पर अनुसंधान कार्य करना शुरू कर दिया है। इस संदर्भ में आज के कृषि अनुसंधान को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षण की आवश्यकता है।

- लघु एवं मध्यम किसानों की जोत एवं अनुकूलन क्षमता के अनुसार पर्यावरणीय अनुकूल तकनीक एवं रणनीति को विकसित करना।
- छोटे एवं मध्यम किसानों की सामाजिक–आर्थिक एवं पारिस्थितकी दशा के अनुसार "समग्र खेती प्रणाली" मॉडल का विकास करना जिससे प्राकृतिक संसाधनों की समगतिशीलता को बढ़ावा मिले।
- उन कृषकों तथा समुदायों को अनुसंधान में भागीदार बनाना जिन्होंने अपने अनौपचारिक ज्ञान तथा संस्थाओं से कृषि एवं पारिस्थितिकी तंत्र को समगतिशीलता प्रदान की है।

वर्तमान परिदृश्य में प्रतिवर्ष चावल तथा गेहूँ उगाये जाने वाले क्षेत्रों में भूजल स्तर लगभग एक मीटर प्रतिवर्ष की दर से नीचे जा रहा है जिससे खेती में आर्थिक एवं पारिस्थितिकी जोखिम में बढ़ोत्तरी हो रही है। पिछले एक दशक में बहुत से क्षेत्रों में जिस दर से पानी का जमीन में पुनःभरण होना चाहिये था और जिस दर से भूजल का दोहन होना चाहिये, के अनुपात में बढ़ोत्तरी हुई है और ये आँकड़ा 15 प्रतिशत तक बढ़ गया है। यह समस्या इस बात को दर्शाती है कि पानी एक बहुमूल्य प्राकृतिक सम्पदा है जिसको संरक्षित करने में सबकी सहभागिता जरूरी है। अतः अनुसंधान संस्थानों, कृषि विभागों का निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षण जरूरी है।

1. एक अनुसंधान के अनुसार यह पाया गया कि हम 24 मिलियन हैक्टर मीटर वर्षा का जल विभिन्न तरीकों से संचय कर सकते हैं जोकि 6.65 मिलियन टन अतिरिक्त खाद्यान्न को पैदा करने में सहायक हो सकता है इसलिये जल संचय से संबंधित उपयोगी तकनीकियों के विकास की जरूरत है। इसमें भी औपचारिक ज्ञान के साथ–साथ अनौपचारिक ज्ञान भी एक महती भूमिका अदा कर सकता है।
2. भूजल भरण को और गति देने के लिये उपयुक्त एवं टिकाऊ तकनीकियों का सामाजिक एवं पारिस्थितिकीय तंत्र के अनुसार विकास करना।

मोनपा समुदाय द्वारा मक्के की फसल में फाफड़ा की रिले फसल एवं मक्का के अवशेष द्वारा पलवार (मल्चिंग)

3. खेत का जल खेत में ही संरक्षित करने की तकनीकियों का विकास करना।

ऐसी किसी फसल प्रणाली, प्रजाति एवं पद्धतियों का विकास करना जिससे कम से कम पानी में ज्यादा उत्पादन हो सके तथा सरकारी नीतियों का समर्थन प्राप्त हो।

मोनपा समुदाय द्वारा मक्के की फसल में फाफड़ा की रिले फसल एवं मक्का के अवशेश द्वारा पलवार (मल्चिंग)

शोध यह बताते हैं कि कृषकों ने विभिन्न पारिस्थितिकीय तंत्र के हिसाब से अनौपचारिक ज्ञान आधारित फसल प्रणाली विकसित की है जिससे पानी, मृदा उर्वरता एवं पर्यावरण की समगतिशीलता ज्यादा बरकार रहती है। ऐसी पद्धतियाँ तथा

सिवानामाल (जींद) में वर्ष 2012 में जुलाई महिने में वर्षा न होने से मिट्टी तथा पानी की लवणता में वृद्धि हुई जिससे फसल सुख गई।

प्रणालियाँ पिछड़े तथा पहाड़ी क्षेत्रों में अभी भी उपयोग में लायी जाती है। ऐसा ज्ञान सांझा ज्ञान को विकसित करने में महत्ति भूमिका अदा कर सकता है।

जलवायु परिवर्तन

अंतर्शासकीय जलवायु परिवर्तन पैनल (आई.पी.सी.सी.) की भविष्यवाणी के अनुसार भविष्य में जलवायु परिवर्तन से भारत में कृषि तथा शुद्ध जल आपूर्ति का संकट आ सकता है। तापमान में वृद्धि और समुद्रतटीय पारिस्थितिकी में बदलाव भारत के जल–चक्र में अचानक आया परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। इसका अंतिम परिणाम पानी की आपूर्ति तथा कृषि उत्पादन पर दिखाई देगा। उदाहरण के तौर पर 21वीं सदी के अंत तक भारत में वर्षा की मात्रा तथा तापमान का वार्षिक औसत बढ़ सकता है। इससे भूमि में गर्मी का प्रकोप बढ़ेगा जिसका असर ज्यादातर उत्तर भारत में होगा। सर्दी के मौसम तथा मानसून के बाद गर्मियों का प्रकोप ज्यादा हो सकता है। ऐसे जलवायु परिवर्तन के कारण फसलों पर विपरीत प्रभाव होगा। विगत 5 वर्षों में कृषकों के साथ किये गये अनुसंधान कार्य बताते हैं कि जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि को जोखिम बढ़ा है तथा प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल तथा मृदा भी प्रभावित हुई है। आई. पी.सी.सी. ने हालांकि सूचित किया है कि 21वीं सदी के अंत तक भारत में तापमान में बढ़ोत्तरी होने की संभावना के कारण औसतन 10–40 प्रतिशत फसल की पैदावार में कमी आ सकती है। फसल बुवाई की तिथि तथा बीज की किस्म में थोड़ा परिवर्तन करने से जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कुछ कम करने के साथ–साथ मृदा तथा पानी को संरक्षित कर सकते हैं परंतु ऐसी पद्धतियों पर विस्तार से अनुसंधान कार्य, मंथन तथा प्रसार एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

फसल अवशेषों तथा काबर्निक संसाधनों का कम पुनःचक्रण

कृषि उद्योग तथा घरेलू जैव अपशिष्ट के पुनःउपयोग की प्रक्रिया और फायदे के बारे में कम ज्ञान होने से उपयोग नहीं हो पा रहा है। कृषि में घरेलू और उद्योग से निकलने वाले जैव अपशिष्ट का पुनः उपयोग करने की क्षमता है तथा इससे शहर के आस–पास लघु कृषि करने के नये आयाम ढूंढे जा सकते हैं। प्रदूषण कम करने वाली तथा पुनःउपयोग की नई प्रक्रिया का विकास हुआ है जिसको फसल, पुनःचक्रण, जल संभरण प्रणाली तथा पानी

सिंचाई का घटक बनाकर उपयोग में लाया जा सकता है। फसल अवशेषों का पुनःउपयोग करके हम मिट्टी की उर्वरता एवं जैव विविधता को बढ़ा सकते हैं।

घटती हुई जैव विविधता

आधुनिक बीज तथा फसल प्रजातियों के विकास ने कृषि विकास में बहुमूल्य योगदान किया है साथ ही साथ जैविक विविधता के क्षरण में भी सहयोगी रही है। परिणामस्वरूप बहुत सी फसलों, पशुओं तथा दूसरे जीव जंतुओं का संरक्षण नहीं किया जा सका। उदाहरण के लिए सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली के कारण पारंपरिक फसलों जैसे दलहन, तिलहन, बाजरा तथा मसाला फसलें व उनकी प्रजातियाँ विलुप्त हो गई। इस इलाके के खेतों में पाये जाने वाले जीव जंतु जैसे केंचुआ, मकड़ी, मेंढक इत्यादि की संख्या में कमी हुई है। जैव विविधता में कमी केवल रसायनों के उपयोग ही नहीं अपितु फसल चक्र तथा मिश्रित फसलों के उपयोग में नहीं रहने के कारण ज्यादा हुई है। ऐसी फसल प्रणालियों तथा खेती जो वर्तमान में चल रही है उसे नीतिगत तरीके तथा पारितोषिक के माध्यम से बढ़ावा दिया जाना चाहिए। कृषि रसायनों का फसल अवशेशों के पुनःउपयोग के अभाव के कारण मृदा में सूक्ष्मजीवों एवं वनस्पति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

समग्र कृषि प्रणाली मॉडल

देश में करीब 84 प्रतिशत लघु व मध्यम किसानों का जीविकोपार्जन कृषि पर आधारित है, जोकि जलवायु तथा दूसरे सामाजिक–आर्थिक कारकों से प्रभावित होता है। वर्तमान परिवेश में ऐसे कृषक समग्र कृषि प्रणाली मॉडल जो कृषकों के सामाजिक–आर्थिक एवं पारिस्थितिकी तंत्र के हिसाब से हो, को अपनाकर अपनी आय एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण बढ़ा सकते हैं। ऐसी दशा में उपयुक्त कृषि मॉडल के विकास तथा उनके स्थानागत परीक्षण के बाद कृषि में अंगीकरण के लिये कृषि संस्थानों को आगे आना होगा। मैदानी इलाकों में हालांकि ऐसी प्रणाली तथा मॉडल पर ज्यादा कार्य हुआ है परंतु समुद्रतटीय इलाकों तथा पहाड़ी क्षेत्रों में अभी भी सहभागिता आधारित अनुसंधान कार्य करने की बहुत जरुरत है। ऐसे सामाजिक–पारिस्थितिकीय तंत्र न केवल विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के स्रोत हो सकते हैं अपितु देश की खाद्यान्न व्यवस्था एवं वृद्धि दर को भी नया आयाम दे सकते हैं। ऐसे इलाकों में समग्र कृषि प्रणाली के कई अनमोल घटक है जिनकी जड़ें तथा व्यवस्था "रिजिलएंस" का पाठ पढ़ा सकती है। इन परंपरागत मॉडलों से जल, जीव तथा कृषि, वन आधारित और जलीय जैव विविधता को संरक्षण प्रदान करने में अपूर्व सहयोग मिलता रहा है। इन मॉडलों का अनुकूलन करने वाले समुदायों का आपस में आदान–प्रदान के साथ मैदानी इलाकों के कृषकों को भी स्थानागत ज्ञान सीखने के लिये प्रेरित करना होगा।

निष्कर्ष

जिस दर से तकनीक का विकास होता है इनका कृषकों द्वारा अंगीकरण नहीं होता है क्योंकि कृषि से संबंधित समस्याओं की समझ जमीनी स्तर से नहीं होती है, साथ ही कृषि प्रसार सेवाएं अधिकांशतः औपचारिक प्रयोगशालाओं से विकसित तकनीकियों को किसानों तक पहुँचाते हैं परंतु किसानों की समस्याएं तथा उनके अनुभव एवं ज्ञान कृषि विशेषज्ञों व नीति निर्धारकों तक नहीं पहुँचा पाते हैं। मृदा तथा जल संरक्षण की बहुत सी तकनीकियाँ विकसित की गई हैं लेकिन कृषकों, कृषि संबंधी उद्यमों, वित्तिय संस्थानों तथा कृषि संस्थानों में समुचित सामंजस्य नहीं होने से कृषकों द्वारा अपेक्षित अंगीकरण नहीं हो पाता है।

जल, मृदा एवं जैव विविधता को समगतिशीलता एवं संरक्षण प्रदान करने के लिए कृषकों की समुचित भागीदारी, औपचारिक एवं अनौपचारिक ज्ञान के बीच गठजोड़ हो और संस्थाएं स्थान विशेष तथा सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था के अनुसार तकनीक विकसित करें तथा कृषि प्रसार सेवायें किसानों तक पहुँचाने की कारगर रणनीति विकसित करें। सबसे ज्यादा जरूरी है कि नीतिनिर्धारक तथा सरकार ऐसी रणनीतियों को संरक्षण तथा आवश्यक सहायता प्रदान करे तभी प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं समगतिशील विकास साथ–साथ चल सकते हैं।

समाप्त

हरियाणा राज्य की कृषि में सल्फर की उपयोगिता एवं प्रबंधन

[1]राजेन्द्र सिंह गढवाल [2]किरन खोखर एवं [2]विजय अरोड़ा

[1]कृषि महाविद्यालय, कौल, कैथल (हरियाणा)
[2]क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, उचानी, करनाल (हरियाणा)

हरियाणा राज्य की भूमि में उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा जस्ता आदि पादप पोषक तत्वों की कमी के साथ–साथ लगातार सघन खेती से भूमि में पोटाश एवं सल्फर तत्वों की भी कमी होने लगी है। इसके अलावा सल्फर रहित उर्वरकों के प्रयोग से भी भूमि में सल्फर की कमी हो रही है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश के बाद सल्फर चौथा आवश्यक पोषक तत्व है। इन स्थितियों में भूमि में सल्फर डालने से फसल उत्पादन में बढोत्तरी के साथ–साथ अधिक लाभ भी कमाया जा सकता है।

मृदा में सल्फर जिप्सम, पाइराईट एवं शेल्स आदि खनिजों के रूप में पाई जाती है। कार्बनिक अवशेषों में पाये जाने वाले प्रोटीन के कुछ एमीनो अम्ल (सिस्टीन, सिस्टाइन) में भी प्रयाप्त मात्रा में सल्फर पाया जाता है। इन यौगिकों व खनिजों के ऑक्सीकरण व अपघटन द्वारा सल्फेट के रूप में सल्फर मृदा एवं पौधों तक पहुँचता है। सतही मृदा में सल्फर की मात्रा लगभग 0.06 प्रतिशत है और भारत की मृदाओं में सल्फर की मात्रा 0.01–0.1 प्रतिशत तक पाई गई है।

पौधों में सल्फर का महत्त्व

- सल्फर सिस्टीन, सिस्टाइन व मिथियोनीन अमीनो अम्लों का अवयय है, अतः प्रोटीन संश्लेषण के लिए अति आवश्यक पोषक तत्व है।
- डाइ–सल्फाइड बंध प्रोटोप्लाज्म की संरचना के लिए आवश्यक होता है तथा सल्फहाइड्रिल बंध पेड़–पौधों में ठंड के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न करने में सहायक होता है।
- सल्फर प्रोटियोलिटिक एन्जाइम जैसे प्रोपेनोज़ की क्रिया को प्रोत्साहित करता है।
- सल्फर क्लोरोफिल (पर्णहरित) के निर्माण में भी सहायक होता है।
- सल्फर फलीदार पौधों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण में भी सहायक होता है।
- तेल वाली फसलों में वसा वृद्धि हेतु सल्फर की आवश्यकता होती है।
- क्रूसीफेरी प्रजाति के पौधों में विशेष गंध का निर्माण सल्फर के कारण होता है। प्याज़ व लहसुन से आनी वाली तीखी गंध भी सल्फर के फलस्वरूप ही होती है।

पौधों में सल्फर की कमी के लक्षण

पौधों में सल्फर की कमी के लक्षण, नाइट्रोजन की कमी से होने वाले लक्षणों के समान दिखते है। परन्तु सल्फर की कमी के लक्षण पहले पौधे की नई पत्तियों पर दिखाई देते है जबकि नाइट्रोजन की कमी के लक्षण पुरानी पत्तियों में पहले दिखाई देते हैं। अतः सल्फर की कमी होने पर पौधे की नई पतियाँ पहले पीली पड़ती है। अगर सल्फर की कमी को पूरा न किया जाए तो पूरा पौधा धीरे–धीरे पीला पड़ने लगता है। सल्फर की कमी के फलस्वरूप नाइट्रोजन व अन्य तत्वों का उपयोग घट जाता है और इससे दाल वाली फसलों की जड़ों में गुलाबी ग्रथिंया नहीं बन पाती और नाइट्रोजन स्थिरीकरण पर विपरित प्रभाव पड़ता है। सल्फर की कमी नाइट्रोजन देने पर भी बनी रहती है तथा इसकी कमी में पौधे छोटे रहते हैं व तना पतला रहता है। दाने वाली फसलें देर से पकती है।

सल्फर उर्वरक

प्राचीन काल से ही सल्फर को पेड़–पौधों व जीवों की वृद्धि के लिए एक आवश्यक पोषक तत्व के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक जीवित कोशिका की अनेक अभिक्रियाओं में सल्फर की आवश्यकता होती है। पौधों की वृद्धि के साथ–साथ उनके उत्पादों की गुणवत्ता भी सल्फर से प्रभावित होती है। प्रोटीन निर्माण में योगदान के दृष्टिकोण से सल्फर का नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस के बाद तीसरा स्थान आता है। अधिकांश फसलों की सल्फर की आवश्यकता लगभग फॉस्फोरस के समान है। तिलहन तथा दलहनी फसलों में सल्फर का विशेष महत्व है। अतः हमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश के साथ सल्फर युक्त उर्वरकों को भी आवश्यकतानुसार उर्वरकों में शामिल करना चाहिए।

तालिका : सल्फर युक्त प्रमुख उर्वरकों में सल्फर की मात्रा (प्रतिशत)

उर्वरक	सल्फर प्रतिशत	उर्वरक	सल्फर प्रतिशत
अमोनियम सल्फेट	24.0	मैग्नीशियम सल्फेट	23.0
अमोनियम सल्फेट नाईट्रेट	15.0	कोपर सल्फेट	13.8
अमोनियम फास्फेट सल्फेट	15.0	जिंक सल्फेट	15.0
सुपरफास्फेट (सिंगल)	12.0	फैरस सल्फेट	19.0
पोटेशियम सल्फेट	18.0	मैंगनीज सल्फेट	17.0

विभिन्न परीक्षणों में पाया गया कि हरियाणा में जहाँ भूमि में सल्फर की कमी है वहाँ सल्फर के प्रयोग से सरसों, मूंगफली, अरहर, चना तथा गन्ने की उपज में सार्थक वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। मृदा में सल्फर के पर्याप्त प्राकृतिक भण्डार होते हुए भी भारत की अनेक मृदाओं में इसकी कमी पाई गई है। मृदा में सल्फर की कमी के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:

- सल्फर रहित उर्वरकों का अधिक प्रयोग।
- पौधों द्वारा सल्फर के अवशोषण तथा उर्वरकों द्वारा उसकी आपूर्ति में अन्तर।
- अधिक उपज देने वाली फसलों द्वारा अधिक सल्फर का अवशोषण।
- सल्फर रहित कीटनाशक व जीवाणु नाशकों का प्रयोग।

सल्फर युक्त उर्वरकों के अलावा कुछ रसायन ऐसे भी हैं जो मुख्य रूप से सल्फर के ही स्रोत के रूप में प्रयोग किए जाते है जैसे: जिप्सम, फॉस्फोजिप्सम, पाइराईट, तत्वीय सल्फर।

क. जिप्सम

जिप्सम में लगभग 18.6 प्रतिशत सल्फर तथा 23.2 प्रतिशत कैल्शियम होता है। भारत में लगभग 10000 लाख टन जिप्सम के भण्डार हैं, जिनका 90 प्रतिशत भाग केवल राजस्थान में है। जिप्सम में सल्फर, सल्फेट के रूप में होने के कारण बिना परिवर्तित किए सीधे–सीधे पौंधों द्वारा ग्रहण किया जा सकता हैं। क्षारीय मृदाओं में जिप्सम की मृदा सुधार एवं उर्वरक उपयोग क्षमता और भी अधिक होती है। कैल्शियम कार्बोनेट की अधिकता वाली मृदाओं में इसका प्रभाव तुलनात्मक रूप से कम होता है। मूंगफली, सरसों, अलसी, दालें, अनाज तथा फलदार वृक्षों पर इसका प्रभाव अपेक्षाकृत अच्छा देखा गया है। सामान्य फसलों में इसकी मात्रा 100 किलोग्राम प्रति हैक्टर से 250 किलोग्राम प्रति हैक्टर तक अनुशंसित की जाती है। जिप्सम की सल्फर स्रोत के रूप में उर्वरक उपयोग क्षमता में वृद्वि करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- जिप्सम के दानों का आकार 0.6 मि.मी. से अधिक न हो।
- इसको मृदा सतह में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिए।
- इसकी समस्त मात्रा बुवाई के पूर्व या बुवाई के समय खेत में डाल देनी चाहिए।
- कार्बनिक खादों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट आदि के साथ जिप्सम प्रयोग करने से इसकी मृदा सुधार एवं उर्वरक क्षमता में वृद्वि होती है।
- जिप्सम को कैल्शियम कार्बोनेट युक्त मृदाओं में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

ख. फॉस्फोजिप्सम

यद्यपि कृषि में सल्फर उर्वरक के रूप में फॉस्फोजिप्सम प्रचलित नहीं है, तथापि अनेक अनुसंधानों के आधार पर वैज्ञानिकों ने पाया है कि गेहूँ, तिलहन तथा दालों में फॉस्फोजिप्सम एक प्रभावकारी सल्फर स्रोत सिद्ध हो सकता है। जिप्सम की अपेक्षा फॉस्फोजिप्सम अधिक क्रियाशील है, क्योंकि इसका कणों का आकार छोटा होता है तथा इसमें घुलनशील फॉस्फोरस भी होता है जो पौंधो द्वारा शीघ्रता से अवशोषित किया जा सकता है।

ग. पाइराईट

पाइराईट गंधक के स्रोत के रूप में पौधों पर उतना ही प्रभावी पाया गया है जितना तत्वीय सल्फर तथा जिप्सम। पाइराईट में लगभग 22–24 प्रतिशत सल्फर तथा 20–22 प्रतिशत आयरन पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह अपेक्षाकृत बहुत सस्ता है।

क्षारीय मृदाओं में (पीएच मान 8.5 से अधिक) पायराईट अन्य सल्फर उर्वरकों की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होता है। पंजाब में मूँगफली तथा सरसों में इसका प्रभाव जिप्सम से बेहतर पाया गया है। गेहूँ, मक्का, धान, चना तथा चारे की फसलों के लिये सल्फर की कमी वाली मृदाओं में यह एक उत्तम सल्फर उर्वरक है। पाइराईट का अवशिष्ट प्रभाव जिप्सम से अधिक होता है। पाइराईट में लौहे की उपस्थिति इसके प्रभाव में गुणात्मक वृद्धि करती है। यद्यपि लौहे की सुलभ उपस्थिति के कारण अम्लीय मृदाओं में पाइराईट विषैला प्रभाव उत्पन्न करता है।

घ. तत्वीय सल्फर

तत्वीय सल्फर, सल्फर के उपलब्ध स्रोतों में सर्वाधिक परिष्कृत होता है। इसमें सल्फर की मात्रा 85–100 प्रतिशत तक होती है। भारत में इसकी अनुपलब्धता तथा उच्च मूल्य के कारण इसको उर्वरक के रूप में प्रयोग नहीं किया जाता है। तत्वीय सल्फर अधिकतम अन्य देशों से आयात किया जाता है। क्षारीय मृदाओं को सुधारने के लिए तत्वीय सल्फर का प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त बातों का ध्यान रखते हुए किसानों को यह सुझाव दिया जाता है कि किसान सबसे पहले अपनी मृदा की जाँच करवाएं। यदि उनकी मृदा में सल्फर की कमी है तो इस कमी को ऊपर बताये अनुसार उर्वरकों के उपयोग से पूरा किया जा सकता है। इससे न केवल कृषि उत्पादन बढेगा बल्कि अधिक लाभ भी मिलेगा और फसलों की गुणवत्ता में सुधार आएगा और साथ–साथ भूमि की उपजाऊ शक्ति भी बनी रहेगी।

समाप्त

आप आज किसी वृक्ष की छाया में बैठे हैं
क्योंकि किसी ने बहुत समय पहले एक पौधा लगाया था।

क्षारीय एवं सुधरी क्षारीय मृदाओं में पादप वृद्धि संवर्धक जीवाणुओं का महत्त्व

रितु देवी,[1] मधु चौधरी,[1] मार्टिना रानी,[1] अरविंद कुमार,[1] असीम दत्ता,[1] पी.सी. शर्मा[1] एवं एच.एस. जाट[2]

[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[2]अन्तर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, मैक्सिको (इण्ड़िया ऑफिस)

मिट्टी में जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ और शैवाल आदि सूक्ष्मजीव बहुतायत में पाये जाते हैं। इन सूक्ष्मजीवों में जीवाणु सबसे अधिक (95 प्रतिशत) उपस्थित होते हैं। एक ग्राम मिट्टी में अनुमानतः 40 मिलियन जीवाणु पाए जाते हैं। जीवाणुओं का प्रकार और संख्या अलग–अलग मिट्टी में अलग–अलग होती है। यह संख्या मिट्टी की स्थिति, तापमान, नमी, लवणों की मात्रा व प्रकार, अन्य रसायन और मिट्टी में उपस्थित पौधों की संख्या और प्रकार से प्रभावित होती है। जीवाणु मिट्टी में एक समान वितरित नहीं होते हैं। जीवाणुओं की संख्या पौधे में जड़ों के आस–पास वाले क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा सबसे ज्यादा होती है। क्योंकि पोषक तत्व जैसे शक्कर, अमीनों अम्ल, कार्बनिक अम्ल और दूसरे छोटे अणु पौधों की जड़ों से स्रावित होते हैं। वहाँ ये पोषक तत्व प्राप्त करते हैं और अधिक संख्या में पनपते हैं। मृदा एक अप्रत्याशित वातावरण है और एक पूर्वनियोजित योजना अनुसार परिणाम प्राप्त करना कभी–कभी बहुत मुश्किल हो जाता है। पौधे की जड़ों में पाए जाने वाले जीवाणुओं के समूह को राइजोबैक्टीरिया कहते हैं। जड़ों में रहने वाली सूक्ष्मजीवों की आबादी जडों की गतिविधियों से प्रभावित होती है। विभिन्न सूक्ष्मजीवों की संख्या राइजोस्फीयर के साथ जुड़ी हुई है, जो पौधों की वृद्धि पर एक प्रभाव डालने में सक्षम है। बेइजेरिनिक ने सबसे पहले पौधे की जड़ से राइजोबिया के जीवाणु को अलग किया था, जिसको बैसिलस रादिकीकला नाम दिया गया। 19वीं सदी में फ्रैंक ने इसी प्रजाति से संबंधित जीवाणुओं के समूह को *राइजोबियम* लेगुमिनोसिरम नाम की पहचान दी। शब्द "राइजोबिया" मूल रूप से जीनस राइजोबियम से संबंधित जीवाणु के लिए इस्तेमाल किया जाता है। अभी तक वर्णित सभी राइजोबियम प्रजातियां अल्फा की ग्यारह और बीटा प्रोटो बैक्टीरिया की तीन पीढ़ियों से संबंधित है।

जीवाणु तीन अलग तरीकों से पौधों को प्रभावित कर सकते हैं। मिट्टी और जीवाणु का संयोजन पौधे के लिए लाभदायक, हानिकारक और तटस्थ हो सकता है। उदाहरण के लिए मिट्टी में वे गुण होते हैं, जिससे पौधे को वृद्धि में सहायता मिलती है। मिट्टी में सीमित मात्रा में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस मौजूद होते है और बाहर के रासायनिक खाद द्वारा उपलब्धता बढ़ाकर पौधों के लिए इनकी उपलब्धता बढाई जाती है। पौधों के लिए लाभकारी सूक्ष्मजीवों को सामान्य भाषा में पादप वृद्धि संवर्धक जड़ीय जीवाणु (पीजीपीआर) कहते हैं। पीजीपीआर को दो प्रमुख वर्ग राइजोस्फीयरिक और एंडोफीटिक में विभाजित किया गया है। राइजोस्फीयरिक, जड़ की सतह या अक्सर जड़ पिंड (रुट नोड्यूल) के गठन, और मेजबान पौधे के एक साथ मिलने से बनता है। एंडोफीटिक **अपोपलैक्टिक** जगह में मेजबान पौधे में बढ़ने से बनता है। कृषि पारिस्थितिकी प्रणालियों में पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने में राइजोबैक्टीरिया (पीजीपीआर) पारिस्थितिकी प्रणालियों में स्थिरता, कृषि उत्पादकता और पर्यावरण की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है।

देशव्यापी कृषि क्षेत्र की मिट्टी में जीवाणु होते हैं और पीजीपीआर के रूप में उन्हें अच्छी तरह से अनुकूल बनाने के कई लक्षण है। पीजीपीआर पौधे के शुरूआत के समय पर पौधे की वृद्धि, बीज का उगना, पौधे की लंबाई, तने की बनावट, हरित लवण मात्रा और जड़ पिंड की संख्या को भी बढ़ाता है। पीजीपीआर का उपयोग रासायनिक उर्वरक, कीटनाशकों और पूरक आहार को पादप उपलब्ध रूप में बदलने के लिए सहायता प्रदान करता है। सूक्ष्मजीव कृषि क्षेत्र में वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए बहुत ही लाभप्रद है। वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सूक्ष्मजीवों द्वारा नाइट्रोजन को अमोनिया तथा नाइट्रेट आदि पौधे के इस्तेमाल के अनुकूल रूपों में बदला जाता है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु के दो समूह मुख्यतः राइजोबिया और फ्रेंकीया का बड़े पैमाने पर अध्ययन किया गया है। फ्रेंकिया के सहजीवी संबंध का अभी तक अच्छी तरह से ज्ञान अर्जित नहीं किया गया है परन्तु अध्ययन के अनुसार फ्रेंकिया की 280 से भी अधिक प्रजातियाँ, 8 अलग–अलग समूह के लकड़ी देने वाले पौधों के साथ जड़ पिंड बनाती है। फ्रेंकिया एलनस और

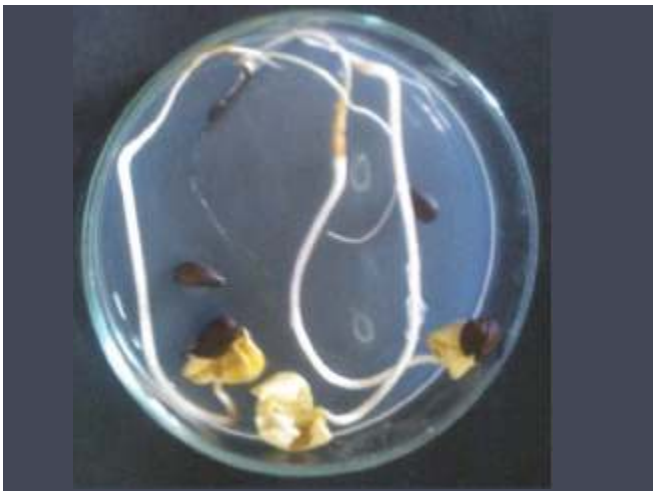

पीजीपीआर द्वारा अनुपचारित कपास के बीज

केसरिनो प्रजातियों को प्रभावशाली सहजीवन स्थापित करने के लिए जाना जाता है। पौधे के विकास को बढ़ाने वाले राइजोबैक्टीरिया जड़ सतह पर तथा आस–पास रहने वाले मिट्टी के जीवाणु हैं जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विभिन्न उत्पादन और स्राव के माध्यम से पौधों की वृद्धि और विकास को बढ़ावा देने में सम्मिलित रहे हैं। भिन्न–भिन्न सूक्ष्मजीवों की प्रजातियां जैसेः सुडोमोनास, एजोस्पिरिलम, एजौटोबैक्टर, कलैबसैल्ला, एंटेरोबैक्टर, अलकालिगेंस, आरथ्रोबैक्टर, ब्रुखेलडेरीय, बैसीलस और सीरेटिया राइजोस्फीयर के साथ जुडकर पौधों की वृद्धि के लिए लाभकारी काम करते हैं। राइजोबैक्टीरिया, पीजीपीआर स्वाभाविक रूप से आक्रामक तरीके से विकास को बढावा देने के लिए मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्मजीवों का उपयोग कर पौधे की वृद्धि को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

राइजोबैक्टीरिया में बैसीलस और सूडोमोनास दो महत्त्वपूर्ण सूक्ष्मजीव है। बैसीलस राइजोबैक्टीरिया में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। बैसीलस भी बढ़ती शर्तों के तहत उपज, विकास और पौष्टिकता को बढ़ावा देता है। ये रसबेरी पौधे में संयंत्र वृद्धि के अध्ययन में पाया गया है। टमाटर पर टीका और काली मिर्च पर काफी प्रयोग करने से पता चला है कि बैसीलस को ग्रीनहाउस में सामान्य प्रबंधन में फेरबदल के बिना एक उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। मंगोलिया में गेहूँ की किस्म ओरखोन की उपज के लिए बैसिलस 8 एन–4 फसल बढ़ाने के लिए जैविक खाद उत्पादन के लिए एक जैव टीके के रूप में सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जा चुका है। स्यूडोमोनास का सबसे प्रभावी उपभेद फ्लोरोसैंट स्यूडोमोनास एसपीपी पाया गया है। माइक्रोबियल उर्वरक के संयोजन में स्यूडोमोनास टीके की उपस्थिति चने की पैदावार और विकास के लक्षण बढाने में एक प्रभावी भूमिका निभाती है। स्यूडोमोनास के विशिष्ट उपभेदों फ्लोरोसैंट–पुटिडा समूह ने हाल ही में विकास को बढ़ावा देने और पैदावार बढ़ाने के लिए पौधों पर बीज टीके के रूप में इस्तेमाल किया गया है। स्यूडोमोनास आलू, चुंकदर और मूली के पौधों की जड़ों में 144 प्रतिशत पैदावार बढ़ाने वाले पीजीपीआर के रूप में जाने गये हैं। पीजीपीआर मेजबान पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं। इनसे पौधों को निम्न प्रकार के लाभ मिलते हैः :

क. जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण

नाइट्रोजन स्थिरीकरण, प्राकृतिक जीवन के सभी रूपों के लिए अति आवश्यक है। नाइट्रोजन पौधों, जानवरों और अन्य जीवन रूपों में डीएनए, आरएनए के लिए न्यूक्लीयोटाइड और प्रोटीन के लिए अमीनो अम्ल बनाने के लिए जरूरी है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण फसलों के लिए जरूरी नाइट्रोजन और उर्वरक के निर्माण के लिए भी आवश्यक है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु मुख्यतः मुक्त रूप से और सहजीवी रूप में रहने वाले जीवाणु जैसे सायनोबैक्टीरिया (नील–हरित शैवाल), एनाबीना नोस्टोक राइजोबियम आदि फलीदार पौधे और एजोस्पीरिलम प्रजातियां अनाज व घास प्रजाति की फसलों के साथ जुडे होते हैं।

कुछ जीवाणु नाइट्रोजन को अमोनिया में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया से बदलते हैं। दूसरे जीवाणु अमोनिया को नाइट्रेट में

तालिका 1: विभिन्न जीवाणुओं का मृदा में बायोमास

	प्रति मीटर	प्रति ग्राम	बायोमास
जीवाणु	$101^{3} - 101^{4}$	$10^{8} - 10^{9}$	300–3000
एक्टीनोमाइसिटीज		$10^{12} - 10^{13}$	$10^{7} - 10^{8}$300–3000
कवक	$10^{10} - 10^{11}$	$10^{5} - 10^{6}$	500–5000
शैवाल	$10^{9} - 10^{10}$	$10^{3} - 10^{6}$	10–150

परिवर्तित करते हैं और नाइट्रेट को नाइट्रोजन और दूसरी नाइट्रोजन गैसों में। जीवाणु और कवक कार्बनिक पदार्थ को नष्ट करते हैं, और दूसरे जीवों के पुनःउपयोग के लिए नाइट्रोजन निकालते हैं। खाद्य शृंखला में भारी धातु व अन्य विषाक्त पदार्थों के जमा होने पर मानव स्वास्थ्य पर भी विनाशकारी प्रभाव बना हुआ है। मिट्टी एक जटिल संरचना है और इसके मुख्य रूप से पांच प्रमुख घटक होते हैं : खनिज पदार्थ, जल, वायु, कार्बनिक पदार्थ, सूक्ष्मजीव। मिट्टी में इन घटकों की मात्रा सदा एक समान नहीं रहती बल्कि क्षेत्र व परिस्थिति विशेष के साथ बदलती रहती है। एक ग्राम कृषि मिट्टी में कई अरब कॉलोनी बनाने वाले जीवाणु हो सकते हैं जो विभिन्न प्रजातियों से संबंधित होते हैं। सूक्ष्मजीव मिट्टी के द्रव्यमान का कम से कम 0.5 प्रतिशत भाग बनाते हैं।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए 'निफ' जीन दोनों सहजीवी और मुक्त वातावरण में पाए जाते हैं। नाइट्रोजीनेज, 'निफ' जीन, संरचनात्मक जीन, एफई प्रोटीन, लौहा मोलिब्डेनम कोफैक्टर के जैव संश्लेशण, इलेक्ट्रान देने और एंजाइम बनाने के लिए आवश्यक जीन में शामिल की गई है।

ख.) जड़क्षेत्र (राइजोस्फीयर) में पोषक तत्वों की उपलब्धता

पौधों से उत्पन्न स्राव अतिरिक्त कार्बन उपलब्ध करवाते हैं जिससे बहुत से जीव इस कार्बन को उपयोग कर सकते हैं। कुछ स्राव में अतिरिक्त शर्करा, अमीनो अम्ल, और सुगंधित पदार्थ हैं जो कोशिकाओं से बाहर निकलते है और आस–पास की मिट्टी में फैल जाते है। इनके रिसाव की प्रकृति के कारण इन्हें कम आवणिक भार वाले यौगिकों में सम्मिलित किया गया है। कुछ स्राव चयापचय गतिविधि के सहउत्पाद हैं। स्रावित पदार्थ कम और ज्यादा आणविक भार वाले होते हैं और सक्रिय रूप से कोशिकाओं से बाहर निकलते हैं इन्हें म्यूसिलेज कहते हैं। म्यूसीलेज जड़ सतह पर एक स्लाइम आवरण होती है जो पौधे की जड़ों और आस–पास की मिट्टी को जोड़ता है।

ग. जड़ सतह क्षेत्र उत्प्रेरण

माइक्रोराइजल सहजीवन मेजबान पौधों के विकास को बढ़ाने के लिए जाना जाता है। माइक्रोराइजल सहजीवन मुख्यतः एक्टोमाइकोराइजा और आरबसकुलर माइकोराइजा दो प्रकार के होते हैं। एक्टोमाइकोराइजल कवक बहुत सारे लकड़ीदार पौधे (झाडियों से लेकर जंगल के पेड़) से संबंधित है। एक्टोमाइकोराइजल कवक के 5000–6000 प्रकार को बेसीडोमाइसीटीज और एसकोमाइसीटीज में वर्णित किया गया है। एक्टोमाइकोराइजल कवक जड़ों के आस–पास अलग–अलग मोटाई की परत बनाते है। ये परत जड़ों को अधिक अवशोषण के लिये अतिरिक्त सतह प्रदान करती है।

घ.) मेजबान पौधे के अन्य लाभकारी सहजीवन को बढ़ाना

पौध वृद्धि के लिए जो जीवाणु पौधों के साथ सहजीवी संबंध बनाने में सक्षम है और मुक्त वातावरण में रहकर भी पौधों को लाभ देते हैं वो पौध वृद्धि बढ़ाने वाले जीवाणुओं की श्रेणी में आते हैं जैसे (राइजोबिया और फ्रेंकीया)। राइजोबिया का शारीरिक, जैविक और आणविक दृष्टिकोण से बड़े पैमाने पर अध्ययन किया गया है। लवण तनाव के तहत पीजीपीआर अंकुरण दर, सूखे के लिए सहिष्णुता, उपज और पौध वृद्धि आदि पर सकारात्मक प्रभाव दिखाता है। लगभग 40 प्रतिशत कृषि योग्य क्षेत्र मिट्टी के क्षरण से प्रभावित है। मिट्टी का पीएच मान विभिन्न जैविक और रासायनिक गुणों के साथ जोड़ा जाता है। कम पीएच मान होने से मिट्टी अम्लीय होती है और अम्लीय मिट्टी में पौधे के विकास में प्रमुख बाधाएं हाइड्रोजन एल्यूमीनियम और मैंगनीज की विषाक्त मात्रा में उपस्थिति होती है और मैग्नीशियम, कैल्शियम और फॉस्फोरस की कमी होती है।

एक विशेष जीवाणु अलग–अलग पौधों को भिन्न रूप से प्रभावित करता है। वेसिक्युलर आरबस्कुलर माइकोराइजा (वाम) कवक पौधों की लवणता तनाव की स्थिति में जीवित रहने के लिए मदद करता है। फॉस्फोरस व नाइट्रोजन की उपलब्धता को बढ़ाता है। फॉस्फेट घुलनशीलता बढाने वाले सूक्ष्मजीव पौधे को फॉस्फोरस

उपलब्ध करवाते हैं, इसलिए यह सूक्ष्मजीव रासायनिक फॉस्फोरस उर्वरक के जैविक विकल्प है। तनाव की स्थिति में राइजोबैक्टीरिया और माइकोराइजल कवक सहित माइक्रोबियल टीके के उपयोग द्वारा पौध वृद्धि को बढ़ाया जा सकता है।

ड़) रोग नियंत्रण

पौधों में रोग नियंत्रण के लिए भी पीजीपीआर प्रयोग किये जाते हैं। पीजीपीआर मिट्टी और पौधे के राइजोस्फीयर के लिए अनुकुल होते हैं और पौधों में रोगाणुओं के जैविक नियंत्रण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। ये बैक्टीरिया, कवक और निमेटोड रोगों का बचाव कर सकते हैं। पीजीपीआर, संक्रामक रोगों से भी पौधों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं व कवकों को रोग प्रतिरोधकों के रुप में प्रयोग करने के लिए बीजाई से पहले पीजीपीआर का टीकाकरण बीज पर किया जाता है।

च.) फाइटोहारमोन का उत्पादन

पीजीपीआर उपयोग करने से विभिन्न फसलों की पैदावार में वृद्धि देखी गई है। पौधों में पीजीपीआर उपयोग से विभिन्न वृद्धि उत्तेजक जैसे इण्डोल–3–एसिटिक अम्ल, जिर्ब्बेलिक अम्ल, जिएटिन, इथाइलीन और एब्सिसिक अम्ल आदि फाइटोहारमोन उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए एसिड एसीटोबैक्टर, डायजोट्रोफिक्स और हरबस्पिरिलम सीरोपेडिएसी फाइटोहारमोन इण्डोल–3–एसिटिक अम्ल, (एजीस्पिरिलम) जिएटिन और इथाइलीन (एजोस्पिरिलम लाइपोफेरम) जिब्रेलिक अम्ल और (एजोस्पिरिलम बैसीलेन्स) एब्सिसिक अम्ल आदि फाइटोहारमोन उत्पन्न करते हैं।

छ.) साइडरोफोर उत्पादन

पीजीपीआर कुछ कोशिकीय चयापचयों को स्रावित करते हैं जिन्हें साइडरोफोर कहा जाता है। साइडरोफोर सामान्यतः माइक्रोबियल आयरन–चिलेटिंग कम वजन वाले यौगिकों के रूप में जाने जाते हैं। राइजोस्फीयर में साइडरोफोर पैदा करने वाले पीजीपीआर की उपस्थिति पौधों में विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाती है, जिससे पौधे की वृद्धि और फसल की उपज दोनों में बढ़ोत्तरी होती है। इसके अलावा फेरिक चिलेटिंग के बाद मिट्टी में फेरिक आयनों की कमी हो जाती है जिससे मिट्टी में दूसरे रोगाणुओं की कमी तथा फलस्वरूप प्रतिस्पर्धी रोगाणुओं की गतिविधि रूक जाती है। उपजाऊ मिट्टी में जीवाणुओं की सापेक्ष संख्या और बायोमास न्यूनतम मात्रा में अलग प्रकार की भारी धातुएं जैसे कैडमियम, कॉपर और जिंक प्राकृतिक रूप से उपस्थित है, लेकिन उनका उच्च स्तर क्षेत्र विशेष में प्रदूषण की डिग्री का सूचक है। भारी धातु आयन, जब जरुरत से ज्यादा पर्यावरण में उपस्थित होते हैं तब पौधों की जड़ें उन्हें अवशोषित कर लेती हैं और तने में स्थानांतरित कर देती है जिसके कारण पौधों की वृद्धि और चयापचय दोनों में कमी आ जाती है। ज्यादा मात्रा मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को भी कम करती है। इस तरह के उत्खनन के पश्चात् जमीन के गडढे भरने के लिए अनेक तरीके जैसेः थर्मल उपचार व, एसिड लीचिंग आदि अपनाये जाते हैं। इनकी उच्च लागत व कम दक्षता के साथ मिट्टी की संरचना और उत्पादकता पर विपरित प्रभाव के कारण ये तरीके व्यवहारिक एवं उपयुक्त नहीं है। इन स्थितियों में सूक्ष्मजीवों की आबादी भारी धातुओं की गतिशीलता को कम करने में सक्षम सिद्ध होती है और पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता चिलेटिंग एजेंट, अम्लीकरण, फॉस्फोरस घुलनशीलता और रीडोक्स परिवर्तन द्वारा संचालित करती है। विकासशील देशों में चावल सबसे महत्वपूर्ण भोजन है और चावल की खेती के लिए रासायनिक उर्वरक सबसे महत्त्वपूर्ण है। अधिक उपज देने वाली चावल की किस्म उपज को बढ़ाती है लेकिन इन्हें ज्यादा मात्रा में रासायनिक उर्वरक की जरुरत पड़ती है जिसके कारण स्वास्थ्य के लिए खतरा और पर्यावरण प्रदूशण भी बढ़ता है। चावल की खेती को टिकाऊ बनाने और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करने के लिए पीजीपीआर उपयोग से जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण, फॉस्फोरस को घुलनशील और उपज बढ़ाने वाले कुछ रासायनिक पदार्थ जैसे एण्डोल एसिटिक अम्ल का संतुलन बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष

पीजीपीआर का कृषि में उपयोग एक नई तकनीक के रूप में किया जा रहा है। कई देशों में इन जीवाणुओं का सफलतापूर्वक उपयोग कृषि उपज को बढाने में किया जा रहा है। अधिक विकसित देशों में जहाँ कृषि रसायन अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं, पीजीपीबी का उपयोग जैविक कृषि के लिए बढ़ रहा है। फाइटोरेमेडिएशन में भी पीजीपीबी के ज्यादा उपयोग होने की संभावना है। पीजीपीआर का उपयोग प्रयोगशाला और ग्रीन हाऊस प्रयोगों से आगे बड़े पैमाने पर व्यवसायिक क्षेत्र में बढ रहा है परन्तु इनके व्यापक उपयोग हेतु जीवाणुओं के विकास, भंडारण, शिपिंग व निर्माण के लिए कारगर तरीकों की आवश्यकता होगी। इसके अलावा बड़े पैमाने पर कृषि क्षेत्र में पीजीपीआर के उपयोग के लिए लोगों को शिक्षित करना आवश्यक है।

समाप्त

औद्योगिक अपशिष्ट निष्पादन का मृदा एवं जल गुणवत्ता पर प्रभाव

मनीषा, अजय कुमार[1], प्रवीण कुमार एवं शारिक अली

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

[1]भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रूड़की (उत्तराखण्ड)

औद्योगिकीकरण सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो मानव समाज को अपेक्षाकृत सशक्त एवं साधन सम्पन्न समाज में परिवर्तित करती है। यह व्यापक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का एक हिस्सा है, जहाँ सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास, तकनीकी उपलब्धियों के साथ जुड़े हुए हैं। तकनीकी एवं आर्थिक स्थिति में आए बड़े बदलाव को ही औद्योगिक क्रान्ति के नाम से जाना जाता है। भारतवर्ष का औद्योगिकीकरण 1850 ई. से प्रारम्भ हुआ। सन् 1853–54 में भारत में रेल और तार की प्रणाली प्रारंभ हुई। इसके बाद सूती मिलें, कोयला खदानें, कागज, चमड़ा, लौहा, इस्पात, शक्कर, डीजल ईंजन, पम्प, साइकल, कपड़ा सीने की मशीनें, कास्टिक सौडा, सौडा राख, क्लोरीन का उत्पादन प्रारंभ हुआ। इसके बाद देश के इतिहास में पहली बार वायुयानों, मोटरकारों तथा जलपोतों की मरम्मत करने का कार्य प्रारंभ हुआ। द्वितीय महायुद्ध के अंत तक भारतवर्ष की गणना विश्व के प्रथम आठ राष्ट्रों में होने लगी। भारत शक्कर, सीमेंट तथा साबुन के क्षेत्र में पूर्णतया आत्मनिर्भर था तथा जूट के क्षेत्र में तो उसका एकाधिपत्य था। भारत के प्रमुख उद्योगों में वस्त्र, रसायन, खाद्य प्रसंस्करण, दवा, मिश्र धातु, धातु चढ़ाना, रंगाई, प्लास्टिक उत्पाद, खाद्य तेल उत्पादन, बैटरी निर्माण, इस्पात, सीमेंट, खनन, पेट्रोलियम, उर्वरक, सॉफ्टवेयर इत्यादि उद्योग सम्मिलित हैं।

संयंत्रों और कारखानों की स्थापना के माध्यम से औद्योगिकीकरण ने देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के बाद, उद्योगों से प्रवाहित अपशिष्ट निष्पादन पर्यावरण के लिए गंभीर चुनौती बन रहा है। औद्योगिकीकरण में अनियंत्रित वृद्धि, तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरीकरण व रासायनिक उर्वरकों का कृषि में अत्यधिक उपयोग के फलस्वरूप देश में पर्यावरण प्रदूषण की समस्याएँ उत्पन्न हो रही है।

प्रदूषक, मानव निर्मित कई कारक जैसे कारखानों, भट्ठों और यातायात साधनों से निकलता हुआ धुँआ, कीटनाशक, उद्योगों के अपशिष्ट प्रवाह आदि विभिन्न प्रकार के दूषित पदार्थों से मिलकर बनता है तथा पर्यावरण को प्रदूषित करता है। चूँकि भारत सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक प्रदूषण नियंत्रण संबंधी नियम बनाए गए हैं जिनके अन्तर्गत कारखानों से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थों के लिए एक सीमा निर्धारित की गई है। इसके बावजूद अनेक कारखानें बिना किसी भौतिक, रासायनिक या जैविक उपचार के अपशिष्ट पदार्थों को मृदा की सत्ह पर, किसी समीपवर्ती जलाशय अथवा बोरिंग द्वारा भूजल में उतार देते हैं जो क्रमशः भूमि, जल तथा भूजल को प्रदूषित कर रहा है। अपशिष्ट के निपटान से पहले उसका उपचार नहीं हो पाने के अनेक कारण हैं, जिनमें से एक कारण कुशल प्रौद्योगिकी की कमी है और दूसरा, अधिकांश प्रमुख उद्योगों के पास औद्योगिक अपशिष्टों के उपचार की सुविधा है लेकिन लघु उद्योगों के साथ ऐसा नहीं है, क्योंकि उनका मुनाफा कम होता है अतः ये प्रदूषण नियंत्रण के उपकरणों में भारी निवेश करने में सक्षम नहीं है।

औद्योगिक अपशिष्ट

औद्योगिक अपशिष्ट विभिन्न प्रकार की औद्योगिक प्रक्रियाओं द्वारा ठोस, तरल या गैस के रूप में उत्पन्न होता है। इसमें स्क्रेप धातु, तेल, सोलवेंट, विषैले रसायन, खरपतवारनाशक, पेंट, रंजक, प्लास्टिक उत्पाद तथा इसी तरह के अन्य हानिकारक कचरे को शामिल किया जाता है। औद्योगिक अपशिष्ट विषाक्त, ज्वलनशील, संघारक अथवा प्रतिक्रियाशील प्रकृति का होता है। यदि इसका प्रबंधन उचित तरीके से नहीं किया जाए तो यह मानव और पर्यावरण के लिए खतरनाक परिणाम पैदा कर सकते हैं, यह अनुमान है कि भारत की जनसंख्या वर्ष 2020 तक 1.35 अरब हो जाएगी। अनुमानित जनसंख्या वृद्धि का संकेत है कि 2050 तक भारत दुनिया में सबसे अधिक आबादी वाला देश होगा। दुनिया के कुल क्षेत्रफल के 2.4 प्रतिशत भूभाग पर विश्व की 17.4 प्रतिशत जनसंख्या के कारण भारत अपने प्राकृतिक

संसाधनों पर अत्यधिक दबाव की स्थिति में है। कई क्षेत्रों में पीने योग्य पानी की कमी है तो कहीं मिट्टी, जल, वायु तथा अन्य पर्यावरण प्रदूषण के कारण बुरा असर पड़ रहा है। विशेष चिंता का विषय औद्योगिक अपशिष्ट से निकलने वाले कैंसर जनक तथा रेडियो एक्टिव पदार्थ है जो मृदा, सतही जल या भूजल द्वारा मानव के शरीर में पहुँच जाते हैं। इनमें आर्सेनिक, कैडमियम, क्रोमियम, यूरेनियम, रेडियम इत्यादि शामिल है। पी. सी.ई. (परक्लोरोइथाइलीन) ड्राईक्लीनिंग के दौरान प्रयोग होने वाला तरल पदार्थ तथा सबसे आम प्रदूषक है जो एक संदिग्ध कैंसर कारक है।

पर्यावरण प्रदूषण में उद्योगों की भूमिका

प्रदूषण चाहे किसी भी प्रकार का हो (वायु, ध्वनि, जल, भूमि, रेडियो एक्टिव अथवा तापीय प्रदूषण) सबमें उद्योगों की भागीदारी होती है। उद्योग निम्नलिखित तरीकों से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ाते हैः

- औद्योगिक इकाईयों को स्थापित करने के लिए वनों की कटाई।
- उत्पादन इकाईयों से निकलने वाली विषैली गैस और धुआं।
- मशीनों, वाहनों आदि के उपयोग से ध्वनि तथा वायु प्रदूषण के रूप में।
- नदियों तथा नहरों में अनुपचारित तथा हानिकारक पदार्थों का विसर्जन।
- ठोस कचरे को खुली हवा में फेंकना।
- खनन तथा खदान संबंधी गतिविधियां।
- परिवहन के बढते हुए उपयोग से।
- अनियंत्रित औद्योगिकीकरण तथा शहरीकरण।

औद्योगिक अपशिष्ट निर्वहन का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

भूमि प्रदूषण से अभिप्राय, भूमि पर विषैले, अवांछित और अनुपयोगी पदार्थों को विसर्जित करने से है। इससे भूमि का निम्नीकरण होता है तथा मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित होती है। औद्यौगिक इकाईयों, खान–खदान, घर तथा होटलों इत्यादि द्वारा निकले ठोस अपशिष्ट पदार्थों को या तो भूमि की सत्ह पर फेंक दिया जाता है या अन्दर दबा दिया जाता है तथा मिट्टी द्वारा इनका अपघटन नहीं हो पाता है। धातु द्वारा प्रदूषित मिट्टी से पौधे आवश्यक सूक्ष्म तत्व जैसे आयरन, जिंक, कॉपर, मैंगनीज के साथ–साथ विषाक्त धातु जैसे लैड, क्रोमियम, निकिल, आर्सेनिक, पारा और कैडमियम को भी संचित कर लेते हैं। प्रदूषक यदि मिट्टी में प्रवेश कर जाते हैं तो वे मिट्टी में लगातार जमा होते रहते हैं। मिट्टी से वह पौधों द्वारा अवशोषित होकर आहार श्रृंखला में प्रवेश कर जाते हैं जिससे इनकी सांद्रता प्रत्येक आहार श्रृंखला के क्रम में बढती जाती है, इसे बायो–मैग्नीफिकेशन प्रक्रिया कहते हैंः उदाहरणतः डी.डी.टी.ए पारा (मरकरी) इत्यादि जो बहुत कम मात्रा में भी विषाक्त होते हैं।

पौधों की सम्पूर्ण वृद्धि के लिए सत्रह आवश्यक पोषक तत्वों की

तालिका 1: विभिन्न प्रकार के उद्योगों से उत्पन्न होने वाले अपशिष्ट

प्रदूषक	उद्योग
धातुः कैडमियम, कॉपर, आयरन, निकिल, लैड, जिंक कार्बनिक/अकार्बनिक पदार्थ तथा पैरामीटरः बी.ओ.डी., सी.ओ.डी., घुलनशील ठोस पदार्थ, क्लोराइड, सल्फेट, फॉस्फेट	कागज उद्योग
कार्बनिक/अकार्बनिक पदार्थ तथा पैरामीटरः सोडियम, क्लोराइड, कैल्शियम, सी.ओ.डी., बी.ओ.डी.	सिसटाईन उत्पादन उद्योग
धातुः कॉपर, आयरन, जिंक तथा मैंग्नीज कार्बनिक/अकार्बनिक पदार्थ तथा पैरामीटरः घुलनशील ठोस पदार्थ, सी.ओ.डी., बी.ओ.डी., क्लोराइड, सल्फेट, कार्बोनेट, सोडियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम	डाई तथा प्रिंटिग उद्योग
धातुः आयरन, मैग्नीज, लेड, जिंक, कॉपर, निकिल, क्रोमियम, कैडमियम, कोबाल्ट कार्बनिक/अकार्बनिक पदार्थ तथा पैरामीटरः सी.ओ.डी., बी.ओ.डी.	रसायन, पेय–पदार्थ, चमड़ा, तेल, साबुन, पेंट, कागज तथा धातु प्रसंस्करण संयंत्र

जरुरत होती है। इनमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, आयरन, मैंग्नीज, जिंक, कॉपर, बोरोन, मोलिब्डेनम, क्लोरीन तथा निकिल आदि प्रमुख है। इन तत्वों को सूक्ष्म तथा स्थूल पोषक तत्वों में बाँटा गया है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की अधिक उपस्थिति या कमी पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। मृदा के भौतिक तथा रासायनिक विश्लेषण द्वारा कार्बनिक पदार्थ, मुख्य और सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्थिति का पता लगाया जा सकता है। अनेक शोधकार्यों द्वारा प्रमाणित किया गया है कि कारखानों के पास के क्षेत्रों में फसल की उत्पादकता में कमी आई है और मृदा पीएच मान, वैद्युत चालकता, क्षारीयता, क्लोराइड, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटेशियम, लौहा, कार्बनिक पदार्थ, अकार्बनिक फॉस्फेट तथा सल्फेट की मात्रा पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा प्रदूषित क्षेत्रों की मृदा एवं पौधों में विषाक्त तत्वों की मात्रा बिना प्रदूषण वाले क्षेत्रों की तुलना में काफी अधिक पाई गई जोकि एक चिंता का विषय है।

औद्योगिक क्षेत्रों से भारी मात्रा में जो अपशिष्ट निकलता है उसका उद्योग के प्रकार से सीधा संबंध है। उदाहरणतः कपड़ा उद्योग से उच्च ऑक्सीजन मांग (रासायनिक या जैविक) और रंग वाला व्यर्थ बहुतायत मात्रा में निकलता है। दूसरी और चमड़ा शोधन कारखाने कैडमियम धातु युक्त कचरा उत्पन्न करते हैं। निम्न तालिका 1 में औद्योगिक क्षेत्रों से निकलने वाले व्यर्थ पदार्थों को सूचीबद्ध किया गया है। शोध कार्यों द्वारा ज्ञात हुआ कि किसी भी कारखाने से निकलने वाले अपशिष्ट की मात्रा केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा निर्धारित किए गए राष्ट्रीय मानक के अंतर्गत नहीं आती। राष्ट्रीय मानक द्वारा 104 प्रकार के कारखानों से निकलने वाले औद्योगिक अपशिष्ट निष्पादन की सीमा निर्धारित की गई है।

औद्योगिक अपशिष्ट निर्वहन का जल गुणवत्ता पर प्रभाव

जल गुणवत्ता इसकी भौतिक, रासायनिक तथा जैविक अवस्थाओं पर निर्भर करती है। जल प्रदूषण को इसकी अम्लीयता, क्षारीयता, पीएच, रंग, स्वाद, अपारदर्शिता, गंध, रासायनिक एवं जैविक ऑक्सीजन मांग, रेडियो सक्रियता, धनत्व, सख्तता, तापमान आदि गुणों से पहचाना जा सकता है। भारत में चमड़े, शराब, चीनी, कागज, लुग्दी, उर्वरक, कीटनाशी तथा खाद्य संस्करण आदि उद्योगों द्वारा भारी मात्रा में अनुपचारित अपशिष्ट पदार्थ जल के प्रमुख स्रोतों झील, तालाब, नदियों और समुद्र में बहाये जाते हैं, जिससे अत्यधिक जल प्रदूषण होता है। इनमें उपस्थित अनेक विशाक्त घटक जैसे भारी धातु, नाइट्रेट, अमोनिया, लवण, क्षार, वसा, तेल आदि रासायनिक तत्व जलीय जीवों में चयापचय हानि, उत्तकों पर विषाक्तता, प्रोटीन स्तर में कमी और यूट्रोफिकेशन का कारण बन सकते हैं।

अधिकांश संयंत्रों में जल का अत्याधिक उपयोग किया जाता है तथा इन संयंत्रों से भारी मात्रा में अपशिष्ट बहिःस्राव के रूप में निकलते हैं। संयत्रों में जल की आवश्यकता के कारण ही उद्योगों को नदियों एवं जलाशयों के किनारे स्थापित किया जाता है।

गंगा एवं यमुना जल में बहाया जाने वाला रासायनिक कचरा

तालिका 2: भूजल में आर्सेनिक की अधिक मात्रा वाले भारत के राज्य व जिले

राज्य	जिला
असम	धेमाजी
बिहार	भोजपुर, पटना, बेगुसराय, खगडिया, समस्तीपुर, भागलपुर, सारन, मुंगेर, कटिहार, बक्सर, वैशाली, दरभंगा, पूर्णिया, किशनगंज, लखीसराय
छतीसगढ	राजनांद गांव
पश्चिम बंगाल	मालदा, मुर्शिदाबाद, नदिया, उत्तरी 24 परगना, दक्षिणी 24 परगना, हावडा, हुगली
उत्तर प्रदेश	आगरा, अलीगढ, बलरामपुर, गोंडा, गोरखपुर, लखीमपुर खीरी, मथुरा, मुरादाबाद

इससे न केवल उद्योगों के लिए जल की आपूर्ति आसान होती है अपितु अपशिष्ट पदार्थों का निपटान भी सरलता से हो जाता है। जापान के मिनामाता की घटना ने साबित कर दिया है कि पारे से भी जल प्रदूशण होता है। जल प्रदूषण का प्रभाव केवल मनुष्य के लिए ही नहीं बल्कि पशु–पक्षियों और जलीय जीवों के लिए भी विनाशकारी है। प्रदूषित जल पीने, कृषि और उद्योग के लिए अनुपयुक्त है साथ ही यह झीलों और नदियों के सौंदर्य को भी कम करता है। आखिरकार यह दूषित जल जलीय जीवन को धीरे–धीरे नष्ट कर देता है।

देश के अनेक राज्यों में औद्योगिकीकरण के चलते नई फैक्ट्रियों की स्थापना की जा रही है। किसी फैक्ट्री से अपशिष्ट नालियों में बहाया जा रहा है तो कुछ फैक्ट्रियां इसे सीधे भूजल में उतार रही है। इसके कारण सतही जल के साथ–साथ भूजल भी अत्यधिक प्रदूषित हो चुका है। मध्य प्रदेश के कुछ इलाकों में ट्यूबवेलों का पानी इतना दूषित हो चुका है कि इसे पीना तो दूर अन्य किसी उपयोग में भी नहीं लाया जा सकता है। यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश के बीस से अधिक जिलों का भूजल आर्सेनिक से दूषित पाया गया है। इसके अतिरिक्त 31 जिले ऐसे है जहाँ यह खतरा हो सकता है। शोध बताते हैं कि इन क्षेत्रों में आर्सेनिक प्रदूषण 100–150 भाग आर्सेनिक प्रति बिलियन भाग पानी तक पहुँच चुका है। दिल्ली के मेडिकल संस्थान एम्स की जाँच के अनुसार दिल्ली के दक्षिण–पश्चिम में दो सौ किलोमीटर के दायरे में आर्सेनिक का स्थानिक क्षेत्र विकसित हो रहा है। गंगा एवं यमुना जल में भारी मात्रा में केमिकल कचरा बहाया जा रहा है (चित्र)। बिहार में पटना सहित 15 जिलों के लोग आर्सेनिक युक्त जहरीला पानी पीने के लिए मजबूर हैं। तालिका 2 में भूजल में उच्च आर्सेनिक वाले राज्यों को दर्शाया गया है।

मार्च 2009 में पंजाब में यूरेनियम विषाक्तता का मामला प्रकाश में आया, इसका कारण ताप विद्युत गृहों द्वारा बनाए गए राख के तालाब थे। इनसे पंजाब के फरीदकोट तथा बठिंडा जिलों के बच्चों में गंभीर जन्मजात विकार पाए गए। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा किये गए एक अध्ययन के अनुसार पंजाब के विभिन्न जिलों से लिए गए पानी के नमूनों में आर्सेनिक की मात्रा 3.5 से 688 पीपीबी तक पाई गई है। दक्षिण–पश्चिम पंजाब के जिलों में भूजल का एक भी नमूना पीने लायक नहीं पाया गया। यहाँ आर्सेनिक की मात्रा पीने के पानी में 11.4 से 688 पीपीबी और भैंस के दूध में 208 से 279 पीपीबी तक पाई गई। पानी में घुला आर्सेनिक कैंसर के कई रूप, त्वचा कैंसर, गाल ब्लेडर का कैंसर और गुर्दे की खराबी आदि बीमारियों का कारक है। आर्सेनिक और नाइट्रेट के कारण मनुष्य की प्रतिरक्षा प्रणाली प्रभावित होती है जिससे मस्तिष्क में कैंसर का खतरा बढ जाता है। आर्सेनिक से टाइप–दो की डायबिटीज, मस्तिष्क से जुड़ी धमनियों में सिकुडन, लचीलापन, धमनियों से संबंधित बीमारियाँ होने और परिणामस्वरूप दिल का दौरा पडने और पक्षाघात का खतरा बढ जाता है। तालिका 3 में रासायनिक अवयव तथा स्वास्थ्य पर इनका प्रभाव दर्शाया गया है।

औद्योगिक बहिःस्राव

तेलीय प्रदूषण

तेल से भी जल प्रदूषण होता है। यह प्रदूषण सामान्यतः तब होता है जब उद्योगों से तेलीय पदार्थ जल में छोड़े जाते हैं। तेल प्रदूषण नदियों की अपेक्षा समुद्र में अधिक होता है। समुद्र में तेल प्रदूषण अधिक होने का कारण, तेल वाहक जलयानों पर तेल का चढ़ाना व उतारा जाना तथा तेलवाहक जहाजों का दुर्घटनाग्रस्त हो जाना आदि है। इसके अलावा जलयानों द्वारा अवशिष्ट तेल

तालिका 3. रासायनिक अवयव तथा स्वास्थ्य पर इनका प्रभाव

अवयव	स्रोत	पीपीबी	प्रभाव
आर्सेनिक	औद्योगिक प्रदूषण	0.05	कैंसर का कारण
सीसा	औद्योगिक अपशिष्ट	0.05	ऊतकों में एकत्र होकर सीसे की विषाक्तता का प्रभाव
सायनाइड	विद्युत लेपन अपशिष्ट	0.01	जैव क्रियाओं पर प्रभाव
बेरियम	कार्बोनेट के रूप में तथा लवणीय जल में	1.00	हृदय, नाडी तथा रूधिर वाहिका के लिए घातक
क्रोमियम	औद्योगिक अपशिष्ट	0.05	कैंसर का कारण
चांदी	औद्योगिक प्रदूषण	0.05	अर्जिया रोग जिससे आँखों एवं त्वचा का रंग नीला या स्लेटी हो जाता है
सेलेनियम	औद्योगिक प्रदूषण	0.01	दंत क्षय एवं कैंसर का कारण
कैडमियम	विद्युत लपेन अपशिष्ट	0.01	वृक्क की धमनियों के लिए घातक

को समुद्र में छोड़ने तथा समुद्र किनारे स्थित तेल के कुएँ में रिसाव हो जाने से भी तेलीय प्रदूषण होता है।

तापीय प्रदूषण

रिएक्टरों के अधिक तापमान को कम करने के लिए जल का प्रयोग किया जाता है और उसे पुनः जल स्रोतों में छोड़ दिया जाता है, जिससे जल के तापमान में हानिकारक वृद्धि हो जाती है। इसे तापीय प्रदूषण कहते हैं। यह प्रदूषण मुख्यतः रिएक्टरों, वाष्प या परमाणु चलित संयत्रों द्वारा होता है। इसके अलावा समुद्र में किए जाने वाले परमाणु विस्फोट संबंधी परिक्षणों से भी अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा, उष्मा के रूप में निकलती है जो जल के तापमान में वृद्धि करती है।

रेडियो सक्रिय अपशिष्ट एवं अवपात

विकसित एवं विकासशील देशों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए परमाणु परीक्षण किए जा रहे हैं, जिसके दौरान असंख्य छोटे–छोटे रेडियोएक्टिव कण वायुमण्डल में दूर–दूर तक फैल जाते हैं और ये कण धीरे–धीरे जमीन पर गिरते हैं, इसे अवपात कहते हैं। ये रेडियोएक्टिव अवपात पृथ्वी पर गिरकर अन्ततः जल स्रोतों में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार दूषित जल का उपयोग करने पर ये पदार्थ शरीर के विभिन्न अंगों में जमा होकर हानिकारक प्रभाव दिखाते हैं। रेडियोएक्टिव अवपात में स्ट्रान्शियम–90 विद्यमान रहता है जो दूध के माध्यम से नवजात शिशुओं में पहुँचकर उनमें विकृति पैदा कर देता है। स्ट्रान्शियम–90 के अतिरिक्त सीसियम–137, सीरियम–144, रेडियो आयोडीन–131, आयरन–59, कोबाल्ट–60 तथा जिंक–65 जैसे अन्य रेडियोएक्टिव पदार्थ भी मानव के शरीर में पहुँच जाते है, जिनका प्रभाव निश्चित रूप से हानिकारक होता है।

अम्लीय वर्षा

औद्योगिक क्षेत्रों के वायुमण्डल में इतनी अधिक मात्रा में सल्फर डाईऑक्साइड मौजूद है कि वर्षा के समय गिरने वाला जल, जल न होकर सल्फूरिक अम्ल होता है। यह जल मृदा एवं सतही जल दोनों का पीएच मान कम कर देता है जिससे भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। मृदा एवं जल में उपस्थित क्रमशः सूक्ष्म तथा जलीय जीवों की कुछ प्रजातियां पीएच के लिए अत्यन्त संवेदनशील होती है अतः इसके कम होने से उनके क्रियाकलापों में बाधा पहुँचती है और कई प्रजातियाँ लुप्त भी हो सकती है। कारखानों से सल्फर डाईऑक्साइड के अलावा सल्फर, सीसा, बेरेलियम, जिंक, कैडमियम, पारा, कार्बन डाईऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड तथा धूलकण भी निकलते हैं जो क्षेत्रीय वायु को प्रदूषित करते हैं।

संशोधनात्मक उपाय

मृदा एवं जल प्रकृति प्रदत्त महत्वपूर्ण संसाधन हैं। इनके दूषित होने से पौधों के विकास तथा मानव स्वास्थ्य समेत पूरे पर्यावरण पर प्रतिकूल असर पड़ता है। पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने में उद्योगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है जो निम्नलिखित है:

- **निवारणात्मक भूमिका**

  इसका अर्थ है कि औद्योगिक क्षेत्रों द्वारा ऐसा कोई भी कार्य न

किया जाए, जिससे पर्यावरण को अधिक हानि हो। इसके लिए आवश्यक है कि उद्योग सरकार द्वारा लागू प्रदूषण नियंत्रण संबंधी सभी नियमों का पालन करें।

- **उपचारात्मक भूमिका**

  इसका अर्थ है कि औद्योगिक इकाईयाँ पर्यावरण को पहुँची हानि को संशोधित करने या सुधारने में सहायता करें। साथ ही यदि प्रदूषण को नियंत्रित करना संभव न हो तो उसके निवारण के लिए उपचारात्मक कदम उठाए। उदाहरणतः वृक्षारोपण, वनारोपण कार्यक्रम से औद्योगिक इकाईयों के आस–पास के वातावरण में वायु प्रदूषण कम किया जा सकता है।

- **रिड्यूस, रियूज तथा रिसाइकल का नियम**

  इसका अर्थ है कि औद्योगिक इकाईयाँ ऐसी कुशल औद्योगिक तकनीकों का प्रयोग करें जिससे अपशिष्ट पदार्थ कम मात्रा में उत्पन्न हों। दूसरा, कई प्रकार के अपशिष्ट ऐसे होते हैं जिन्हें दूसरे कारखानों में कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, इसके अलावा रिएक्टरों के तापमान को कम करने के लिए जो जल का उपयोग किया जाता है तथा उस जल के तापमान को कम करके उसे पुनः प्रयोग में लाया जा सकता है। तीसरा रिसाइकल से अभिप्राय है कि कई पदार्थ जैसे धातु, प्लास्टिक उत्पाद, रबड, पोलिथीन तथा काँच इत्यादि को रिसाइकल करके उसे पुनः उपयोग में लाना चाहिए।

- औद्योगिक इकाईयों द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि कार्बनिक, अकार्बनिक, धातु तथा विषैले एवं हानिकारक अपशिष्टों को अलग कंटेनर में रखा जाए ताकि व्यर्थ पदार्थ के प्रकार अनुसार इसे समुचित तरीके द्वारा उपचारित किया जाए। रेडियोएक्टिव पदार्थों को पूर्णतः विघटन के बाद ही विसर्जित किया जाना चाहिए।

- औद्योगिक कचरे का प्रबंधन अति आवश्यक है। सभी प्रकार के अपशिष्टों तथा अपशिष्ट युक्त बहिः स्राव को नदियों, तालाबों तथा अन्य जल स्रोतों में बहाए जाने पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए। कारखानों के लिए अनिवार्य हो कि वे अनुपचारित औद्योगिक बहिःस्राव या अपशिष्ट को जल स्रोतों में न बहायें। नए कारखानों को लाईसेंस देने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लिया जाए कि उनमें बहिःस्राव के समुचित उपचार के लिए संयंत्र लगाया गया है या नहीं। प्रदूषित जल को जल स्रोतों में गिराने से पूर्व उसमें शैवाल की कुछ जातियों एवं जलकुम्भी के पौधों को उगाकर शुद्ध किया जाना चाहिए। इसी प्रकार मृदा को जैविक व पौधों द्वारा उपचार (बायो व फाइटोरेमेडिएशन) प्रक्रिया द्वारा सुधार लेना चाहिए।

- **जागरूकता संबंधी भूमिका**

  इसका अर्थ है कि कर्मचारियों तथा जनता को पर्यावरण प्रदूषण के कारणों तथा परिणामों के संबंध में जागरूक बनाएँ, ताकि वे स्वैच्छिक रूप से पर्यावरण की रक्षा करें।

समाप्त

असफलताएं उपलब्धि की तरफ जाने वाले रास्ते की मार्गदर्शक है।

कृषि, पशुपालन एवं डेरी मशीनों के समुचित निर्माण तथा रखरखाव हेतु आवश्यक जानकारी

पी. बर्नवाल एवं पी.एस. विज

भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

पिछले कुछ वर्षों में ऐसा देखा गया है कि कृषि, पशुपालन एवं डेरी मशीनों के उपयोग से कार्य करने की क्षमता व उत्पादन बढ़ता है तथा समय व लागत में कमी आती है। इन मशीनों के विकास के लिए कार्यशाला (वर्कशॉप) का होना आवश्यक है, जहाँ इस तरह की नई मशीनों का निर्माण एवं उपलब्ध मशीनों का बेहतरीकरण तथा मरम्मत आदि का कार्य सुचारू रूप से किया जा सके। इस कार्यशाला का सदैव कार्यचालन स्थिति में होना अति आवश्यक है, क्योंकि विकास से संबंधित नई मशीनों के प्रारम्भिक प्रारूपों का निर्माण, उपलब्ध सुविधाओं की मरम्मत एवं अन्य गतिविधियों में कार्यशाला का महत्वपूर्ण योगदान होता है। कार्यशाला में विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए कारीगरों (तकनीशियनों) द्वारा विभिन्न मशीनों पर कार्य किया जाता है, जैसे खराद मशीन (लेथ मशीन), पिडेस्टल ग्राइंडर, गैस वेल्डिंग सेट, बिजली वेल्डिंग सेट, ड्रिलिंग मशीन, शीयरिंग मशीन, पॉवर हेक्सा मशीन, शेपिंग मशीन (शेपर) एवं बेंच वाईस इत्यादि। अगर किसी भी वजह से कार्यशाला का कार्य प्रभावित होता है, तो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मशीनों के विकास एवं मरम्मत संबंधी कार्यों में गतिरोध होना स्वाभाविक है। यद्यपि कार्यशाला की मशीनों को कारीगर कुशलता एवं सावधानीपूर्वक चलाते हैं, फिर भी किसी न किसी कारणवश छोटी–बड़ी दुर्घटनायें हो सकती है। एक कहावत है "सावधानी हटी, दुर्घटना घटी"। इस तरह एक छोटी सी असावधानी एक बहुत बड़ी दुर्घटना का कारण बन सकती है। अतः कार्यशाला में कृषि, पशुपालन एवं डेरी आदि से संबंधित नई मशीनों के निर्माण एवं उपलब्ध मशीनों के बेहतरीकरण तथा मरम्मत आदि कार्य को सुचारू रूप से करने के लिए कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

कार्यशाला में ध्यान देने योग्य कुछ आवश्यक बातें

कार्यशाला को सदैव स्वच्छ रखना चाहिए तथा फर्श पर तेल या ग्रीस आदि नहीं बिखरा होना चाहिए। कार्यशाला में शुद्ध वातावरण के लिए हवा निष्कासन (एग्जास्ट) पंखों का प्रयोग करना चाहिए एवं "धूम्रपान निषेध" होना चाहिए। आग से बचाव के लिए कार्यशाला में पानी/रेता भरी बाल्टी या अग्निशामक यंत्र होना चाहिए। कार्यशाला में काम करते समय आँखों के बचाव के लिए चश्मा और पैरों के बचाव के लिए मोटे तलों वाले तेल प्रतिरोधी जूते पहनने चाहिए। बिजली की तारें नंगी या कनेक्शन ढ़ीले नहीं होने चाहिए तथा कभी भी इन नंगी तारों को छूना नहीं चाहिए। यदि बिजली की पॉवर (शक्ति) में कोई खराबी दिखाई दे तो इसकी सूचना अपने बिजली कर्मचारी को तुरन्त देनी चाहिए।

किसी भी कारीगर या श्रमिक को अंगूठी, घडी, मफलर, टाई और ज्यादा ढ़ीले कपड़े आदि नहीं पहनना चाहिए तथा जिन मशीनों व टूल के बारे में पूर्ण जानकारी न हो उनको नहीं चलाना चाहिए। मशीन पर कार्य करने से पहले यह जानकारी करना आवश्यक है कि वह किस बटन से चालू होती है और किससे बंद होती है। मशीन को चलाने से पहले हाथ से चला कर देख लेना (चेक करना) चाहिए। कार्य करते समय कमीज की लम्बी आस्तीनों को ऊपर चढ़ा लेना चाहिए। कार्यशाला में स्क्रैप (धातु–अवशेष) व चिप्स (धातु के टुकड़े/चूर्ण) इत्यादि को किसी कोने में रखना चाहिए तथा मशीन पर पड़े चिप्स हमेशा ब्रश द्वारा साफ करना चाहिए। हमेशा कार्य के अनुसार सही औजारों का चयन व प्रयोग करना चाहिए। मशीन में टूल्स व जॉब सही व मजबूती से बंधा होना चाहिए। मशीन के गतिशील पुर्जों जैसे गियर, बेल्ट तथा पुली आदि पर कवर या गार्ड लगे होने चाहिए। मशीन के बेल्ट गार्ड्स व दूसरे ढक्कन सही बंद करने चाहिए। मशीन चलाने से पूर्व आवश्यक या संभावित जगहों पर लुब्रीकेशन अवश्य करना चाहिए। किसी भी मशीन को उपयोग करने से पहले उसके कार्यचालन स्थिति का परीक्षण अवश्य करना चाहिए। कभी भी चलती मशीन के गियर नहीं बदलने चाहिए। चलती मशीन पर जॉब का माप नहीं लेना चाहिए। हमेशा मशीन रोककर माप लेना चाहिए। कभी भी चलती मशीन में तेल नहीं देना चाहिए। कभी भी आटोमेटिक चलती मशीनों को छोड़कर नहीं जाना चाहिए। चलती मशीनों को साफ करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। कार्य करने से पहले और कार्य करने के बाद, मशीन की सफाई अवश्य करनी चाहिए। यदि किसी कारणवश दुर्घटना हो जाए जैसे कारीगर के घायल होने की स्थिति में प्रारंभिक एवं तुरन्त उपचार के लिए प्राथमिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) की व्यवस्था कार्यशाला में ही होनी चाहिए तथा

खराद मशीन (लेथ मशीन)

पैडेस्टल ग्राइंडर

इसकी सूचना वरिष्ठ अधिकारी को तुरन्त देनी चाहिए।

खराद मशीन को चलाने से पहले जॉब, टूल व टेल स्टॉक इत्यादि मजबूती से बंधा होना चाहिए। टूल का कटिंग प्वाइंट, हेड स्टॉक व टेल स्टॉक की अक्ष रेखा एक सीध में होना चाहिए। इस मशीन को चलाते समय जॉब पर भारी कट न लगाकर मशीन की क्षमता के अनुसार कट लगाना चाहिए। चलती मशीन को हाथ या रेंच से नहीं पकड़ना चाहिए। जहाँ तक हो सके, धातु के अनुसार मशीन की चाल (स्पीड) रखना चाहिए व कुलेन्ट का प्रयोग करना चाहिए। पैडेस्टल ग्राइंडर के पहिये का संतुलन ठीक होना चाहिए। कभी भी ग्राइंडर पहिए के ठीक सामने नहीं खड़े होना चाहिए। कभी भी पहिए को साइड की तरफ से प्रयोग नहीं करना चाहिए। ग्राइंडिंग करते समय आँखों पर चश्मा पहनना चाहिए। टूल ज्यादा गर्म नहीं होने देना चाहिए तथा बार–बार पानी में डुबोते रहना चाहिए।

बिजली वेल्डिंग सेट हमेशा अर्थ होना चाहिए। बिजली वेल्डिंग के कमरे में हवा निकासी पंखा लगा होना चाहिए। वेल्डिंग करते समय, आँखों पर रंगीन चश्मा या वेल्डिंग स्क्रीन का उपयोग करना चाहिए तथा चमड़े के दस्ताने, ऐपरोन और चमड़े के बूट पहनना चाहिए। इलेक्ट्रिक वेल्डिंग करते समय जॉब की मोटाई के अनुसार विद्युत धारा (इलेक्ट्रिक करंट) प्रवाह निर्धारित करना चाहिए। इलेक्ट्रिक वेल्डिंग करते समय वेल्डिंग होल्डर टूटा नहीं होना तथा वेल्डिंग होल्डर और अर्थ को एक साथ हाथ में नहीं पकड़ना चाहिए। इससे इलेक्ट्रिक शॉक (विद्युत झटका) लग सकता है। इलेक्ट्रिक वेल्डिंग को नंगी आँखों से नहीं देखना चाहिए क्योंकि इलेक्ट्रिक आर्क में पराबैंगनी (अल्ट्रा–वायलेट) व अवरक्त (इन्फ्रारेड) किरणें होती हैं, जो आँखों व शरीर के लिए नुकसान देह होती है। इलेक्ट्रिक वेल्डिंग करते समय, वेल्डिंग रॉड से जो धुआं व गैस निकलती है उसके विपरीत दिशा में बैठ कर वेल्डिंग करनी चाहिए। गैस वेल्डिंग सेट के पास ग्रीस, तेल और ज्वलनशील वस्तुएं नहीं होनी चाहिए तथा सभी हौज पाइप व ब्लो पाइप के कनेक्शन मजबूती से बंधे होने चाहिए। गैस वेल्डिंग करते समय, आँखों पर रंगीन चश्मा लगाना चाहिए। गैस वेल्डिंग सेट को चलाने से पहले सिलेंडर को खोल कर बंद करना चाहिए। ऐसा करने से, सिलेंडर के गेट वाल्व में धूल, मिट्टी साफ हो जाती है और गैस रेगुलेटर लंबे समय तक चलता है। गैस की लौ को गैस सिलेंडर की तरफ नहीं करना चाहिए। एसीटिलीन गैस का रिसाव साबुन पानी से चेक कर लेना चाहिए और ऑक्सीजन गैस के रिसाव को साफ पानी से चेक कर लेना चाहिए। गैस वेल्डिंग करने से पहले जॉब की मोटाई के अनुसार वेल्डिंग टिप लगानी चाहिए।

ड्रिलिंग करने से पहले, ड्रिल का कटिंग एंगल (कोण) अच्छी तरह से ग्राउंड किया हुआ होना चाहिए। बड़ा सुराख करने से

बिजली वेल्डिंग सेट (इलेक्ट्रिक आर्क वेल्डिंग सेट)

ड्रिलिंग मशीन

शीयरिंग मशीन

पॉवर हेक्सा मशीन

शेपिंग मशीन (शेपर)

पहले, छोटा सुराख (छिद्र) करना चाहिए एवं धातु के अनुसार उचित मात्रा में कुलेन्ट का प्रयोग करना चाहिए। शीयरिंग मशीन की क्षमता के अनुसार चादर की मोटाई का चयन काटने के लिए करना चाहिए। मशीन को चलाने से पूर्व, पेडल वाले स्प्रिंग को चेक कर लेना चाहिए। फ्लाई व्हील के चक्कर उचित दिशा में होने चाहिए एवं हाथ को ब्लेड से दूर रखना चाहिए।

पॉवर हेक्सा मशीन पर ब्लेड को अच्छी तरह कस कर रखना एवं जॉब को मजबूती से पकड़ना चाहिए। जॉब पर हमेशा कुलेन्ट का प्रयोग करना चाहिए। समय–समय पर हाईड्रोलिक तेल चेक करते रहना चाहिए। शेपिंग मशीन (शेपर) को चलाने से पहले, रैम, टूल हेड स्लाइड और वाईस को अच्छी तरह चेक कर लेना चाहिए। जॉब की लम्बाई के अनुसार, स्ट्रोक की सही स्थिति सेट करनी चाहिए। कभी भी चलती मशीन के समय रैम के सामने खड़े नहीं होना चाहिए। हमेशा वापसी स्ट्रोक की सही स्थिति सेट करनी चाहिए और वापसी स्ट्रोक पूरा होने पर ही फीड देनी चाहिए। कर्मशाला में नई मशीनों के निर्माण एवं उपलब्ध मशीनों के बेहतरीकरण तथा मरम्मत आदि कार्य के समय उपरोक्त बातों का ध्यान रखकर किसी भी प्रकार की हानि होने से बचा जा सकता है।

इसके अलावा कभी–कभी कारीगर (तकनीशियन) की लापरवाही, अत्यधिक आत्मविश्वास, शीघ्र कार्य समाप्त करने की उत्सुकता, नई–नई मशीनों को चलाने की उत्सुकता, तथा, खराब मानसिक दशा के कारण मन का अन्यत्र उलझे रहना, गलत विधि का प्रयोग करना, समुचित प्रकाश का प्रबंध न होना आदि भी जान माल की हानि का कारण बन सकता है।

निष्कर्ष

कार्यशाला में कृषि, पशुपालन एवं डेरी आदि से संबंधित नई मशीनों के निर्माण एवं उपलब्ध मशीनों के बेहतरीकरण तथा मरम्मत आदि के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए सावधानी बरतना अति आवश्यक है। उपरोक्त लिखी हुई बातों जैसे सावधानी पूर्वक काम करना, अच्छी तरह काम करने की आदतें व कामकाजी माहौल को बढ़ावा देना तथा कार्य करने से प्राप्त अनुभव का उपयोग करना आदि, पर ध्यान देकर जान–माल की क्षति से बचा जा सकता है जिससे कार्यशाला में नई मशीनों व यंत्रों के निर्माण एवं उपलब्ध मशीनों के बेहतरीकरण तथा मरम्मत आदि के कार्य को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है।

समाप्त

बौद्धिक संपदा अधिकारों का कृषि प्रौद्योगिकी क्षेत्र में योगदान एवं परिपेक्ष्य

प्रवीण कुमार, शारिक अली, डी.एस. बुंदेला, आर.के. सिंह, जोगेन्द्र सिंह, अंशुमान सिंह एवं डी.के. शर्मा

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

बौद्धिक संपदा अधिकार (आई.पी.आर.) व्यक्तियों को उनकी व्यक्तिगत सृजनशीलता और उनके निर्माण को दिए गए अधिकार हैं। आई.पी.आर. मुख्यतः निर्माता को एक निश्चित अवधि के लिए उसकी सृजनशीलता या नववर्तन के प्रयोग को लेकर एक विशेषाधिकार देता है। बौद्धिक संपदा अधिकार धारक की अनुमति के बिना किसी अन्य को अविष्कार के उपयोग पर कानूनी प्रतिबंध तथा आविष्कारक को रॉयल्टी या अन्य शुल्क के लिए एकाधिपत्य अवसर प्रदान करता है। बौद्धिक संपदा अधिकारों को पेटेंट, कॉपीराईट, ट्रेडमार्क, डिजाइन, आदि प्रकार से सम्मिलित किया जाता है। भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान ने कुल 38 प्रौद्योगिकियों का विकास तथा उनका वाणिज्यीकरण किया है। इनमें से प्रमुख प्रौद्योगिकियाँ इस प्रकार हैं: जिप्सम द्वारा क्षारीय भूमि का सुधार; जलग्रस्त लवणीय भूमि के लिए उपसतही जलनिकास प्रणाली; ऑगर–होल प्रौद्योगिकी द्वारा लवणग्रस्त भूमि में वानकीकरण; नलकूप से भू–जल पुर्नःभरण और फसलोत्पादन में निम्न गुणवत्ता जल का संयुक्त प्रबंधन आदि।

जिप्सम द्वारा क्षारीय भूमि का सुधार

- वर्षा जल संग्रहण और सिंचाई के पानी के समान वितरण के लिए भूमि समतल और मेड़ तैयार करना।
- जिप्सम आवश्यकता के निर्धारण के लिए मिट्टी का परिक्षण करना।
- जिप्सम की निर्धारित मात्रा (10–15 टन प्रति हैक्टर) का मिट्टी में एक समान छिड़काव और उसके बाद सत्ही मिट्टी (10 सेंमी.) में मिश्रण।
- धान की रोपाई से पहले न्यूनतम एक सप्ताह के लिए जलभराव।
- उचित फसल प्रबंधन करना।

पहले वर्ष में सुधारी गई क्षारीय भूमि से किसानों ने 4 टन/हैक्टर धान और 2 टन/हैक्टर गेहूँ का उत्पादन प्राप्त किया जो तीसरे वर्ष में बढ़कर क्रमशः 5 और 3 टन/हैक्टर हो गया और साथ में 135 कार्य दिवस प्रति हैक्टर प्रति वर्ष रोजगार के अवसरों का भी सृजन हुआ। जिप्सम आधारित तकनीक से देश में अब तक लगभग 18.5 लाख हैक्टर क्षारीय भूमि का सुधार किया जा चुका है और 4.5 लाख हैक्टर क्षारीय भूमि का सुधार प्रतिवर्ष हो रहा है। इस सुधरी हुई भूमि से 15–18 मिलियन टन प्रतिवर्ष अतिरिक्त अनाज का उत्पादन हो रहा है।

ऑगर होल तकनीक

लवण प्रभावित भूमि (पीएच मान 10 व अधिक) में वनीकरण और फल वृक्षों के रोपण हेतु ऑगर होल तकनीक का विकास और मानकीकरण किया गया है। इस तकनीक को अपनाकर राज्य वन विभागों ने सफलतापूर्वक प्रभावित गाँवों की लवणीय भूमि, सरकारी भूमि, सड़कों, रेलवे लाइन और नहरों आदि के समीप सफल वृक्षारोपण किया है। इस तकनीक द्वारा फल वृक्षों जैसे आँवला, करोंदा, अमरूद, आदि का लवण प्रभावित भूमि में सफलतापूर्वक वृक्षारोपण किया गया है। इस तकनीक द्वारा 50,000 हैक्टर से अधिक लवण प्रभावित भूमि में वृक्षारोपण किया जा चुका है।

उपसतही जलनिकास प्रणाली

उपसतही जलनिकास प्रणाली लवणग्रस्त जलभराव सिंचित भूमि के सुधार के लिए एक प्रभावी तकनीक है। इस प्रणाली में कृत्रिम फिल्टर से ढ़के हुए छिद्रित नालीदार पी.वी.सी. पाइप सतह के नीचे एक निश्चित दूरी और गहराई में स्थापित किये जाते हैं तथा इनकी स्थापना इस प्रकार की जाती है कि गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव से भूजल को एक खुले कुएं (सम्प) में एकत्रित करके हैं। सम्प से इस जल को क्षेत्र से बाहर निष्कासित किया जाता है। इस जलनिकास प्रणाली की गहराई और दूरी को वर्षा, सिंचाई, जल–भूगर्भ रचना, मृदा लवणता नियंत्रित करती है। वर्ष 1980

के दशक के दौरान भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित की गई इस प्रणाली को हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक में व्यापक रूप से अपनाया जा रहा है। इस तकनीक के उपयोग से लगभग एक लाख हैक्टर लवणग्रस्त जलभराव वाली भूमि का सुधार किया जा चुका है।

भूजल पुर्नःभरण

किसान आधारित एकल भूजल पुर्नःभरण संरचना को वर्षा के अतिरिक्त जल और नहर के पानी को गुरूत्वाकर्षण द्वारा बोर किए गए कुएं के माध्यम से पुर्नःभरण फिल्टर से गुजारा जाता है, यह पुर्नःभरण फिल्टर ईंट चिनाई कोष्ठ में खुरदरी रेत, बारीक बजरी, और पत्थर की परतों से बना होता है। इस पुर्नःभरण संरचना को किसी भी निचले स्थान अथवा जलभराव सतह पर स्थापित कर सकते हैं। किसान इस पुर्नःभरण फिल्टर की सफाई आसानी से कर सकते हैं जो इसकी सफलता की संभावना को बढ़ाता है। इस तकनीक की गुणवत्ता और कार्य प्रभाव के आधार पर भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान को वर्ष 2011 में जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा भूजल संवर्धन पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

लवण सहनशील प्रजातियों का विकास

संस्थान द्वारा विभिन्न फसलों की लवण सहिष्णु प्रजातियों का विकास और उनका व्यवसायीकरण भी बड़े स्तर पर किया गया है। संस्थान द्वारा विकसित फसल प्रजातियों की सुरक्षा हेतु पादप प्रजाति और कृषक अधिकार सरंक्षण अधिनियम 2001 के अंतर्गत

तालिका 1: संस्थान द्वारा विकसित लवण सहिष्णु फसल प्रजातियां एवं कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001 के अंतर्गत बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का संरक्षण

फसल	लवण सहनशील प्रजाति	पंजीकरण दाखिल करने की तिथि	आवेदन/पंजीकरण क्रमांक
धान	सीएसआर 13	आवेदन तिथि : 6 दिसम्बर 2007 पंजीकरण तिथि : 6 मार्च 2013	आवेदन संख्या : ई 48 ओएस 6707370 पंजीकरण संख्या : 41/2013
	सीएसआर 23	आवेदन तिथि : 01 जनवरी 2008 पंजीकरण तिथि : 11 अक्तूबर 2013	आवेदन संख्या : ई 5 ओएस 5085 पंजीकरण संख्या : 19/2013
	सीएसआर 27	आवेदन तिथि : 01 जनवरी 2008 पंजीकरण तिथि : 02 जुलाई 2012	आवेदन संख्या : ई 3 ओएस 3083 पंजीकरण संख्या : 60/2012
	सीएसआर 30	आवेदन तिथि : 10 फरवरी 2014 पंजीकरण तिथि : 09 फरवरी 2015	आवेदन संख्या : आरईजी/2014/335 पंजीकरण संख्या : 68/2015
	सीएसआर 36	आवेदन तिथि : 10 फरवरी 2014 पंजीकरण तिथि : 09 फरवरी 2015	आवेदन संख्या : आरईजी/2014/336 पंजीकरण संख्या : 67/2015
	सीएसआर 43	आवेदन तिथि : 25 जनवरी 2014	आवेदन संख्या : डीएल 33004/99
गेहूँ	केआरएल 210	आवेदन तिथि : 17 जनवारी 2011 पंजीकरण तिथिः 23 दिसम्बर 2014	आवेदन संख्या : एन 2 टी ए 21185 पंजीकरण संख्या : 816/2014
	केआरएल 213	आवेदन तिथि : 17 जनवारी 2011 पंजीकरण तिथि : 15 अक्तूबर 2014	आवेदन संख्या : एन 1 टए 11184 पंजीकरण संख्या : 654/2014
	केआरएल 19	आवेदन तिथि : 07 नवम्बर 2007 पंजीकरण तिथि : 20 जुलाई 2009	आवेदन संख्या : ई 32 टीए 3507277 पंजीकरण संख्या : 94/2009
सरसों	सीएस 56	आवेदन तिथि : 19 नवम्बर 2012 पंजीकरण तिथि : 20 नवम्बर 2013	आवेदन संख्या : ई 15 बीजे 1612642 पंजीकरण संख्या : 245/2013
	सीएस 54	आवेदन तिथि : 19 नवम्बर 2012 पंजीकरण तिथि : 26 मई 2014	आवेदन संख्या : आरईजी/2012/641 पंजीकरण संख्या : 203/2014

तालिका 2: संस्थान की विभिन्न प्रौद्योगिकियों का व्यवसायीकरण

प्रौद्योगिकी का नाम	सहमति पत्र/लाइसेंस/कंसल्टेंसी
महाराष्ट्र की भारी मृदाओं के लिए उपसत्ही जलनिकास प्रणाली	रेक्स–पॉली ऐक्सट्रशन प्राइवेट लिमिटेड, सांगली, महाराष्ट्र
ऐनिलिन–टीडीआई प्लांट के जीएनएफसी यूनिट–11 से उपचारित प्रवाह का वर्टिसोल मृदाओं में विविध फसलों में उपयोग की व्यवहारिकता पर अध्ययन	गुजरात नर्मदा वैली फर्टिलाइजर कंपनी लिमिटेड, नर्मदा नगर, भरूच, गुजरात
क्षारीय और सामान्य मृदा में फसलों का जैव विकास बढ़ाने हेतु, सीएसआर बायो की उत्पादन प्रौद्योगिकी	मैसर्स जयविसन्स एग्रीटेक, गाजियाबाद, उ.प्र. मैसर्स कृषि केयर बायोइनपुट, त्रिची, तमिलनाडु मैसर्स एल्विन इंडस्ट्रीज, भोपाल, मध्य प्रदेश

जिप्सम प्रयोग द्वारा क्षारीय भूमि का सुधार

ऑगर होल तकनीक

उपसतही जलनिकासं

बासमती धान प्रजाति सीएसआर 30

धान की लवण सहिष्णु किस्मों सीएसआर 43, सीएसआर 36, बासमतीःसीएसआर 30, सीएसआर 27, सीएसआर 23 और सीएसआर 13, गेहूँ की लवण सहिष्णु किस्मों केआरएल 213, केआरएल 210 और केआरएल 19 एवं सरसों की लवण सहिष्णु किस्मों सीएस 56 और सीएस 54 का पंजीकरण किया गया है (तालिका 1)। वर्तमान में इन लवण सहिष्णु प्रजातियों की खेती लगभग 16 लाख हैक्टर क्षेत्र की लवण प्रभावित एवं सुधारी गई लवणीय/क्षारीय मृदाओं में की जा रही है। कम उत्पादक भूमियों में इन प्रजातियों का व्यवसायीकरण राष्ट्रीय खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। वर्ष 2014–15 में इन किस्मों का कुल प्रजनक बीज उत्पादन 89.45 कुण्टल हुआ तथा इनसे विभिन्न बीज निगमों (राज्य व केन्द्रीय) एवं बीज कंपनियों ने अनुमानित 20,448.47 टन सत्यापित बीज उत्पन्न किया

गेहूँ प्रजाति केआरएल 210

सरसों प्रजाति सीएस 54

संस्थान द्वारा लवण प्रभावित मृदाओं के सतत् प्रयोग हेतु विकसित प्रौद्योगिकियाँ

(धान–1:80, गेहूँ–1:20, सरसों–1:100 के गुणन अनुपात में) और जिनका एमएसपी 2014–15 के आधार पर अनुमानित मूल्य 2157.30 करोड़ रूपए है। वर्ष 2014–15 में संस्थान की बौद्धिक संपदा के वाणिज्यीकरण से कुल 1.84 करोड़ रूपए का राजस्व प्राप्त हुआ है।

सूक्ष्मजीव आधारित प्रौद्योगिकी: सीएसआर–बायो

सामान्य एवं क्षारीय दशाओं में पादप वृद्धि एवं उपज बढ़ोत्तरी हेतु सूक्ष्मजीव आधारित प्रौद्योगिकी सीएसआर–बायो का विकास किया गया है और इसके बौद्धिक संपदा अधिकार संरक्षण हेतु पेटेंट भी दायर किया गया है। ये प्रौद्योगिकी अब तक देश के सात राज्यों के 10800 हैक्टर क्षेत्र को लाभान्वित कर चुकी है और फसल उपज में औसतन 19.75 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है। सीएसआर–बायो के व्यवसायीकरण के लिए सहमति ज्ञापन (एमओयू) के माध्यम से मैसर्स कृषि केयर बायोइनपुट, तिरूचिरापल्ली (तमिलनाडु); मैसर्स जयविसन्स एग्रीटेक, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) और मैसर्स आलविन इंडस्ट्रीज, भोपाल (मध्य प्रदेश) के साथ सार्वजनिक–निजी भागीदारी की गई है (तालिका 2)।

निष्कर्ष

उपरोक्त तकनीकियाँ कृषि विकास में परोक्ष रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित तकनीकियाँ प्रयोग हेतु सार्वजनिक क्षेत्र में उपलब्ध है और इन्हें किसानों, सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों द्वारा अपनाया जा रहा है। ये प्रौद्योगिकियाँ ग्रामीण भारत के संसाधनहीन किसानों की खाद्य सुरक्षा एवं सामाजिक–आर्थिक प्रगति हेतु वरदान सिद्ध हुई है। बौद्धिक सम्पदा का अधिकार दूसरे व्यवसायों में प्रायः नहीं देखा जाता है। इन कृषि तकनीकियों को सार्वजनिक क्षेत्र में प्रयोग हेतु रखने का मुख्य उद्देश्य है कि इनका प्रयोग कर अधिक से अधिक किसान लाभान्वित हो सकें ताकि उनकी सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति सुनिश्चित हो सकें। यद्यपि लवण सहिष्णु फसल प्रजातियों को अर्धसामूहिक तथा संस्थानिक बौद्धिक सम्पदा अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत रखा गया है, परंतु इसका उद्देश्य भी कृषकों को प्रत्यक्ष लाभ पहुँचाना ही है। साथ ही, कृषक से कृषक प्रसार विधियों द्वारा इन प्रजातियों को अधिक से अधिक क्षेत्र में फैलाने का उद्देश्य भी है। कृषक इन प्रजातियों का उत्पादन कर सकते हैं व बिना लेबल दिये बीज उत्पादन कर एक दूसरे के साथ अनौपचारिक तौर पर वितरण कर सकते हैं।

समाप्त

भूजल में फ्लोराईड : जोखिम व उपचार

सुनील कुमार झा, विनय कुमार मिश्रा, दिनेश कुमार शर्मा एवं टी. दामोदरन

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

पृथ्वी पर मानव जाति के निर्वाहन के लिये जल एक अनिवार्य एवं प्रकृति प्रदत्त मुफ्त संसाधन है। मानव जाति हमेशा से ही न केवल पीने के प्रयोजनों बल्कि विभिन्न कृषि, औद्योगिक व मनोरंजन हेतु भी जल पर निर्भर रही है। भूजल वैश्विक मीठे जल का 97 प्रतिशत भाग माना जाता है और कई क्षेत्रों में यह पीने के लिए सबसे बड़ी आपूर्ति भी है। औद्योगिकीकरण और आधुनिक कृषि का भूजल गुणवत्ता व उपलब्धता पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। भूजल प्रदूषणों में फ्लोराईड प्रदूषण एक गंभीर समस्या के रूप में उभर कर आई है जिसका मानव स्वास्थ्य पर दीर्घकालिन प्रभाव पड़ सकता है।

यद्यपि फ्लोराईड मानव जीवन के लिये आवश्यक तत्वों में से एक है जैसे यदि पानी में इसकी मात्रा 0.5 मि.ग्रा./लीटर तक लिया जाय तो विशेषकर बच्चों में दंतक्षय, दंतवल्क एवं हड्डियों में खनिज की कमी की रोकथाम करता है परन्तु 1.0 मि.ग्रा./लीटर से अधिक सेवन से दंत कैल्शियम की हानि, कैविटी बनना और दंत फ्लोरोसिस जैसी बीमारियाँ हो सकती है। यह दर्शाता है कि फ्लोराईड से लाभकारी व नकारात्मक प्रभाव के बीच अपेक्षाकृत बहुत ही संकीर्ण अंतर है। नतीजन दंत फ्लोरोसिस का खतरा दंत क्षय की अपेक्षा अधिक तेजी से होता है। अगर 3.0 मि.ग्रा./लीटर फ्लोराईडयुक्त जल का सेवन 8–10 वर्ष तक किया जाय तो कंकालीय फ्लोरोसिस की संभावना बढ़ जाती है। साधारणतया दंत फ्लोरोसिस के लक्षण 12 वर्ष की उम्र के बच्चों में देखे गये हैं। भारतवर्ष में भूजल में उच्च फ्लोराईड की मात्रा एक महत्वपूर्ण भू–पर्यावरणीय तथा विषाक्तता का मुद्दा बन गया है। देश में भूजल में फ्लोराईड प्रदूषण और उससे होने वाली बीमारियां तेजी से फैल रही है परन्तु अभी तक जोखिम प्रभावित आबादी की संख्या का सही–सही आंकलन नहीं हो सका है। फ्लोराईड प्रभावित क्षेत्रों का समुचित सर्वेक्षण और चित्रण का अभाव इसके प्रमुख कारण है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2005 से 2015 तक की अवधि को जीवन के लिये पानी का दशक मनाने हेतु घोषणा की फिर भी लाखों लोगों के लिये पीने लायक साफ पानी उपलब्ध नहीं है। अतः फ्लोरोसिस से प्रभावित क्षेत्रों व लोगों के कष्टों को दूर करने के लिये उपाय ढूंढना जरूरी है। इस लेख का मुख्य उद्देश्य पाठकों को भूजल में फ्लोराईड प्रदूषण, इसका भू–रसायन तथा मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव से अवलोकन कराना एवं शोधकर्ताओं व नीति निर्माताओं को फ्लोराईड विषाक्तता की समस्या से निपटने हेतु एक व्यवहारिक रणनीति तैयार करने के लिए प्रेरित करना है।

फ्लोराईड व इसकी भू–रासायनिक क्रिया

फ्लोरीन एक हल्के पीले रंग की द्विपरमाणुक गैस है जो बहुत ही प्रतिक्रियाशील है और प्रकृति में कभी भी स्वतंत्र रूप में नहीं पायी जाती है बल्कि हमेशा संयुक्त रूप में ही उपस्थित होती है। फ्लोरीन का अति प्रतिक्रियाशील होना इसके उच्च वैद्युतीय ऋणात्मकता (इलेक्ट्रोनिगेटिविटी) के कारण है। नतीजन यह वातावरण में कभी नष्ट नहीं किया जा सकता है लेकिन इसके रूप में परिवर्तन होता रहता है। महाद्वीपीय परत में इसकी सांद्रता 626 माईक्रोग्राम/ग्राम पाई जाती है। भूजल में फ्लोराईड का पाना मुख्यतः स्थानीय, क्षेत्रीय व भूवैज्ञानिक कारणों पर निर्भर करता है। भूजल में इस रसायनिक प्रदूषण का मुख्य स्रोत फ्लोराईडयुक्त चट्टान, मिट्टी एवं अवसाद है। महत्वपूर्ण फ्लोराईडयुक्त खनिज में फ्लोराईड की मात्रा का विवरण तालिका 1 में दिया गया है। इसके अलावा अन्य फ्लोराईडयुक्त खनिजों में से मुख्यतः बायोटाइट, मस्कोवाइट, लेपीडोलाइट, टारमेलिन, हार्नब्लेंड श्रृंखला वाले खनिज होते हैं।

तालिका 1: फ्लोराईड युक्त खनिज व फ्लोरीन की मात्रा का प्रतिशत

खनिज	सेलाइट	विलियमाईट	फ्लोराईट	क्रायोलाईट	बास्टनेसाईट	फ्लोराएपेटाईट
फ्लोरीन प्रतिशत	61	55	49	45	9	3.4

416 फ्लोराईड युक्त खनिजों में से केवल पुखराज, फ्लोराईड, विलियोनाईट, और क्रायोलाईट में ही फ्लोरीन इनके सूत्र में एक आवश्यक घटक के रूप में उपलब्ध होता है। शेष फ्लोराईडयुक्त खनिजों में फ्लोराईड की उपस्थिति हाइड्राक्साईड आयन के प्रतिस्थापन रूप में होता है। यह इसलिये संभव है क्योंकि फ्लोराईड की आयनिक त्रिज्या हाइड्राक्साईड आयन के बराबर है। फ्लोराईड की आयनिक त्रिज्या 133 पीकोमीटर है जबकि हाइड्राक्साईड की 140 पीकोमीटर होती है। भूजल में फ्लोराईड प्रदूषण का कारण खनिजों का अपक्षय (निक्षालन) प्रक्रिया व मृदा द्वारा भूजल तक पहुँचना है। भूजल में फ्लोराईड नियंत्रण के प्रमुख कारकों में से तापमान, पीएच मान, फ्लोराईड खनिजों की घुलनशीलता, आयन विनिमय क्षमता भूवैज्ञानिक संरचना व जल का स्रोत एवं खनिज के साथ संपर्क अवधि है।

भूजल में फ्लोराइड की मात्रा फ्लोराईड खनिज की घुलनशीलता पर निर्भर होती है तथा इसकी उच्च सांद्रता कैल्शियम की कमी वाले भूजल स्रोतों में पायी गयी है। जो भूजल कैलासाईट व फ्लोराईड में संतृप्त होते हैं उनमें कैल्शियम कार्बोनेट समृद्ध खनिज फ्लोराईड के विघटन या पृथककरण में सहायता करते हैं।

यदि भूजल का पीएच मान समान रहता है तो बाइकार्बोनेट की सांद्रता बढ़ने या घटने पर फ्लोराईड की मात्रा में परस्पर वृद्धि या कमी होती है। ऐसा भी देखा गया है कि पीएच मान या क्षारीयता की वृद्धि से कैल्शियम फ्लोराईड की घुलनशीलता में वृद्धि के साथ ही कैल्शियम कार्बोनेट भी बनता है। शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु परिस्थितियाँ रसायनिक अपक्षय के लिए अनुकूल होती हैं जिससे लवण के साथ–साथ भूजल में फ्लोराईड की भी प्रचुरता हो जाती है। शुष्क जलवायु वाले क्षेत्र ही कम वर्शा, ज्यादा वाष्पीकरण तथा कम प्राकृतिक जल पुर्नःभरण से भूजल में लवणता और कैल्शियम कार्बोनेट का बनना स्वाभाविक है। जिस कारण मृदा में क्षारीयता बढ़ जाती है जो कैल्साईट की घुलनशीलता को प्रभावित करती है। ये स्थितियाँ कैल्शियम की गतिविधियों को कम करके सोडियम व कैल्शियम के अनुपात को बढ़ा देती है जिससे भूजल में फ्लोराईड की वृद्धि हो जाती है। सामान्य तापमान व दवाब की स्थिति में फ्लोरीनयुक्त खनिज जल में घुलनशील होते हैं मगर अम्लीय स्थितियों में चिकनी मिट्टी में फ्लोराईड का अधिशोषण होता है जबकि क्षारीय स्थिति में इनका बह्यिगमन होता है।

प्रकृति में आयनिक फ्लोराईड

घौल में सामान्य पीएच मान पर फ्लोराईड मुख्यतः आयन रूप में ही पाया जाता है परन्तु जैसे ही पीएच मान 5.5 से घटता है फ्लोराईड आयन का अनुपात घटने लगता है और हाईड्रोजन फ्लोराईड के अनुपात में वृद्धि होने लगती है। हालांकि अगर घोल में पर्याप्त एल्यूमिनियम मौजूद है तो एल्यूमिनियम फ्लोराईड काम्पलेक्स का प्रभुत्व पीएच मान 5.5 के नीचे होने लगता है। साधारणतः एल्यूमिनियम की विलेयता पीएच मान 5.2 और पीएच मान 8.8 के बीच कम होती है जबकि उच्च पीएच मान पर एल्यूमिनियम हाईड्रोक्सेट आयन के रूप में घुल जाता है। उदासीन और क्षारीय पीएच के बीच फ्लोराईड मुख्यतः मुक्त फ्लोराईड आयन के रूप में उपलब्ध होता है और पीएच 5.5 से कम पर यह एल्यूमिनियम के साथ काम्पलेक्स बना लेता है।

भूजल में फ्लोराइड प्रदुषण

वैश्विक परिदृश्य

अनुमानों के आधार से यह कहा जा सकता है कि 25 देशों में करीब 200 मिलियन लोग भूजल में फ्लोराईड की अधिकता से प्रभावित है। इन देशों में अर्जेंटीना, संयुक्त राज्य अमेरिका, मोरक्को, अल्जीरिया, लीबिया, मिश्र, जॉर्डन, तुर्की, ईरान, ईराक, केन्या, तंजानिया, दक्षिण अफ्रीका, चीन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जापान, थाईलैण्ड, कनाडा, सऊदी अरब, अरब की खाड़ी, श्रीलंका, सीरिया और भारत है। श्रीलंका, चीन और भारत के कई हिस्से फ्लोराईड की विषाक्तता से प्रभावित है। श्रीलंका के भूजल में फ्लोराईड की मात्रा 10 मि.ग्रा./लीटर तक पाई गई है। विशेष रूप से शुष्क क्षेत्र जिसके कारण दंत व कंकाल फ्लोरोसिस की घटना आम बात है। आर्द्र क्षेत्र में फ्लोराईड की कम मात्रा का कारण गहन वर्षा और फ्लोराईडयुक्त क्रिस्टलीय चट्टानों से फ्लोराईड का लम्बी अवधि तक रिसाव है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की विश्व स्वास्थ्य संगठन संबंधी तकनीकी रिर्पोट के अनुसार भूमध्य रेखा के 10^{0} से 30^{0} उत्तर व दक्षिण अंक्षाशों के बीच स्थित देश जहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय व अर्द्धशुष्क है वहाँ कमजोर आर्थिक स्थिति व कुपोषण के शिकार लोग फ्लोरोसिस से पीड़ित हैं।

तालिका 2: भारत में राज्यों के फ्लोराईड प्रभावित जिले व सांद्रता

राज्य	जिले	सांद्रता की सीमा (मि.ग्रा./ली)
असम	कार्बी, कार्बीएग्लौग, नागाँव	0.2–18.1
आन्ध्र प्रदेश	अदिलाबाद, निजामाबाद, पश्चिम गोदावरी, विशाखापट्टनम, विजयानगरम, श्रीकाकुलम के अलावा सभी जिले	0.11–20.0
बिहार	पलामू, डालटनगंज, गिरीडीह, गया, रोहतास, गोपालगंज, पश्चिम चम्पारन	0.6–8.0
दिल्ली	कंझावला, नजफगढ़, अलीपुर	0.4–10.0
गुजरात	सभी जिले सिवाय डाँग	1.58–31.0
हरियाणा	रेवाडी, फरीदाबाद, करनाल, सोनीपत, जींद, गुड़गाँव, महेन्द्रगढ, रोहतक, कुरूक्षेत्र, कैथल, भिवानी, सिरसा	0.17–24.7
जम्मू कश्मीर	डोडा	0.05–421
कर्नाटक	धारवाड़, गडग, बैल्लारी, बेलगाँव, रामपुर, बीजापुर, गुलबर्ग, चित्रदुर्ग, टुमकुर, चिकमंगलूर, बंगलुरू, मैसुर	0.2–18.0
केरल	पालाघाट, ऐलेपी, वमानापुरम, अलापुजा	0.2–2.5
महाराष्ट्र	चन्द्रपुर, भंडारा, नागपुर, जलगाँव, बुलडुना, अमरावती, अकोला, यवतमाल, नांदेड, सोलापुर	0.11–10.2
मध्य प्रदेश	शिवपुरी, झाबुआ, मंडला, दिनदोरी, छिंदवाड़ा, धार, विदिशा, सीवनी, सिहोर, रायसेन और भोपाल	0.08–4.2
उड़ीसा	फूलबनी, कोरापुट, ढेकानल	0.6–5.7
पंजाब	मानसा, फरीदकोट, बठिंडा, मुक्तसर, मोगा, संगरूर, फिरोजपुर, लुधियाना, अमृतसर, पटियाला, रोपड़, जालंधर, फतेहगढ़ साहिब	0.44–6.0
राजस्थान	सभी 32 जिले	0.2–37.0
तमिलनाडु	सेलम, पेरियार, धर्मपुरी, कोयंबटुर, तिरूचिरापल्ली, वैल्लोर, मदुरई, बिरूदुनगर	1.5–5.0
उत्तर प्रदेश	उन्नाव, आगरा, मेरठ, मथुरा, अलीगढ़, रायबरेली, इलाहाबाद	0.12–8.9
पश्चिम बंगाल	बीरभूम, वर्धमान, बांकुरा	1.5–13.0

भारतीय परिदृश्य

पृथ्वी पर 85 मिलियन टन फ्लोराईड में से करीब 12 मिलियन टन भारतवर्ष में पाया जाता है । भारत में स्थानिक फ्लोरोसिस रोग का पहला मामला 19वीं सदी के छठवें दशक में आन्ध्र प्रदेश के प्रकाशम जिले में उजागर हुआ जब सिर्फ आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पंजाब और उत्तर प्रदेश इससे प्रभावित थे। 1960–1986 के दौरान 9 और राज्य फ्लोरोसिस की चपेट में आ गए और 1991 तक भारत के 32 राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों में से 13 के जल में फ्लोराईड की अधिक मात्रा पाई जाने लगी। वर्ष 1995 तक यह संख्या बढ़कर 17 हो गई, और वर्तमान में 20 राज्य स्थानिक फ्लोरोसिस से ग्रसित हैं। सबसे ज्यादा प्रभावित राज्यों में से आन्ध्र प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि फ्लोराईड प्रदूषित पानी पीने से करीब 6.2 करोड़ लोग दंत, कंकाल व गैर कंकाल फ्लोरोसिस के शिकार हो चुके हैं।

भारतवर्ष के भूजल में फ्लोराईड की मात्रा 0.12 से 24.17 मि.ग्रा./लीटर तक पाई जाती है जबकि कुछ इलाके जैसे हरियाणा के रेवाड़ी जिले में 48 मि.ग्रा./लीटर तक भी रिपोर्ट किया गया है।

तालिका 3: संयुक्त राज्य अमेरिका में पेयजल में फ्लोराईड की स्वीकार्य सीमा

हवा के अधिकतम दैनिक तापमान का वार्षिक औसत (डिग्री सेल्सियस)	पेयजल में फ्लोराईड की अनुशंसित मात्रा (मि.ग्रा./लीटर)			फ्लोराईड की अधिकतम स्वीकार्य मात्रा (मि.ग्रा./लीटर)
	न्यूनतम	अनुकूल	अधिकतम	
10–12	0.9	1.2	1.7	2.4
12.1–14.6	0.8	1.1	1.5	2.2
14.7–17.7	0.8	1.0	1.3	2.0
17.8–21.4	0.7	0.9	1.2	1.8
21.5–26.2	0.7	0.8	1.0	1.6
26.3–32.5	0.6	0.7	0.8	1.4

तालिका 4: भारत के विभिन्न आयु वर्गों में फ्लोराईड जोखिम मात्रा का विवरण

आयु वर्ग	जल का प्रकार	स्थान	जोखिम मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार/दिन)
शिशु: 6 कि.ग्रा. बच्चे: 20 कि.ग्रा. वयस्क: 70 कि.ग्रा.	ग्रामीण पेयजल	उडीसा के 13 जिलों से जल के नमूने	0.2–1.41 0.457–6.0 0.174–2.28
शिशु: 6 कि.ग्रा.	कुआं		0.35–3.26
	उथला हैण्ड पम्प		0.36–4.63
बच्चे : 20 कि.ग्रा.	कुआं	उन्नाव (उ.प्र.) जिले के मकूर ग्राम पंचायत के उथले हैण्डपम्प व कुओं का जल नमूना	0.157–11.47
	उथला हैण्ड पम्प		0.162–2.08
व्यस्क: 70 कि.ग्रा.	कुआं		0.09–0.839
	उथला हैण्ड पम्प		0.092–1.19
शिशु: 6 कि.ग्रा. बच्चे: 20 कि.ग्रा. वयस्क: 70 कि.ग्रा.	गांव का पेयजल	तमिलनाडू का डिन्डीगुल जिला	0.13–0.19 0.12–0.17 0.07–0.10

भारतवर्ष में भूजल फ्लोराईड प्रदूषण का विवरण तालिका 2 में दर्शाया गया है।

पेयजल में फ्लोराईड जोखिम

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पेयजल में फ्लोराईड़ की अधिकत्तम स्वीकार्य सीमा 1.5 मिलीग्राम/लीटर है जबकि भारतीय मानक ब्यूरो (1992) के अनुसार वांछनीय सीमा 1.0 मिलीग्राम है। एक रिपोर्ट के अनुसार मानव में फ्लोराईड विषाक्तता जोखिम अवधि की गंभीरता पेयजल में फ्लोराईड की मात्रा तथा जोखिम अवधि पर निर्भर करता है। फ्लोराईड संबंधित समस्याएं जलवायु के साथ बारीकी से जुड़ी होती हैं। उष्ण कटिबंधीय देशों में गर्म जलवायु होने के कारण जल का सेवन शीतोष्ण कटिबंध देशों की तुलना में आमतौर पर अधिक होता है। इसलिए शरीर में फ्लोराईड के अधिक संचय से स्वास्थ्य पर खतरा बढ़ जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा विभाग ने विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के आधार पर फ्लोराईड के लिए स्वीकार्य सीमा हवा के तापमान के आधार पर निर्धारित की है जो तालिका 3 में दिये अनुसार है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के सुझाव अनुसार गर्म जलवायु क्षेत्रों में पेयजल में फ्लोराईड की इष्टतम मात्रा 1.0 मि.ग्रा./लीटर से

कम तथा ठंडी जलवायु वाले प्रदेशों में 1.2 मि.ग्रा./लीटर तक होनी चाहिये। फ्लोराईड दूषित पेयजल को ही दैनिक फ्लोराईड सेवन का अकेला सबसे बड़ा कारक माना जाता है। जबकि सही अर्थों में विषाक्तता प्रभाव की मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार प्रतिदिन) जोखिम अवधि तथा अन्य कारक जैसे उम्र, आहार सेवन आदि पर भी निर्भर करता है। उदाहरणतः एक वयस्क के लिये 5 से 10 ग्राम (32–64 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार) के बीच सोडियम फ्लोराईड घातक रहता है जबकि 5 मि.ग्रा. फ्लोराईड/कि.ग्रा. शरीर भार स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। शीतोष्ण जलवायु प्रदेशों में जहाँ पेयजल में फ्लोराईड नहीं मिलाया जाता वहाँ कुल दैनिक फ्लोराईड जोखिम 0.6 मि.ग्रा./वयस्क/दिन तथा फ्लोराईड युक्त प्रदेशों में यह 2 मि.ग्रा./वयस्क आंका गया है। इस तरह के कोई भी दिशा निर्देश उष्णकटिबंधीय देशों में नहीं है। भारतवर्ष में विभिन्न आयु वर्गों में फ्लोराईड से होने वाली जोखिम मात्रा का आंकलन तालिका 4 में दर्शाया गया है।

ये आँकड़ें विषाक्त तत्व एवं बीमारी पंजीयन एजेंसी (एटीएसडीआर) द्वारा निर्धारित न्यूनतम सुरक्षित जोखिम स्तर से ज्यादा पाये गए हैं जो शिशुओं के लिए 0.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार/दिन है जबकि अन्य आयु वर्गों के लिए 0.05 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार/दिन है। कभी–कभी पेयजल में 1.5 मि.ग्रा./लीटर फ्लोराईड की उपस्थिति से दंत फ्लोरोसिस के जोखिम की संभावना हो जाती है जबकि 10 मि.ग्रा./लीटर की उपस्थिति गंभीर रूप से कंकाल फ्लोरोसिस को जन्म दे सकती है। इसलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पेय जल में फ्लोराईड की मात्रा 1.5 मि.ग्रा./लीटर निर्धारित की है जिससे दंत फ्लोरोसिस के होने की संभावना बिल्कुल कम हो। किसी भी समुदाय में दंत फ्लोरोसिस होने के लक्षण वहाँ के पेयजल में अधिक फ्लोराईड की मात्रा को दर्शाता है। इस तरह यह एक सूचक के रूप में काम करता है। फ्लोराईड जोखिम इनकी जैव उपलब्धता पर निर्भर करता है। पेट में फ्लोराईड का अवशोषण वहाँ बनाई गई हाइड्रोजन फ्लोराईड की मात्रा पर निर्भर करता है। इसका अवशोषण हाइड्रोजन फ्लोराईड की सांद्रता तथा अनुपातिक रूप से पेट के पीएच मान पर निर्भर करता है। निगले हुए फ्लोराईड का लगभग 50 प्रतिशत अंश पेट में ही अवशोषित हो जाता है और शेष छोटी आँत में अवशोषित होता है। शिशु आहार में फ्लोराईड की जैव उपलब्धता लगभग 90 प्रतिशत होती है और फ्लोराईड सेवन अगर भोजन के साथ किया जाये तो इसकी जैव उपलब्धता कम हो जाती है। ऐसा शोध से पता चला है कि अगर सोडियम फ्लोराईड की गोलियाँ को सेवन खाली पेट किया जाये तो इसकी जैव उपलब्धता 100 प्रतिशत होती है मगर इसी को एक गिलास दूध में लिया जाये तो उपलब्धता घटकर 70 प्रतिशत हो जाती है। यदि कैल्शियम युक्त आहार के साथ लिया जाये तो जैव उपलब्धता घट कर 60 प्रतिशत तक हो सकती है। ऐसा भोजन जिसमें डायवैलेंट एवं ट्रायवैलेंट धनायन पर्याप्त मात्रा में हो, वह फ्लोराईड के अघुलनशील पदार्थ बनाकर इसके अवशोषण को कम करता है तथा मल के माध्यम से उत्सर्जित हो जाता है। युवा या मध्यम आयु वर्ग के वयस्कों में फ्लोराईड आंत तंत्र पथ से अवशोषित होकर करीब 50 प्रतिशत फ्लोराईड मूत्र के जरिये बाहर निकल जाता है। जो विभिन्न कारकों जैसे फ्लोराईड का सेवन मात्रा अम्ल व क्षार का संतुलन तथा मूत्र के पीएच मान पर निर्भर करता है ।

फ्लोराईड सेवन के दुष्प्रभाव

फ्लोराईड व हाइड्रोक्साईड आयनों की त्रिज्या में समानता के कारण वातावरण में दोनों आयनों के बीच विनिमय स्वाभाविक व स्पष्ट है। मानव दाँत व हड्डियाँ मुख्य रूप से हाइड्रोक्साईड ऐपेटाइट से बनी होती है। फ्लोराईड की मौजूदगी में फ्लोराईड आयन द्वारा हाइड्रोक्साईड आयन का प्रतिस्थापन होता है जिसके फलस्वरूप फ्लोराएपेटाइट बन जाता है। इसी कारण विभिन्न प्रकार के फ्लोरोसिस होते हैं। विभिन्न प्रकार के फ्लोरोसिस इस प्रकार हैः

दंत फ्लोरोसिस

दंत फ्लोरोसिस दाँत के उस हालात को दर्शाता है जब दाँत की सतह पर सफेद धब्बे या क्षैतिज धारियां बन जाती हैं ऐसी स्थिति को हल्के रूप का दंत फ्लोरोसिस कहा जाता है। जबकि मध्यम या गंभीर रूप में यही धब्बे भूरे या काले बनकर उसमें छिद्र भी बन जाता है और दाँत झड़ने लगते हैं। आमतौर पर इनेमल विकास के दौरान ही विकासशील दाँतों में खनिज का निर्माण प्रोटीन मैट्रिक्स के हानि के साथ होता है। दाँतों पर फ्लोराईड का हमला खनिज निर्माण की प्रक्रिया को बाधित करता है जिसके फलस्वरूप क्रिस्टलीय संरचना में परिवर्तन कर सरंध्रता को बढ़ा देता है। दंत फ्लोरोसिस के लक्षण 12 साल की उम्र के बच्चों में प्राय देखा गया है जो दाँत बनने की अवस्था मानी गई है। पूरे दाँत निकलने व उसके विकास होने पर फ्लोरोसिस की

मनुष्य में दंत फलोरोसिस

कंकालीय फ्लोरोसिस

मवेशियों में दंत फलोरोसिस

संभावना कम हो जाती है। दंत फ्लोरोसिस अब सिर्फ एक कोस्मेटिक समस्या नहीं रह गयी है बल्कि यह एक सामाजिक समस्या के रूप में भी उभर कर आई है। जो लोग गैर फ्लोराईड क्षेत्रों के होते हैं वहाँ के युवा फ्लोराईड क्षेत्रों के लोगों से शादी गठबंधन से भी डरते हैं।

कंकाल फ्लोरोसिस

कंकाल फ्लोरोसिस में हड्डी का द्रव्यमान व घनत्व बढ़ जाता है जो गंभीर विकृति का रूप ले लेता है। यह किसी भी आयु वर्ग को प्रभावित करता है। इसके लक्षण का पता तब चलता है जब मनुष्य जीर्ण अवस्था में पहुँच जाता है। फ्लोराईड मुख्यतः घुटने के जोड़ों, गर्दन तथा पेल्विक और कंधे की हड्डियों में जमा हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप चलने–फिरने व हिलने–डुलने में समस्या होती है। फ्लोराईड के लम्बे अंतराल तक सेवन से मस्तिष्क संबंधी तथा गंभीर विकृति वाली जटिलताएँ बढ़ जाती है। यह कुपोषण, अधिक शारीरिक श्रम और बिगड़े गुर्दों की स्थिति में जटिलता को और बढ़ा देता है। ऐसा देखा गया है कि महिलाओं की तुलना में फ्लोरोसिस का प्रभाव पुरूषों में ज्यादा होता है। फ्लोराईड का जमाव हड्डी की उम्र व प्रकार पर निर्भर करता है। युवा और जालीदार हड्डी पुराने या कार्टिकल हड्डी की अपेक्षा ज्यादा फ्लोराईड के लिये ग्रहणशील होते हैं। ऐसा माना गया है कि करीब 90 प्रतिशत शरीर का फ्लोराईड दाँतों व हड्डियों में पाया जाता है। अत्यधिक फ्लोराईड सेवन से दंत और कंकाल फ्लोरोसिस के अलावा विभिन्न प्रकार के गैर कंकाल फ्लोरोसिस होने की संभावना भी बढ़ जाती है। इनमें स्नायु तंत्र, माँसपेशियों संबंधी, एलर्जी व पेट व आँत की समस्याएं, सिरदर्द, कम उम्र में दाँत हानि, कम हीमोग्लोबीन, शारीरिक प्रतिरक्षा में कमी, गर्भपात तथा बुद्धि के स्तर में कमी आदि लक्षण पाये जाते हैं। फ्लोराईड के अधिक जोखिम से थाइराईड उत्तेजक हारमोन और हाइपोथाइराइडिनम की भी वृद्धि होती है। यहाँ तक कि जन्म दर में कमी का कारण भी अधिक फ्लोराईड का सेवन माना गया है। पेयजल द्वारा फ्लोराईड के सेवन से होने वाले विभिन्न स्वास्थ्य प्रभाव तालिका 5 में दर्शाये गये है।

तालिका 5: मानव स्वास्थ्य पर फ्लोराईड का प्रभाव

फ्लोराईड की सांद्रता (मि.ग्रा./लीटर)	प्रभाव
0.5 से कम	दंत क्षय रोकने के लिये अनुकूल
0.5–1.5	मजबूत हड्डियों और दाँतों के विकास को बढ़ावा देता है
1.5–4.0	बच्चों में दंत फ्लोरोसिस को बढ़ावा देता है
4.0 से अधिक	दंत व कंकाल फ्लोरोसिस को बढ़ावा देता है
10 से अधिक	गंभीर कंकाल फ्लोरोसिस संभवतः कैंसर का होना

फ्लोराईड विषाक्तता का उपचार

फ्लोराईड प्रभावित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की समस्याओं को दूर करने के लिये विभिन्न संभव सुधारात्मक व रोकथाम उपायों को अपनाया जा सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वैकल्पिक जल स्रोतों के प्रावधानों का सुझाव दिया है जिसमें फ्लोराईड की मात्रा कम या सुरक्षित सीमा के अन्दर हो। अच्छी गुणवत्ता वाला पेयजल उपलब्ध कराने हेतु सतही जल का प्रयोग, वर्शा जल का संचयन और फ्लोराईड युक्त जल का अच्छे गुणवत्ता जल से सम्मिश्रण करना मुख्य विकल्प हो सकते हैं। वर्षा जल संचयन प्रणाली से न सिर्फ भूजल को रिचार्ज करने में मदद मिलती है बल्कि भूजल में फ्लोराईड की मात्रा को भी कम करके स्वीकार्य सीमा तक लाया जा सकता है। फ्लोराईड की विषाक्तता को पोषक आहार से भी कम किया जा सकता है। आहार में पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम की उपलब्धता फ्लोराईड के दुष्प्रभावों से

निपटने में मदद करता है। आहार में उपलब्ध कैल्शियम जल के फ्लोराईड के साथ प्रतिक्रिया कर अघुलनशील कैल्शियम–फ्लोराईड बना देता है तथा बड़े अणु होने के कारण यह मल द्वारा उत्सर्जित हो जाता है। विटामिन सी के सेवन से भी फ्लोराईड से उत्पन्न जोखिम को कम किया जा सकता है। उन क्षेत्रों में जहाँ वैकल्पिक पेयजल स्रोत संभव न हो वहाँ पानी से फ्लोराईड निकालना ही एकमात्र समाधान बच जाता है। जल से फ्लोराईड हटाने की विभिन्न तकनीकों में राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान, नागपुर द्वारा विकसित नालगोंडा तकनीक जो तलछट व जमावट के सिद्धांत पर आधारित है। अवशोषण पर आधारित (तलछटीय गठन) तरीके आयन एक्सचेंज तथा मेंबरेन सेपरेसन प्रौद्योगिकी पर आधारित रिवर्स ओस्मोसिस, प्रमुख है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई तकनीक एक जगह कुशलतापूर्वक काम कर रही है तो वह दूसरी जगह भी सुचारू रूप से काम करेगी। इसलिये तकनीक का चुनाव एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

नालगोंडा तकनीक

इसमें कोई शक नहीं है कि पेयजल से फ्लोराईड हटाने हेतु नालगोंडा तकनीक एक लागत प्रभावी और आसान तरीका है जिससे एल्यूमिनियम लवण (फिटकरी या एलम), चूना तथा कीटाणुनाशक के रूप में ब्लीचिंग पाउडर का इस्तेमाल होता है। इस तकनीक में तीव्र गति से मिश्रण, फ्लोकुलेशन, अवसादन, निस्पंदन और कीटणुशोधन शामिल है। चूना घने फ्लाक के बनने में सहायता करता है जो नीचे बैठ जाता है। एल्यूमिनियम लवण के हाइड्रोलाइसिस के लिये पानी की उपयुक्त क्षारीयता जरूरी होती है ताकि अवशिष्ट क्षारीयता 1–2 मिलीतुल्यांक/लीटर और पीएच मान 6.5–8.5 के बीच हो। यह सत्य है कि भारतवर्ष में राजीव गाँधी पेयजल मिशन के तहत इस तकनीक का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जा रहा है पर इस तकनीक की भी कुछ सीमाएं हैं। इस तकनीक के द्वारा जल से सिर्फ 18–33 प्रतिशत फ्लोराईड ही हटाया जा सकता है जबकि 67–82 प्रतिशत घुलनशील एल्युमिनियम फ्लोराईड काम्पलेक्स आयन के रूप में जल में ही रह जाता है जिसके परिणामस्वरूप पेयजल में एल्यूमिनियम की विषाक्तता बढ़ जाती है जो निर्धारित सीमा 0.2 मि.ग्रा./लीटर से ज्यादा तक हो सकती है। पेयजल में एल्यूमिनियम की अधिकता से अल्जाईमर रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। पेयजल से फ्लोराईड हटाने की इस तकनीक से उत्पन्न कीचड़ से निपटान भी एक पर्यावरणीय स्वास्थ्य समस्या है।

अवशोषण आधारित तकनीक

पेयजल से होने वाले फ्लोराईड विषाक्तता प्रभाव को कम करने के लिए शोधकर्ताओं ने विभिन्न सामग्रियों का प्रयोग किया है जो फ्लोराईड की मात्रा का अवशोषण करके पेयजल में इसकी मात्रा कम कर दें। इनमें सक्रिय एल्यूमिना (एल्यूमिनियम), सक्रिय कार्बन (कार्बन), नारियल के शेल से बना सक्रिय कार्बन, फ्लाई ऐश, चावल की भूसी, मैग्निशिया, हड्डियों से उत्पन्न कोयला, मूँगफली के छिलके आदि हैं। यहाँ तक कि नैनो संरचित हाइड्रोक्सीएपेटाईट पर भी अवशोषण करके दूषित जल में फ्लोराईड की मात्रा को कम करने में सफलता मिलती है। इसके अलावा मैग्नीशियम आक्साईट का इस्तेमाल भी एक अच्छे फ्लोराईड अवशोषक के रूप में किया जा चुका है। इसी प्रकार सक्रिय कार्बन व सक्रिय एल्यूमिना का इस्तेमाल ज्यादातर शोधकर्ताओं ने एक अच्छे अवशोषक के रूप में अनुमोदित किया है।

सक्रिय एल्यूमिना

घरेलू उपयोग में सक्रिय एल्यूमिना का उपयोग दूषित पेयजल से फ्लोराईड हटाने हेतु होता रहा है जो एक ऐसी छिद्रपूर्ण सामग्री है जिससे सक्रिय साईटस उपलब्ध होते हैं और जिन्हें एल्युमिनियम हाइड्रोक्साईड को 300–600 डिग्री सेल्सियस तक गर्म करके बनाया जाता है। सक्रिय एल्यूमिनियम द्वारा फ्लोराईड हटाने की प्रक्रिया पीएच मान पर निर्भर करती है। इसलिये घोल का पीएच मान 5.0–7.0 के बीच होना चाहिए क्योंकि पीएच मान 7 से ज्यादा होने पर सिलिकेट और एल्यूमिना के एक्सचेंज साईटस पर हाइड्रोक्साईड आयन फ्लोराईड आयन के प्रतिद्वंदी बन जाते हैं जबकि पीएच मान 5 से कम होने पर अम्लीय वातावरण के कारण सक्रिय एल्यूमिना के घुल जाने की आंशका बढ़ जाती है। हर 4–5 महीने पर इसका पुनःनिर्माण किया जाता है क्योंकि इसके फ्लोराईड हटाने की प्रभावशीलता कम हो जाती है।

सक्रिय कार्बन

फ्लोराईड अवशोषक के रूप में सक्रिय कार्बन का व्यापक तौर पर इस्तेमाल होता रहा है। धान की भूसी से बना वह कार्बन

जिसमें क्षार प्रतिक्रिया द्वारा फिटकरी को इसमें मिलाया जाता है। यह एक अच्छा फ्लोराईड अवशोषक माना जाता है। पोटेशियम हाइड्रोक्साईड (एक प्रतिशत) द्वारा प्रतिक्रिया किया हुआ व 2 प्रतिशत फिटकरी से भिगोया हुआ एक कि.ग्रा. कार्बन पीएच मान 7.0 पर 320 मिलीग्राम तक फ्लोराईड अवशोषण की क्षमता रखता है।

आयन एक्सचेंज

आयन एक्सचेंज द्वारा पेयजल से फ्लोराईड हटाने की प्रक्रिया में दूषित जल को आयन एक्सचेंज बेड के उपर से गुजारना पड़ता है। हाइड्रोक्सील चक्र या क्लोराईड चक्र द्वारा बेस एक्सचेंज रेजिन्स फ्लोराईड को हटाती है। पोलिस्टाइरीन आयन एक्सचेंज रेजिन्स और क्वाटरनरी (चतुर्धातु) अमोनियम प्रकार के रेजिन्स ही फ्लोराईड हटाने के काम आते हैं।

जब रेजिन्स के सभी सक्रिय साईट्स फ्लोराईड आयन द्वारा भर दिये जाते हैं तो इन रेजिन्स को नमक के घौल द्वारा पुर्नजीवित किया जाता है। पेयजल में फ्लोराईड हटाने की यह एक कारगर तकनीक है जो 90–95 प्रतिशत तक फ्लोराईड हटाने में सक्षम है। परन्तु रेजिन्स की उच्च लागत तथा रखरखाव के कारण व्यापक उपयोग में नहीं लाया जा रहा है।

रिवर्स ओस्मोसिस प्रक्रिया

रिवर्स ओस्मोसिस प्रौद्योगिकी झिल्ली निस्पंदन आधारित जल शोधन प्रणाली है जिससे निस्पंदन द्वारा फ्लोराईड हटाने के लिए एक विशिष्ट अर्द्धपारगम्य झिल्ली का प्रयोग किया जाता है। यह मूलरूप में एक भौतिक प्रक्रिया है जिससे फ्लोराईड को जल से हटाने हेतु झिल्ली पर पानी के दवाब का प्रयोग होता है। इस तकनीक द्वारा फ्लोराईड हटाने की दक्षता करीब 99 प्रतिशत से भी अधिक है। इस प्रक्रिया का दोष सिर्फ इतना है कि औसत आय वाले परिवारों तथा ग्रामीण आबादी वाले क्षेत्र में यह लागत प्रभावी नहीं है। इस तकनीक के संचालन में बिजली की आवश्यकता होती है जो भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में हमेशा उपलब्ध नहीं होती है।

निष्कर्ष

भूजल में फ्लोराईड की अधिक सांद्रता की समस्या अब सबसे महत्त्वपूर्ण विषाक्तता व भू–पर्यावरण का मुद्दा बन गया है। भूजल में फ्लोराईड की प्रचुरता का कारण चट्टानों व अवसादों में फ्लोराईड युक्त खनिज का होना है। अपक्षय एवं रिसने की प्रक्रिया ही फ्लोराईड की घटनाओं में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न कारकों जैसे तापमान, पीएच, फ्लोराईड युक्त खनिज की विलेयता, भूजल स्रोतों मे आयन एक्सचेंज की क्षमता, प्रकृति की भू–गर्भीय संरचना, संपर्क अवधि आदि भूजल में फ्लोराईड का रिसाव तय करते हैं। भूजल में अधिक फ्लोराईड सोडियम बाइकार्बोनेट प्रकार के जलों में पाया जाता है जिसमें कैल्शियम की कमी पायी जाती है। जल की क्षारीयता भी फ्लोराईड खनिज से फ्लोराईड के रिसाव में मदद करती है। फ्लोराईड के अपर्याप्त मात्रा में सेवन करने से दंत क्षय के लक्षण सामने आते हैं परन्तु अत्यधिक मात्रा के सेवन से फ्लोरोसिस बीमारी हो जाती है। मनुष्यों में फ्लोराईड जोखिम पेयजल में फ्लोराईड की मात्रा, पानी की खपत, शरीर के वजन तथा क्षेत्र की जलवायु पर निर्भर करता है। फ्लोराईड दूषित जल से फ्लोराईड हटाने के लिए विभिन्न सरल व लागत प्रभावी तकनीकें उपलब्ध हैं परन्तु अब समय है युद्ध स्तर पर एक रणनीति बनाने का जिससे फ्लोरोसिस के जोखिम को कम करते हुए फ्लोराईड मुक्त पेयजल लोगों को उपलब्ध कराया जाये।

समाप्त

जीवन का उत्तम उपयोग है इसे ऐसा कुछ करने में बिताना, जो इससे अधिक स्थायी हो।

लवणग्रस्त मृदाओं में कृषिवानिकी की सफलता के लिये महत्त्वपूर्ण क्रियायें

राकेश गर्ग एवं राजेन्द्र कुमार यादव

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

सदियों से वृक्षों का मनुष्य के सामाजिक व आर्थिक विकास में विशेष योगदान रहा है। इसका मुख्य कारण वृक्षों से मिलने वाले प्रत्यक्ष व परोक्ष लाभ है। वृक्ष न केवल हमें इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी, चारा, भोजन व अन्य उत्पाद देते हैं अपितु वातावरण को अनुकूल बनाने, बाढ़ रोकने, प्रदूषण कम करने, भूमि व पानी के संरक्षण आदि में भी विशेष योगदान देते हैं। मनुष्य के जीवन में इतनी उपयोगिता होने के बावजूद भी वृक्षों को न केवल भारतवर्ष में अपितु पूरे विश्व में तेजी से काटा जा रहा है। इसके फलस्वरूप वनों का क्षेत्रफल घटता जा रहा है। राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश के उत्पादों व वातावरण को स्वस्थ बनाये रखने के लिये देश का 33 प्रतिशत क्षेत्र वृक्षों से ढका होना जरूरी है। एक सर्वेक्षण के अनुसार देश के कुल क्षेत्रफल का केवल 24.01 प्रतिशत क्षेत्र वनों से ढका हुआ है जो निर्धारित क्षेत्रफल से काफी कम है। इसके परिणामस्वरूप भारत को दूसरों देशों (बर्मा, इंडोनेशिया, मलेशिया, अफ्रीका व दक्षिण अमेरिका) से लकड़ी का आयात करना पड़ता है। इसके अलावा पेपर मिल, माचिस, प्लाईवुड, पैकिंग डिब्बे आदि उद्योगों की कच्चे माल की जरूरतें पूरा करने के लिये लकड़ी की आवश्यकता भी बढ़ रही है। आज भारत में लकड़ी पर आधारित लगभग 2500 छोटे व बड़े कारखाने है पर कच्चे माल की उपलब्धता न होने के कारण ये कारखाने अपनी समर्थता से केवल आधे स्तर पर ही उत्पादन कर रहे हैं। देश में वनों का क्षेत्रफल बढ़ाने में कृषिवानिकी का महत्त्वपूर्ण योगदान है विशेषकर उन राज्यों में जहाँ अधिकतम क्षेत्रफल पर मुख्यतया कृषि की जाती है और वन लगाने के लिये जमीन नहीं है। इन राज्यों में एक स्थान पर एक ही समय में फसलों के साथ वृक्ष लगाने की प्रक्रिया जिसे कृषिवानिकी कहा जाता है, वन क्षेत्र बढ़ाने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो रही है। एक अनुमान के अनुसार भारत में जलाऊ लकड़ी की 72 प्रतिशत, प्लाईवुड का 70 से 80 प्रतिशत कागज बनाने के लिये गुदा की कच्चे माल का 60 से 80 प्रतिशत व हरे चारे की 9 से 11 प्रतिशत आवश्यकता की पूर्ति कृषिवानिकी द्वारा की जाती है। सरकारी व गैर सरकारी संगठन वनों का क्षेत्रफल बढ़ाने में काफी सक्रिय है। पर्यावरण व वन मंत्रालय के अनुमान के अनुसार पिछले 20 वर्षों में भारत में औसतन 251000 हैक्टर प्रतिवर्ष की गति से वन लगाये गये हैं तथा बाहरवीं पंचवर्षीय योजना में 1 करोड़ 60 लाख हैक्टर भूमि पर वृक्ष लगाने का लक्ष्य रखा गया है।

देश में लगभग 1750 लाख हैक्टर भूमि ऐसी है जो कृषि योग्य नहीं है। ऐसी भूमि पर कृषि करना या तो संभव नही है और अगर संभव है तो लाभदायक नहीं है। ऐसी भूमि पर कृषिवानिकी का विशेष महत्त्व है। कृषि फसलों की तुलना में वृक्षों की उगने व फलने–फूलने की समर्थता ज्यादा होने के कारण ऐसी भूमि पर वृक्ष लगाना न केवल संभव व लाभदायक है अपितु वृक्ष जमीन को उपजाऊ बनाने में भी सहायक होते हैं तथा कुछ वर्षों बाद कृषि करना भी संभव हो जाता है। बंजर भूमि पर वनीकरण देश में वनों का क्षेत्रफल बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

हमारे देश में 6.73 मिलियन हैक्टर क्षेत्र लवणता व क्षारीयता से प्रभावित है। वैज्ञानिकों द्वारा शोध से विकसित की गई विधियाँ अपनाकर, सहनशील वृक्ष प्रजातियाँ लगाकर, लवणीय व क्षारीय भूमि को भी वृक्षों की हरी चादर से ढका जा सकता है। वृक्षों की सही प्रजाति व उसकी नस्ल का सही चुनाव पौधे लगाने की सही विधि अपनाकर और कीड़े मकौड़ों व बीमारियों से बचाकर, हम वृक्षों से भी अच्छी पैदावार व आय प्राप्त कर सकते है।

वृक्षों की सही प्रजाति का चुनाव

लवणीय व क्षारीय भूमि में पौधारोपण की सफलता के लिये वृक्षों की सही प्रजाति का चुनाव बहुत जरूरी है। वृक्ष प्रजाति का चुनाव करते समय यह ध्यान में रखना अति आवश्यक है कि वृक्ष लवणता व क्षारीयता के प्रति सहनशील हो अर्थात इस तरह की भूमि में उचित बढ़वार की क्षमता रखता हो। वृक्ष बहु–उपयोगी यानि एक से अधिक लाभ (जैसे चारा, ईंधन के लिये लकड़ी, इमारती लकड़ी इत्यादि) देने वाला हो। गहरी जड़ वाले, नाइट्रोजन की मात्रा जमीन में बढ़ाने वाले और पत्ते झाड़ देने

तालिका 1: लवणीय, जलमग्न व क्षारीय मृदाओं हेतु अनुशंसित वृक्ष प्रजातियाँ

मृदा की वैद्युत चालकता (डेसीसीमन/मीटर)	वृक्ष प्रजातियाँ
18–25	पहाड़ी कीकर, पारकिनसोनिया, फराश
12–18	देशी कीकर, इजराइली कीकर, सुबबूल, केजुरिना
8–12	सफेदा, अर्जून, बोटल ब्रश
5–8	शीशम, करंज, आँवला
5 से कम	आस्ट्रेलियन कीकर, जामुन, खेर, इमली
क्षारीय मृदा का पीएच मान	जलाऊ/इमारती लकड़ी
10 से अधिक	पहाड़ी कीकर, देशी कीकर, केजुरिना
9–10	सफेदा, अर्जून, फराश, करंज, आँवला, ढैंचा, बेल, करौंदा, सीरस, अमरूद, बेर
8.2–9	शीशम, शहतुत, सिल्वर ऑक, नीम, सागवान, आम, जामुन, सैंजना, अनार, आड़ू, पोपलर

वाले वृक्ष अन्य वृक्षों की अपेक्षा कृषिवानिकी फसलों के साथ के लिये अधिक उपयोगी होते हैं। उत्तर भारत के समतल इलाके जैसे पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश आदि में किसान पोपलर, सफेदा, डेक आदि वृक्षों को लगाना पसंद करते हैं क्योंकि ये तेजी से बढ़ने वाले और मंडी में अच्छी आमदनी देने वाले वृक्ष है। क्षारीय व लवणीय भूमि में पौधारोपण के लिये केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल ने अनुसंधान के आधार पर कुछ वृक्ष प्रजातियों का चुनाव किया है जिन्हें निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

पौध की गुणवत्ता

खेत में लगाये गये पौधों का चलना व वृद्धि की दर पौध की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। अक्सर पौधे खरीदते समय पौध की गुणवत्ता पर ध्यान नहीं दिया जाता जिस कारण खेत में लगाने के बाद काफी पौधे मर जाते हैं या उनकी अच्छी वृद्धि नहीं होती है जिसका सीधा असर वृक्षों से होने वाली आय पर पड़ता है। पौध हमेशा अच्छी किस्म, सेहतमंद और बीमारी रहित होनी चाहिये। उत्तर भारत में आजकल सफेदा काफी संख्या में लगाया जा रहा है जैसे कि ऊपर तालिका में दर्शाया गया है सफेदा लवणग्रस्त भूमि में भी लगाया जा सकता है। किसानों को सलाह दी जाती है कि बीज से उगने वाली पौधे की जगह क्लोन विधि द्वारा तैयार पौधे ही खरीदें। इस तरह के पौधों की बढ़वार अधिक व एक समान होती है जिससे पौधों से आय अधिक होती है। इस तरह के पौधे आसानी से हरियाणा वन विभाग व गैर सरकारी पौधशालाओं से खरीदे जा सकते हैं।

पौधारोपण का समय

उत्तर भारत में पौधे लगाने का सही समय जुलाई–अगस्त है क्योंकि वर्षा ऋतु के आरंभ होने से पानी की उपलब्धता रहती है और इन महीनों में वातावरण के तापमान में भी कमी आ जाती है। जिससे पौधों के स्थापित होने के आसार बढ़ जाते है। जिन इलाकों में वर्षा ऋतु के दौरान लंबे समय तक पानी खड़े होने की संभावना रहती है वहाँ पौधे सितम्बर व अक्तूबर में लगाये जाने चाहिये।

पौधे लगाने की तकनीक

पौधे लगाने के लिये गड्ढे खोदने से पहले खेत को अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिये। खेत की अच्छी तरह जुताई करके, पुराने बचे पेड़ों की जड़ें, खरपतवार आदि निकाल कर समतल कर लेना चाहिये। यदि वर्षा के दौरान ज्यादा समय तक पानी खड़े होने की समस्या हो तो पानी के स्तर के अनुसार सही ऊंचाई की मेड़ों पर पौधे लगाने चाहिये। क्षारीय व लवणीय भूमि पर पौधे विशेष विधि द्वारा लगाये जाते हैं। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा विकसित की गई तकनीकों से न केवल पौधों के स्थापित होने में सहायता मिलती है अपितु पौधों

की बढ़वार भी ज्यादा होती है। क्षारीय भूमि में पौधे 120 से 150 सेंमी. गहरे और 20 से 30 सेंमी. व्यास के गड्ढों में लगाने चाहिए जोकि ट्रैक्टर चालित ऑगर द्वारा बनाये जाते हैं। इससे कंकर की परत टूट जाती है जिससे जड़ों का सही विकास होता है और पौधों की बढ़वार भी अच्छी होती है। इस तरह बनाये गये गड्ढों में पौधे लगाते समय 3 किलोग्राम जिप्सम, 8 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद व 10 से 20 किलोग्राम रेत को मूल मृदा में मिश्रित करके भर दिया जाता है। लवणीय भूमि में पौधे 60 सेंमी. चौड़ी व 20 सेंमी. गहरी नालियों में 15 सेंमी. गोलाई वाले गडढ़ों में लगाने चाहिए। इस विधि में न केवल सिंचाई का खर्चा कम होता है अपितु पौधों के जड़ क्षेत्रों में लवणों का जमाव कम करने में भी सहायता मिलती है जिससे पेड़ों की जीवित रहने की दर तथा वृद्धि में भी सुधार होता है।

पौधों की देखभाल

पौधे लगाने के बाद उनका जानवरों, कीड़े–मकौड़ों व बीमारियों से बचाव बहुत जरूरी है। जानवरों से बचाने के लिये काटों वाली तार अथवा कांटे वाले पौधे खेत के चारों तरफ लगा देने चाहिये। समय–समय पर जरूरत के अनुसार पौधों की कटाई–छंटाई, खरपतवार निकालना, निराई–गुडाई, खाद, पानी देने का काम करते रहना चाहिये। इससे पौधों को न केवल जीवित रखने में सहायता मिलती है अपितु पौधों की वृद्धि भी तेज होती है। सिंचाई का विशेष ध्यान रखना चाहिये क्योंकि कम व अधिक सिंचाई दोनों ही पौधों के लिए हानिकारक हो सकती है। पौधे लगाते ही पानी अवश्य देना चाहिये। इसके पश्चात् मौसम व मिट्टी में पानी की उपलब्धता के अनुसार सिंचाई करनी चाहिये। आमतौर पर ग्रीष्म ऋतु में 7 से 10 दिनों के अंतराल पर पौधों को पानी देना आवश्यक है। वर्षा ऋतु में पानी देने की आवश्यकता कम होती है परन्तु लंबे समय तक वर्षा न होने पर सिंचाई जरूर करनी चाहिये। वृक्षों की अच्छी बढ़वार के लिये टहनियों की कांट–छांट भी जरूरी है। सफेदे में कांट–छांट की कोई आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि इसकी टहनियां प्राकृतिक रूप से टूटकर गिर जाती है परन्तु कुछ टहनियां अधिक मोटी हो जाती है जो तने की वृद्धि में रूकावट डालती है, उन्हें काट देना चाहिये।

वृक्षों को कीड़े–मकोड़ों व बीमारियों से बचाना भी बहुत जरूरी है क्योंकि ये वृक्षों की लकड़ी की कीमत घटा सकती है तथा उनको समाप्त भी कर सकती है। वृक्ष तैयार होने के बाद अधिक से अधिक लाभ लेने के लिये बेचने से पहले खेत में खड़े वृक्षों की कीमत का अनुमान होना बहुत जरूरी है। किसान वृक्षों की कीमत जानने के लिये वन विभाग व कृषि विश्वविद्यालय के वानिकी विभाग से भी संपर्क कर सकते हैं। इस तरह लवणग्रस्त मृदाओं में जहाँ कृषि करना इतना लाभदायक नहीं होता वहाँ कृषिवानिकी किसानों के लिये अतिरिक्त आय का एक अच्छा विकल्प है। साथ ही पर्यावरण को शुद्ध व स्वच्छ रखने, वातावरण में कार्बन डाईआक्साईड की मात्रा को नियंत्रित करने व जलवायु परिवर्तन से होने वाली हानि को रोकने में भी सहायक होती है।

समाप्त

आज अपना सर्वश्रेश्ठ दीजिए। यही आने वाले कल की सबसे अच्छी तैयारी है।

जलवायु परिवर्तन के प्रति कृषकों की अवधारणा तथा अनुकूलन का उत्तर प्रदेश की क्षारीय कृषि पारिस्थितिकी में अध्ययन

रंजय कुमार सिंह, प्रवेन्द्र श्योराण, सत्येन्द्र कुमार, आर॰ राजू एवं दिनेश कुमार शर्मा

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

वर्तमान समय में कृषि की सबसे बड़ी चुनौती जलवायु परिवर्तन है। अंतःसरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल (आई.पी.सी.सी.) तथा दूसरी एजेंसियों के पूर्वानुमान के अनुसार आने वाले समय में जलवायु परिवर्तन तथा विभिन्नता दोनों का प्रारूप तीव्र होगा और इससे कृषि व दूसरे संबंधित व्यवसाय तथा इन पर निर्भर लोगों का जीविकोपार्जन प्रभावित होगा। जलवायु विभिन्नता का असर कृषि में जोखिम को और बढ़ा देता है यदि यह किसी विशेष स्थान, समुदाय, लिंग, उम्र, सामाजिक–आर्थिक तथा नीतिगत कारकों के सम्मिलित प्रभाव तथा अनुकूलन क्षमता से ज्यादा हो। ऐसा भी देखा गया है कि यदि पारिस्थितिकी तंत्र, सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था एवं संस्थागत कारकों का चक्रवृद्धि जोखिम जलवायु परिवर्तन के जोखिम के साथ सम्मिलित हो जाता है तो जलवायु विभिन्नता का जोखिम और बढ़ जाता है। कई वर्षों से भारतीय कृषि जलवायु विभिन्नता के प्रभाव से गुजर रही है तथा कृषकों की अनुकूलन क्षमता को प्रभावित कर रही है। ऐसी प्राकृतिक अनियमितताओं का असर कम गुणवत्ता वाले पानी तथा लवणीय एवं क्षारीय भूमि पर भी पड़ता है और पारिस्थितिकी तंत्र के जोखिम स्तर को और बढ़ा देता है। पूरे देश में कुल 6.73 मिलियन हैक्टर लवण तथा क्षार प्रभावित भूमि है। उत्तर प्रदेश में करीब 1.37 मिलियन हैक्टर कृषि जमीन क्षारीयता से प्रभावित है। इस राज्य के 84 प्रतिशत से अधिक किसान मध्यम एवं लघु श्रेणी के हैं। पिछले 30 वर्षों में जलवायु विभिन्नता के कारण कृषि तथा इससे जुड़ी गतिविधियों पर बुरा प्रभाव पड़ा है। हालांकि मौसम विभाग अपने जलवायु आँकड़े इकट्ठे करता है, तथा समयानुसार किसानों को परामर्श सेवायें जारी करता है, परंतु कृषकों की अपनी परिस्थितियों के कारण जलवायु के प्रति अवधारणा अलग है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए एवं निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रस्तुत शोध उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले में किया गया।

- क्षारीय पारिस्थितिकी के किसानों की जलवायु विभिन्नता के प्रति अवधारणा का पता लगाना।
- कृषकों के कृषि अनुकूलन व्यवहार को प्रभावित करने वाले जलवायु, सामाजिक–आर्थिक तथा संस्थागत कारकों का अध्ययन करना तथा
- औपचारिक तथा अनौपचारिक ज्ञान एवं तकनीकियों पर आधारित कृषि अनुकूलन वाली पद्धतियों का पता लगाना।

कृषकों की वस्तु स्थिति तथा अनुसंधान विधि

जिला रायबरेली अल्पार्द्र जलवायु के अन्तर्गत आता है। इस जिले की अधिकांश भूमि (0.05 लाख हैक्टर) क्षारीयता से प्रभावित है। इस जिले में वार्षिक वर्षा औसतन 923 मि.मी. होती है। जिले का अधिकतम औसत तापमान 44.2 डिग्री सेल्सियस तथा न्यूनतम 2.3 डिग्री सेल्सियस रहता है। किसान अधिकांशतः धान–गेहूँ, गन्ना तथा सब्जियों की खेती करते हैं। करीब 85 प्रतिशत किसान लघु तथा मध्यम श्रेणी के है जो खेती के अलावा पशुपालन, मजदूरी तथा दूसरे छोटे व्यवसाय से अपनी जीविका चलाते हैं। सिंचाई के साधनों तथा बिजली की कमी, शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव तथा गरीबी के कारण अधिकांश किसान ज्यादा जोखिम की श्रेणी में आते हैं।

नहरी इलाकों में रिसाव के कारण जमीन और खराब हो रही है। क्षारीयता प्रतिरोधी धान तथा गेहूँ की प्रजातियों के अभाव में कृषकों के खेतों पर गेहूँ एवं धान की पैदावार अधिकांशतः 1.5 से 2.15 टन तथा 1.0 से 2.05 टन प्रति हैक्टर ही होती है। देशी गाय, भैंस, जर्सी गाय, भेड़ बकरी तथा सुअर आदि कृषि प्रणाली के प्रमुख अवयव हैं। इस शोध कार्य के लिये 10 गाँव तथा इनके 80 कृषकों का रैण्डम विधि से चयन किया गया। आँकड़ों को समूह चर्चा, व्यक्तिगत साक्षात्कार तथा सहभागिता आधारित विधियों के द्वारा इकट्ठा किया गया। चयनित गाँवों से मिट्टी तथा पानी के नमूने भी लिए गए। जिससे क्षारीयता की गंभीरता

तालिका 1: जलवायु परिवर्तनशीलता के प्रति किसानों की अवधारणा

क्र. सं.	कृषकों से पूछे गये जलवायु आधारित प्रश्न	अवधारणा की स्थिति का स्तर लिकर्ट स्केल 1962				
		पूर्णतया सहमत	सहमत	कह नहीं सकते	असहमत	पूर्णतया असहमत
1.	शरद ऋतु की समयावधि नहीं घटी है। (न.वा.)	00.0	00.0	00.0	42.86	57.14
2.	शरद ऋतु के प्रारंभ का समय आगे हो गया है	35.71	64.28	00.0	00.0	00.0
3.	ग्रीष्मकालीन समयावधि नहीं बढ़ी है। (न.वा.)	00.0	00.0	00.0	42.86	57.14
4.	गीष्म काल शुरू होने का समय पहले हो गया है।	42.86	57.14	00.0	00.0	00.0
5.	वर्षा ऋतु की कुल समयावधि घट गयी है।	71.42	28.57	00.0	00.0	00.0
6.	वर्षा ऋतु के कुल दिनों की संख्या में कोई कमी नहीं हुई है। (न.वा.)	00.0	00.0	00.0	33.00	67.00
7.	सूखा पड़ने के घटनाक्रम में वृद्धि हुई है।	00.0	28.57	14.29	35.71	21.42
8.	बाढ़ आने के घटनाक्रम में कोई वृद्धि नहीं हुई है और यह पहले जैसा ही है।	00.0	14.29	21.42	42.86	21.42
9.	समय के साथ बाढ़ आने की स्थिति में वृद्धि हुई है।	00.0	7.14	14.29	42.86	35.71
10.	साधारणतः मौसम का पूर्वानुमान लगाना कठिन हो गया है।	7.14	14.29	7.14	28.57	42.86
11.	मौसम के साधारण घटनाक्रम में कोई बदलाव नहीं आया है (न.वा.)।	00.0	00.0	00.0	53.0	47.0
12.	जिन स्थानीय जैविक सूचकों का उपयोग करके लोग मौसम पूर्वानुमान लगाते थे, वे अब अविश्वसनीय हो गये हैं।	21.42	7.14	7.14	28.57	35.71
13.	मौसम की विभिन्नता के कारण कृषक खेती में किसी भी परेशानी का सामना नहीं कर रहे हैं (न.वा.)।	00.0	00.0	00.0	25.57	71.42
14.	मौसम की विभिन्नता का अनुकूलन करने के लिये न तो कृषकों के पास और न ही वैज्ञानिकों या सरकार के पास पूर्ण विश्वसनीय उपाय है।	64.28	35.71	00.0	00.0	00.0
15.	जीविकोपार्जन को सुरक्षित रखने के लिये गरीब किसान धनी किसानों की अपेक्षा ज्यादा समस्या अनुभव कर रहे हैं।	00.0	57.14	7.14	14.29	21.42

न.वा.–नकारात्मक वाक्य। ऐसे कृषकों की अवधारणा को पूर्वाग्रह तथा त्रुटिपूर्ण उत्तर से बचाया जाता है।

तालिका 2: जलवायु प्रतिरूपता में बदलाव के प्रति किसानों की अवधारणा

पिछले वर्षों में प्रवृत्ति	सामान्य (प्रतिशत)	कम अनुकूल (प्रतिशत)	अधिक अनुकूल (प्रतिशत)	उच्च स्तर की विभिन्नता (प्रतिशत)
वर्षा	08.00	28.00	06.00	58..0
तापक्रम	11.00	16.50	18.50	54.0
तूफान	27.50	17.50	55.00	—

एवं उसका जलवायु विभिन्नता तथा फसल प्रबंधन से संबंध का पता लगाया जा सके। इन सभी नमूनों का केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल की प्रयोगशाला में परीक्षण कर उनके पीएच मान एवं वैद्युत चालकता का पता किया गया।

परिणाम

जलवायु विभिन्नता के प्रति कृषकों की अवधारणा

परिणाम से यह ज्ञात होता है कि 57 प्रतिशत कृषकों की यह अवधारणा थी कि शीतकाल की अवधि घटी है एवं इसका आरंभ समय (64.28 प्रतिशत कृषकों की राय) आगे हो गया है। समान प्रतिशत में किसानों की यह भी अवधारणा थी कि गर्मी की अवधि बढ़ी है तथा इसका आरंभ काल भी पहले हो गया है। (तालिका 1)। करीब 67 प्रतिशत कृषकों ने यह माना कि वर्षा के दिनों की संख्या सन् 1980 के दशक की तुलना में घट गयी है, जबकि करीब 29 प्रतिशत कृषकों ने माना कि मानसून के आरंभ होने तथा पूरे वर्षा ऋतु के सामान्य रहने की प्रतिरूपता में काफी विसंगती आई है और सूखे के दिनों की संख्या में वृद्धि हुई है

उ.प्र. में आम के पेड़ में 16 फरवरी को करीब 20 दिन पूर्व आए फूल

(तालिका 1)। द्वितीय स्रोत के आँकड़े बताते हैं कि सन् 2002 तथा 2004 में सूखे का प्रभाव ज्यादा था तथा इसके कारण फसलों में रुपये 7540 तथा पशुओं में रुपये 7292 करोड़ का नुकसान हुआ।

इस तरीके के जलवायु विभिन्नता के द्वारा होने वाला नुकसान, छोटे तथा मध्यम श्रेणी के किसानों के लिये काफी जोखिम भरा है। सन् 2014 में 18 जुलाई का दिन अधिकतम वर्षा वाला रिकार्ड़ किया गया। जैसा कि 58 प्रतिशत किसानों की अवधारणा से पता चलता है कि पिछले 30 वर्षों में काफी जलवायुवीय विभिन्नता महसूस की गई (तालिका 2)। तापक्रम की विभिन्नता के बारे में भी कृषकों की राय कुछ ऐसी ही रही। करीब 55 प्रतिशत किसानों की अवधारणा यह थी कि तूफान आने की संख्या में वृद्धि हुई है। जैसाकि पूर्वकाल में किसान विभिन्न परम्परागत सूचकों (जैविक तथा भौतिक) का उपयोग करके मौसम का पूर्वानुमान लगाते थे, परंतु अब 53 प्रतिशत किसानों की अवधारणा यह थी कि पिछले 30 वर्षों में जलवायु के चक्र तथा सामान्य घटनाक्रम में काफी बदलाव आया है। अब परंपरागत तथा जैविक कारक मौसम का पूर्वानुमान लगाने में ज्यादा भरोसेमंद नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर कृषकों ने बताया कि पिछले कुछ वर्षों में आम के पेड़ में फूल आने के समय में परिवर्तन पाया गया है। करीब 21.4 प्रतिशत कृषकों ने माना कि ऐसे सूचकों के सामान्य व्यवहार पूर्वकाल में ज्यादा प्रभावी थे जबकि 35.7 प्रतिशत कृषकों की अवधारणा रही कि परंपरागत सूचकों (दीमक तथा चींटियों की गति, आम तथा महुवा के पेड़ों में फूल आना, कुछ जानवरों तथा पक्षियों के व्यवहार में बदलाव, इत्यादि) के व्यवहार से अभी भी मौसम का पूर्वानुमान लगाना संभव है।

बदलाव तथा कृषि में जोखिम

शोध से पता चला है कि करीब 35.71 प्रतिशत कृषकों की अवधारणा थी कि जलवायु विभिन्नता के कारण फसलों की

उपज में कोई सार्थक कमी नहीं हुई है, जबकि 21 प्रतिशत ने इस राय से अपनी असहमति जतायी। इस परिणाम के पीछे कृषकों की अनुकूलन क्षमता में वृद्धि एक कारण हो सकता है जो समय से फसल उत्पादन में काम आने वाले अवयवों की उपलब्धता तथा सेवाओं के द्वारा निर्धारित होते हैं। करीब 35 वर्ष पूर्व 1980 के दशक में सूखे की मार याद है, जब पूरे गाँव की धान की फसल की मुवारी काटनी पड़ी थी और कृषक बड़ी कठिनाई से बीज के लिये ही बचा पाये थे। बड़ी मुश्किल से लोगों ने सूक्ष्म पारिस्थितिकी तंत्र वाले क्षेत्रों में दोन, रहट तथा दौरी विधि से पानी चलाकर सामुहिक रूप से धान बचाए थे। अब तो ऐसा सूखा पड़ने पर भी साधनों की उपलब्धता की वजह से खाने भर का धान हो ही जाता है। द्वितीय स्रोत के आँकड़ों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि मृदा की क्षारीयता तथा जलवायु विभिन्नता का मिला–जुला असर फसल पर ज्यादा प्रभावी हो रहा है। करीब 64 प्रतिशत कृषकों की अवधारणा थी कि पिछले दशक में फसल उत्पादन में अस्थिरता रही, जबकि 79 प्रतिशत कृषकों की अवधारणा थी कि जलवायु विभिन्नता तथा दूसरे कारकों के मिले–जुले असर ने स्थानीय कृषि जैव विविधता के क्षरण को बढ़ावा दिया है। इसके कारण दलहन, तिल, तीसी, सांवा कोटों, मंडुवा, कोदो तथा देशी प्रजातियों के धान विलुप्त हो गये हैं। ज्यादा तथा उच्च स्तर की जलवायु विभिन्नता के कारण मृदा की उर्वरता (71.43 प्रतिशत कृषकों की राय) प्रभावित हो रही है तथा नहर से दूर वाले इलाकों में भूजल में गिरावट आई है।

जलवायु विभिन्नता के कारण श्रमिकों तथा छोटे एवं लघु कृषकों (42.86 प्रतिशत कृषकों की राय) का पलायन शहरों की तरफ बढ़ा है मानवीय जोखिम में वृद्धि (50 प्रतिशत कृषकों की राय), फसल उत्पादन के खर्च में वृद्धि (64.28 प्रतिशत कृषकों की राय)

भूंड कीड़े द्वारा निचली भूमि में धान की पकी फसल की बालियों पर प्रकोप

तथा इन सभी के कारण जीविकोपार्जन के जोखिम में वृद्धि (45 प्रतिशत कृषकों की राय) हो रही है। वर्ष 2014 में हुदहुद तुफान की वजह से पूर्वी उत्तर प्रदेश में करीब 30 प्रतिशत फसलों को नुकसान पहुँचा था, जबकि इस तूफान के दौरान हुई वर्षा से ऊपरी इलाकों तथा लम्बी अवधि वाली धान की प्रजातियों को करीब 15–20 प्रतिशत फायदा हुआ। हुदहुद तूफान की वजह से करीब 2 सिंचाई (रुपये 3000–4000) की बचत तथा पानी, श्रम एवं ऊर्जा की बचत हुई। इस तूफान का रायबरेली के किसानों को उनके खेतों की स्थिति, उर्वराशक्ति के अनुसार नुकसान तथा फायदा दोनों ही रहा।

जलवायु विभिन्नता के कारण निचली भूमियों में धान की फसलों में गंधी बग (30 प्रतिशत हुदहुद के बाद देर से पकने वाली प्रजातियों में) तथा भूंड कीड़े का प्रकोप (85 प्रतिशत) बढ़ा। इस कीड़े के प्रकोप से धान की देरी से पकने वाली प्रजातियों के दानों की गुणवत्ता में गिरावट आई जिसकी वजह से 15 से 20 प्रतिशत

तालिका 3: मृदा का पीएच मान तथा धान एवं गेहूँ की उत्पादकता

सांख्यिकीय तथ्य	मृदा पीएच मान	धान की उपज (टन/हैक्टर)	गेहूँ की उपज (टन/हैक्टर)
अंतराल	6.8–10.5	2.12–4.25	0.85–2.62
माध्य	8.47	3.94	2.25
क्रांतिक अंतर	0.91	1.18	0.48
विभिन्नता गुणांक	10.71	29.91	21.51

शारदा सहायक नहर के किनारे अधिक क्षारीयता वाली मृदा में धान की कमजोर फसल

भाव कम मिले। वर्ष 2014 में सूखे की वजह से उड़द तथा तिल की फसल नहीं हो पायी। चूंकि भेषज प्राकृतिक संसाधन कमजोर पड़ चुके हैं तथा कृषकों की निर्भरता बाहरी संसाधनों पर बढ़ गयी है। ऐसी स्थिति में अचानक जलवायु विभिन्नता के कारण प्रशासन तंत्र कमजोर रहने से खासतौर पर छोटे तथा लघु कृषकों का जोखिम बढ़ जाता है।

जलवायु विभिन्नता, क्षारीयता तथा मानवीय कारकों का चक्रवृद्धि जोखिम

पूर्व शोध से ज्ञात होता है कि रायबरेली जिला "अधिक जोखिम" वाला है, परंतु इसकी अनुकूलन क्षमता "कम से औसत" दर्जे की है। वैश्वीकरण द्वारा उत्पन्न होने वाला जोखिम "मध्यम से उच्च" स्तर का है। क्षारीयता की वजह से कृषक धान व गेहूँ की उत्पादकता अनुकूलतम नहीं ले पाते हैं (तालिका 3)।

यह पाया गया कि जब मृदा क्षारीयता का जोखिम सूखा या बाढ़ एवं गरीबी तथा कम सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले कृषक के साथ जुड़ता है तो जोखिम चक्रवृद्धि रूप में बढता है। अधिकांश (85 प्रतिशत) कृषक लघु तथा मध्यम श्रेणी के हैं और मृदा क्षारीयता ज्यादा होने से फसलों की उत्पादकता बहुत ही कम है। करीब 65.6 प्रतिशत कृषक मजदूरी के लिये पलायन कर मनरेगा एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लाभ से अपनी जीविकोपार्जन का स्तर बरकरार रखते हैं। अगर जीवन निर्वाह के साधन कमजोर पड़ते हैं या फिर पूरी तरह कारगर नहीं होते हैं तो इन कृषकों की जीविका का जोखिम जलवायु विभिन्नता की स्थिति में कई गुणा बढ़ जाता है।

करीब 92 प्रतिशत कृषकों का मानना हैकि स्थानीय कृषि विविधता (चना, उड़द मूंग, अरहर, ज्वार, बाजरा, मक्का, तिल, मसूर इत्यादि) का 85 प्रतिशत क्षरण मानवीय कारकों के साथ बदलते जलवायु एवं भौगोलिक बदलाव के कारण हुआ है। ये किसान पहले रामदाना (अमरैंथस) की फसल लेते थे परंतु बाजार भाव की अस्थिरता, अनुकूल नीति का अभाव तथा नहर के किनारे वाले खेतों में जल रिसाव के कारण क्षारीयता के सम्मिलित जोखिम से यह फसल अब नहीं उगायी जाती है। करीब 78 प्रतिशत किसानों के अनुभवों से ज्ञात हुआ कि जलवायु विभिन्नता, सामाजिक–आर्थिक तथा पारिस्थितिकी तंत्र में बदलाव द्वारा उत्पन्न जोखिम से 89 प्रतिशत स्थानीय कृषि जैव विविधता का क्षरण, 70 प्रतिशत गृह वाटिका में कमी, 45 प्रतिशत

तालिका 4: कृषि में जीविकोपार्जन के जोखिम पर असर डालने वाले प्रमुख सामाजिक–आर्थिक, नीतिगत पारिस्थितिकी कारक

सामाजिक–आर्थिक कारक	कृषकों की राय (प्रतिशत)	पारिस्थितिकी कारक	कृषकों की राय (प्रतिशत)
मनरेगा	85.0	जलभराव	78.0
फसल उत्पादन का बढ़ता खर्च	98.0	मृदा पीएच मान89.0	
स्थानीय संस्थाओं की विलुप्तता	79.0	प्राकृतिक जलनिकास में अवरोध	72.0
सार्वजनिक खाद्य वितरण की प्रणालियाँ	68.5	कृषि भूमि उपयोग में बदलाव	85.0
सामाजिक (संयुक्त से एकल परिवार) तथा राजनीतिक कारक	54.6	स्थानीय कृषि विविधता तथा पेड़ पौधों का क्षरण	69.0

स्थानीय पेड़ों की प्रजातियों (आम, महुआ, सीरस, पीपल, बरगद इत्यादि) में कमी हुई है। करीब 90 प्रतिशत किसानों की राय थी कि जलीय खाद्य विविधता जैसे सिंही, मंगुर, चेल्हवा, सिधरी, गिरई, चनगा, सऊर, गोइंजा, गोइंजी, झिंगा आदि मछलियों की संख्या तथा उपलब्धता में भी पूर्व चर्चित कारकों के सम्मिलित प्रभाव की वजह से गिरावट आई है।

यदि वर्षा देर से आरम्भ होती है या फिर सितम्बर माह के अंत में ज्यादा सघन वर्षा हो जाती है तो नहरी इलाकों में जल रिसाव के कारण गेहूँ की बुवाई देर से होती है और उसका उत्पादन प्रभावित होता है। यह पाया गया कि सामाजिक–आर्थिक कारण जैसे फसल उत्पादन का बढ़ता खर्च (98 प्रतिशत कृषकों की राय, धान की खेती का खर्च रुपये 8000–22000 प्रति हैक्टर. जबकि रुपया 14000–18000 प्रति हैक्टर गेहूँ का खर्च), मनरेगा तथा सार्वजनिक खाद्य प्रणाली (भूमिहीन मजदूरों के लिये यह प्रणाली सफल अनुकूलन रही) ने कृषकों को प्रभावित किया है (क्रमशः 85 प्रतिशत तथा 68.5 प्रतिशत कृषकों की राय, तालिका 4)। पारिस्थितिकी कारकों में मृदा पीएच (89 प्रतिशत कृषकों की राय), कृषि भूमि उपयोग में बदलाव (85 प्रतिशत कृषकों की राय) तथा जल भराव (78 प्रतिशत कृषकों की राय) के कारण कृषि तथा उससे संबंधित जीविकोपार्जन के जोखिम जलवायु विभिन्नता के जोखिम के साथ चक्रवृद्धि प्रभाव डालते हैं। सूखे के समय धान में 15–20 अतिरिक्त सिंचाई की जरूरत पड़ती है जिसका भाड़ा मूल्य करीब रुपये 150 प्रति घंटा पड़ता है। 5 अश्वशक्ति की मोटर, मिट्टी के प्रकार तथा भू–स्थिति के अनुसार करीब 10–12 घंटा प्रति एकड़ सिंचाई में लेता है। इस प्रकार ऊर्जा, जल तथा श्रम पर अतिरिक्त भार पड़ता है और कृषक का जोखिम और बढ़ जाता है।

कृषकों द्वारा अनुकूलन

यह ज्ञात हुआ कि करीब 86 प्रतिशत कृषक फसलों की प्रजातियों में फेरबदल करके जलवायु विभिन्नता का अनुकूलन कर रहे हैं जोकि हर 2–3 वर्ष बाद फसल की प्रजातियों (गेहूँ तथा धान) में बदलाव लाकर होता है। सभी कृषकों में से करीब 19 प्रतिशत कृषक धान की सीएसआर 30 प्रजाति मध्यम दर्जे की क्षारीय भूमियों में (पीएच मान 8.7 के करीब) में लगा रहे थे जबकि वहीं पर 43 प्रतिशत कृषक सीएसआर 36 की प्रजाति का अनुकूलन ज्यादा क्षारीय (पीएच मान 8.6–9.3) भूमियों में कर रहे थे। निचली भूमियों में धान की प्रजाति गंगा, कावेरी, बौनी मंसूरी तथा ऊपरी जमीनों में मोती, सरयू 52, डंकल, पाकिस्तानी बासमती तथा दामिनी प्रजातियों का अनुकूलन था। कृषि तथा फसल प्रणाली का विविधीकरण जोकि पशुओं, कृषिवानिकी, उद्यानिकी तथा कृषि के अलावा दूसरे अवयवों से हो रहा है, अनुकूलन के नये आयाम को बढ़ा रहा है।

ऐसे क्षेत्र जहाँ भूमि नीचे के इलाके में है और नहर से सटी हुई है, वहाँ नहर के रिसाव की समस्या है जिससे पानी भरता है, ऐसी जमीनों को बड़े किसान 'कहार' समुदाय को भाड़े पर दे देते हैं। कहार समुदाय ऐसी जमीनों में सामुदायिक संसाधनों का उपयोग करके सिंघाड़ा तथा मछली पालन करते हैं। जमीन का मालिक रुपये 4000–6000/हैक्टर के हिसाब से लेता है, जबकि कहार समुदाय रुपये 12000 से 14000/हैक्टर आय प्राप्त करते हैं। मछली पालन के द्वारा करीब रुपये 15000–20000/हैक्टर आय हो जाती है। इन जमीनों में कम उत्पादकता का कारण पानी का जमाव, समुचित ढांचा तथा जलनिकास की कमी एवं देख–रेख की समस्या के कारण मछली पालन को सही अनुकूलन का प्रारूप नहीं दिया जा रहा है।

जिन किसानों के खेत नहर से सटे हैं तथा जल रिसाव की समस्या है, क्षारीयता के जोखिम को अधिक बढ़ाते हैं, ने बहुउद्देशीय खेती को अपनाया है। वहाँ केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान ने अपनी तकनीकी तथा लवण प्रबंधन की रणनीतियों के साथ सहयोग किया है। उदाहरण के तौर पर गाँव कसरांवा के एक किसान के यहाँ अनुकूलन की इस पद्धति को प्रोत्साहन दिया गया। इस किसान ने करीब 0.4 हैक्टर जमीन में इस अनुकूलन से लौकी, कद्दू भिण्डी, केला, अरबी तथा सूरन (6 प्रजाति) के मॉडल को बंधों पर उगाया, जबकि तालाब के अंदर सिंघाड़ा उगाकर अपने जीविकोपार्जन की समगतिशीलता के साथ पारिस्थितिकी अनुकूलन को भी बरकरार रखे हुए है। प्रतिवर्ष यह किसान रुपये 15000 सिंघाड़ा से तथा रुपये 40000 से 50000 बहुउद्देशीय मॉडल से प्राप्त करता है। ऐसे किसान जिनके पास जमीन नहीं है, ने मनरेगा परियोजना का लाभार्थी बनकर (79.80 प्रतिशत भूमिहीन श्रमिक) अनुकूलन किया है। जीविकोपार्जन को अर्थपूर्वक बनाने के लिये नजदीकी शहर तथा बड़े नगरों का पलायन (72.18 प्रतिशत) करते हैं तथा सार्वजनिक खाद्यान्न वितरण प्रणाली का लाभार्थी (68 प्रतिशत) बनकर जलवायु विभिन्नता के जोखिम के साथ–साथ गरीबी के जोखिम

जल रिसाव वाले इलाकों में कहार समुदाय द्वारा सिंघाड़ा एवं मछली की सामुहिक खेती

प्रोत्साहित किसान द्वारा बहुउद्देशीय कृषि प्रणाली का अनुकूलन

का भी अनुकूलन किया है। गरीब किसानों द्वारा अपनी जमीन भाड़े पर देना (36 प्रतिशत) तथा भाड़े पर लेना (21.5 प्रतिशत) संस्थागत अनुकूलन की रणनीति है। जो जागरूक तथा बड़े स्तर के किसान हैं विभिन्न स्रोतों से कृषि की जानकारी तथा मौसम की सूचना प्राप्त करके अपनी खेती में बदलाव करके अनुकूलन करते हैं जैसे निलोफर तूफान का टेलीविजन पर समाचार सुनने के बाद आलू की अगेती प्रजाति की बुवाई आगे बढ़ा दी। जिनकी जमीन कम क्षार वाली तथा बलुई दोमट और ट्यूबवेल के साधन थे, उन किसानों ने सब्जी की खेती (टमाटर, बैंगन, मूली) को आर्थिक अनुकूलन के रूप में अपनाया है। छोटे किसानों ने भी इस पद्धति को अपनाया परंतु वे अपनी सब्जी अधिकांशतः अनौपचारिक बाजार में बेचते हैं जिससे उनकी कुल आय कम हो जाती है। वहीं पर बड़े किसान व्यवस्थित बाजार से जुड़कर अपनी सब्जी को ज्यादा प्रतिस्पर्धात्मक भाव पर बेचते हैं तो उनकी आय अच्छी हो जाती है। ऐसे अनुकूलनों से ज्ञात हुआ है कि एक जैसी जलवायु विभिन्नता होने पर भी अनुकूलन किसान की उम्र, जमीन, लिंग, सामाजिक–आर्थिक तथा राजनीतिक दशा के आधार पर निर्धारित होता है।

निष्कर्ष

शोध से प्राप्त परिणाम के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जलवायु विभिन्नता के कारण कृषि के जोखिम को पारिस्थितिकी, सामाजिक–आर्थिक, संस्थागत तथा नीतिगत कारक और जोखिम भरा बनाते हैं। कृषि अनुकूलन पूरी तरह से एक विशेष स्थान आधारित एवं व्यवहारिक प्रक्रिया है। बहुतायत की संख्या तथा परिस्थितियों में कृषि अनुकूलन त्वरित तथा समय एवं परिस्थिति के अनुसार उपलब्ध संसाधन आधारित होती है। फसल तथा उनकी प्रजातियों का अनुकूलन क्षारीयता की गंभीरता तथा राज्य सरकार के ऊसर सुधार कार्यक्रम की सफलता से निर्धारित होता है। रायबरेली जनपद के गाँवों में कृषि पद्धतियों का अनुकूलन किसानों की आर्थिक दशा से बहुत हद तक प्रभावित रहता है। समाज की दशा तथा उसका ताना–बाना, जोखिम पूर्ण मौसम की समुचित जानकारी जीविकोपार्जन की गतिविधियाँ तथा अवयवों की विविधता एवं राज्य तथा केन्द्र सरकार की सामाजिक–आर्थिक कल्याण की परियोजनाओं (सार्वजनिक खाद्य वितरण प्रणाली तथा मनरेगा) जैसे कारकों ने कृषि के अनुकूलन की पद्धतियों को बहुत हद तक प्रभावित किया है।

ऐसी स्थिति में सरकार, वैज्ञानिक तथा किसानों के लिये कार्य कर रही संस्थाओं के लिये जरूरी हो जाता है कि वे जमीनी हकीकतों के हिसाब से अपनी नीति तथा कार्य प्रणाली में बदलाव लाएं जिससे कारगर एवं समगतिशील अनुकूलन को बढ़ावा मिले।

समाप्त

वानस्पतिक जैव विविधता संरक्षण :जलवायु परिवर्तन तथा अनुकूलन क्षमता में पारम्परिक परिस्थितिकीय ज्ञान की भूमिका

रंजय कुमार सिंह, अंशुमान सिंह, प्रवेन्द्र श्योराण एवं रणधीर सिंह

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

विश्वस्तर पर स्थानीय तथा आदिवासी जनसमुदायों ने जलवायु परिवर्तन का वानस्पतिक जैविक विविधता एवं कृषि पारिस्थितिकी तंत्रों की उत्पादकता पर दुष्प्रभावों को अनुभव किया है। जलवायु परिवर्तन के विविध आयामों तथा उससे संबंधित जटिलताओं से स्थानीय जनसमुदाय तथा आदिवासी समूह, जलवायु परिवर्तन एवं उसके दुष्प्रभावों से चिंतित हैं।

भेषज, आदिवासी तथा स्थानीय जनसमुदाय, जो पारम्परिक परिस्थितिकीय ज्ञान के संवर्धक रहे हैं, लेकिन अनुसंधान, नीतियों तथा जलवायु परिवर्तन अनुकूलन कार्यक्रमों से संबंधित चर्चा में सम्मिलित नहीं किये जाते हैं। आदिवासी तथा स्थानीय जनसमुदाय वनस्पतियों, कीटों, पशुओं व पक्षियों के दैनिक व्यवहार के आधार पर मौसम में होने वाले परिवर्तनों को समझने के लिये विभिन्न स्थानीय सूचकों का उपयोग करते रहे हैं। उदाहरण के रूप में भारत में गुजरात तथा राजस्थान राज्यों की स्थानीय जनता तथा जनजातियाँ केरड़ा (कैपेरिस डेसीडुआ) के फूलों की संख्या तथा उसके रंग से तापमान तथा भविष्य में होने वाली वर्षा की मात्रा का अनुमान लगाते हैं। अगर फूल ज्यादा मात्रा में लगे हैं तथा गाढ़े गुलाबी रंग के हैं, तो कम वर्षा का अनुमान प्रायः सत्य सिद्ध होता है। ऐसे ही मध्य प्रदेश की विभिन्न जनजातियाँ तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के स्थानीय जनसमुदाय काँस घास (सैकेरम स्पोंटेनियम) में फूल आ जाने पर अनुमान लगाते हैं कि वर्षा ऋतु अब समाप्त होने वाली है। मध्य प्रदेश की भील तथा गोंड जनजातियों के पारम्परिक ज्ञान के अनुसार यदि जामुन के कच्चे और हरे फलों में अचानक गाढ़ा जामुनी रंग विकसित होता है तो वर्षा के शीघ्र प्रारम्भ होने का संकेत देता है।

भेषज, आदिवासी तथा स्थानीय जनसमुदाय जलवायु परिवर्तन तथा उसके दुष्प्रभावों, जैसे वानस्पतिक जैव विविधता क्षरण, भूमि क्षरण व जीविका अनुकूलन, पानी जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से ये जनसमुदाय जोकि सर्वाधिक प्रभावित होंगे, ने वैश्विक वैज्ञानिक समुदाय को भी चिंतित किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जलवायु परिवर्तन निकट भविष्य में मानव सभ्यता के भौतिक, जैविक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक–आर्थिक पहलुओं के लिये विनाशकारी सिद्ध हो सकता है।

परम्परागत जैव विविधता तथा पारिस्थितिकीय ज्ञान और औपचारिक ज्ञान का समागमः

विश्व के विभिन्न भागों मुख्यतः अलास्का (संयुक्त राज्य अमेरिका), साइबेरिया (रूस) में जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों का असर ऐसा है कि यहाँ की स्थानीय जनजातियों का जीविकोपार्जन तथा सांस्कृतिक सभ्यता खतरे में है। फिनलैंड में गठित स्नोचेंज सहकारी समिति जलवायु परिवर्तन अनुकूलन हेतु तथा पारम्परिक ज्ञान के विभिन्न आयामों पर कार्य कर रही है। यह सहकारी समिति स्थानीय जनसमुदायों के पारम्परिक ज्ञान तथा भाषा का पुर्नोद्धार कर रही है। इस समिति का मानना है कि पारम्परिक ज्ञान तथा भेषज भाषा दोनों का जलवायुवीय परिवर्तन अनुकुलन में एक विशेष योगदान हो सकता है।

तालिका 1 में दर्शाया गया है कि विश्व स्तर पर विभिन्न स्थानीय तथा जनजातीय लोग किस प्रकार से जलवायु परिवर्तन को महसूस कर रहे हैं।

ऐसे जलवायु परिवर्तन तथा मौसम की विसंगति एवं भौगोलिक समस्याओं का अनुकूलन करने के लिये लोगों ने कुछ स्थानीय अनुकूलन की पद्धतियों को विकसित कर लिया है। प्रचलित कुछ समगतिशील पद्धतियों का विवरण आगे दिया गया है। ये पद्धतियाँ कृषकों तथा स्थानीय समुदायों द्वारा उपयोग की जाती है जिससे पारिस्थितीकी तंत्र को दुष्प्रभावों से बचाया जाता है और जलवायु परिवर्तन के खतरों को कम किया जाता है। ऐसी पद्धतियाँ को व्यक्तिगत तथा सामुदायिक आधार पर दो भागों में दे रहे हैं।

अ. व्यक्तिगत ज्ञान आधारित पद्धतियाँ

1. श्रीमती ओरिक रालेन, सिबुत गांव, पासीघाट, अरुणाचल प्रदेश

श्रीमती ओरिक रालेन के अनुसार उनके बचपन में देकांग पेड़

तालिका 1: स्थानीय जनसमुदाय व जनजातियों का जलवायु परिवर्तन के बारे में अनुभव

अनुभव एवं सोच	स्थानीय एवं जनजातियों के लोग एवं प्रतिनिधि
प्रकृति माँ जलवायु परिवर्तन से असमंजस में है	एडेलार्ड वैकमार्ड, देने समुदाय, कनाडा
जलवायु परिवर्तन के कारण पहाड़ों पर जमी बर्फ पिघल रही है, नदियाँ अपनी स्थिति और दिशा बदल रही है	तुंग–चुन फॉ ताइवान
जलवायु परिवर्तन के कारण सामाजिक–आर्थिक दशा में अधिक परेशानियाँ	सेरेइबुथ इराक, खरेम क्रीम समुदाय, वियतनाम
हम लोग केवल इंसानों की क्षति ही नहीं, बल्कि पूरे समुदाय को खो रहे हैं	पौटिरिसीया को चरन, इन्युट समुदाय, अलास्का
जलवायु परिवर्तन के कारण मछलियों पर आधारित हमारी जीविका खतरे में है, क्योंकि मछलियों तथा हमारे समुदायिक परिवेश का आपस में घनिष्ट संबंध है	कीमो कारवालहो, हैवाइयन सामाजिक कार्यकर्ता
जलवायु परिर्वतन पृथ्वी का प्रतिरोध है, जोकि लोगों द्वारा विश्व के विभिन्न प्रभागों में प्रकृति के साथ छेड़–छाड़ करने का परिणाम है	अलेव–जांन्द्रा, ग्रीगोरीवा, साखा, साइबेरिया
अगर पानी भी लुप्त हो रहा है तो इसका मतलब है कि हमारे भगवान लोग हमसे विमुख हो रहे है	जुआन कार्लोस जिनितिआक, सुआर समुदाय, इक्वाडोर
जलवायु परिवर्तन के द्वारा और अधिक कुप्रभाव होने तक का इंतजार हमें नहीं करना चाहिए	अन्ना पिंटो, मैइतेई समुदाय, भारत
जलवायु परिवर्तन के कारण हम लोगो के विलुप्त होने का खतरा है	क्रिस्टिआना सैटी लाऊवा, एइभोलो समुदाय, केन्या
हम लोग जलवायु परिवर्तन के कारण बुरी तरह से प्रभावित हो रहे हैं, और हमें अपनी पारम्परिक जीवन शैली को अपनाने की आवश्कता है	माजगे गाजेतो, गामो जनजातीय बुजुर्ग, इथोपिया
जलवायु परिवर्तन का संबंध अधिपत्य तथा सामाजिक दशा से है। बाढ़ या सूखा पड़ने पर भारत में दलित तथा अनुसूचित जातियाँ सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं	सिरीवेला प्रसाद, दलित कार्यकर्ता, भारत

(जिमनोक्लैड्स बर्मैनिकस) सामुदायिक जंगल तथा झूम खेती में बहुतायत की संख्या में मिला करते थे। परन्तु समय के साथ–साथ इनकी संख्या बहुत ज्यादा घट गयी। देकांग के फल का उपयोग साबुन, सैम्पू, चर्मरोग, जंगली सूअर तथा हिरन का शिकार करने में एवं दूसरी स्थानीय जन–जातियों से भोज्य पदार्थो तथा अन्य सांस्कृतिक पदार्थों के आदान–प्रदान में किया करते थे। वह अपने बचपन को याद कर कहती हैं कि जंगली कटहल तथा आनके (वाइल्ड चेस्टनट) के बीजों का उपयोग सूखा पड़ने पर पावडर बनाकर विभिन्न पारंपरिक भोज्य पदार्थों के रूप मे किया जाता था, परन्तु अब इन पेंड़ों की संख्या घटी है। वे अब दिकांग के पेड़ों का संरक्षण झूम खेती एवं वाटिका में करने का प्रयास कर रही है। उनका मानना है कि ऐसा करने से जलवायु परिवर्तन की दशा में कई पद्धतियों को जिंदा रखा जा सकता है।

2. श्रीमती पेम डोलमा

श्रीमती डोलमा के साथ सन् 2003 से 2004 तक अध्ययन में ज्ञात हुआ कि उनकी पूरी खेती की पद्धतियाँ कार्बनिक हैं, तथा

चित्र 1: कृषि बीजों की विविधता

चित्र 3: मिनांगमोसे का पेड़

परिस्थितिकीय तंत्र को बिल्कुल नुकसान नहीं करती है। इन पद्धतियों की सहायता से श्रीमती डोलमा ने 38 फसलों की जैव विविधता (चित्र 1) को बचाकर रखा था। उनकी जितनी भी फसल की प्रजातियाँ थी जैसे दलहन, गेहूँ, जौ, सब्जियाँ मसालें, इत्यादि, वो सभी अधिकतर सूखारोधी थी। इन प्रजातियों को कम पानी की आवश्यकता पड़ती है तथा पहाड़ी इलाकों के लिये उपयुक्त हैं। ऐसी प्रजातियों का संग्रह तथा सरक्षण देश की भविष्य खाद्य सुरक्षा के लिये ज्यादा महत्वपूर्ण है।

3. श्री दार्गे श्रींग, ब्रोकपा जनजाति, छांदर गांव, पश्चिम कमेंग जिला, अरुणाचल प्रदेश

श्री दार्गे याक की स्थानीय प्रजातियों के संरक्षण (चित्र 2), उनके स्वास्थय के रख रखाव, ब्रोकपा समुदाय के लोगों को जागृत करने एवं उनके बच्चों की पढ़ाई एवं सुख–सुविधा के संसाधनों को मुहैया करवाने एवं पारंपरिक याक के चारागाहों के रखरखाव

चित्र 2: दार्गे श्रींग

के ज्ञान में विशेष महारत हासिल रखने के लिए प्रसिद्ध हैं। दार्गे याकों के संरक्षण तथा उनकी उत्पादकता को बरकरार रखने के लिए अपने पूरे समुदाय के साथ चर्चा करते हैं, और चारागाहों में स्थानीय घासों के अलावा ऋतु, मौसम एवं पर्यावरणीय अनुकूल रणनीति बनाते हैं। इस रणनीति के अनुसार ही घास के मैदान का उपयोग याकों को चराने के लिए ब्रोकपा समुदाय के लोग करते हैं। यदि कोई व्यक्ति इस स्थानीय रणनीति का उल्लंघन करता है तो पारम्परिक सामाजिक संस्था 'छोप्पा' उसे दण्ड राशि भुगतान करने के लिए निर्णय सुनाती है। श्री दार्गे ने बदलते जलवायु की आवश्यकताओं को देखते हुए याक तथा मिथुन का प्रजनन करवा कर याक की संकर जातियों को विकसित किया है तथा सामुदायिक आधार पर उनका संवर्धन कर रहे हैं।

4. श्री लॉबसांग (उम्र 60 वर्ष), गांव–बूढ़ा, प. कमेंग, अरुणांचल प्रदेश

लॉबसांग, देशी औषधीय पौधों का विभिन्न बीमारियों में इलाज के लिए उपयोग करते हैं। औषधीय पौधों के लिए दूर न जाना पड़े, इसलिए लॉबसांग ने औषधीय पौधों की करीब 20 प्रजातियाँ, जिसमें सभी दिरांग क्षेत्र में ही पायी जाती है, को अपने वाटिका में लगाया है। उदाहरण के तौर पर वुरांग–सागा, (जिंजबरेसी परिवार का पौधा), टैक्सस, मिनांगमोसे (जिमनोक्लैडस असैमिकस, चित्र 3), इत्यादि हैं। श्री लॉबसांग ने अपनी विशेष रुचि मिनांगमोसे तथा टैक्सस को बचाने में दिखायी। सन् 2006 तथा 2007 में इन्होनें सामुदायिक जागरण अभियान चलाया। मिनांगमोसे के सही उपयोग, संरक्षण तथा असवैंधानिक कटाई पर रोक लगवाने के लिए सरकारी परिपत्र जारी करवाया। मोनपा लोग मिनांगमोसे के फलों का उपयोग चर्मरोग, पशुओं में जोंक छुड़ाने के लिए, पूजा में, साबुन तथा शैम्पू में, कार्बनिक

कीटनाशक तथा पत्तियों का उपयोग कार्बनिक मल्च (जो कि सब्जियों में कीटनाशक का भी कार्य करती है) के लिए करते हैं। श्री लाबसांग के ज्ञान तथा स्थानीय ज्ञान तंत्र का उपयोग पारिस्थितिकीय तंत्र का संरक्षण कर जलवायु अनुकूलन के लिये कारगर साबित हो सकता है।

5. श्रीमती वाइ जे. लेगो (उम्र 55 वर्ष), पासीघाट, पूर्वी शियांग जिला, अरुणांचल प्रदेश

श्रीमती लेगो पासीघाट की रहने वाली हैं जोकि एक सफल वैद्य हैं। श्रीमती लेगो का अनुभव कहता है कि विगत वर्षों की तुलना में जलवायु में परिवर्तन आया है। "अब पहले जैसी वर्षा नहीं, पहले जैसी ठंड नहीं तथा पहले जैसी गर्मी नहीं"। इन सभी मौसमों के काल में परिवर्तन आया है, जिसकी वजह से विभिन्न बीमारियों में उपयोग होने वाली भेषज औषधियाँ, जो उपोष्ण वनों की विभिन्न ऊंचाईयों पर पायी जाती थी, अब वैसी नहीं मिल रही हैं। उनका मानना है कि अब इन वनस्पतियों को एकत्र करने के लिये समय और श्रम दोनों ज्यादा खर्च होते हैं। वे कहती हैं अब तो बीमारियाँ भी जैसे कि मलेरियाँ जो कभी केवल कोपिस्तिता पौधे के काढ़े से ठीक हो जाया करती थी, अब ठीक नहीं हो रही हैं। मुझे अब कई अन्य वनस्पतियों को मिश्रित करना पड़ता हैं। पीलिया का प्रकोप भी पहले की तुलना में बढ़ा है। यह इसलिए हुआ है क्योंकि पहाड़ों से जो पानी पहले आता था उसमें दूषित पदार्थ, तथा मिट्टी के कटाव के कारण अन्य गंदे पदार्थ कम होते थे। चूंकि वर्षा अनिश्चित हो गयी है, इसलिए जब कभी वर्षा तेज होती है तो मिट्टी का कटाव ज्यादा होता है तथा पानी को ज्यादा दूषित करता है। पहाड़ों का पानी पीने से ज्यादा लोगों को पीलिया हो रहा है। झूम खेती का कार्यकाल छोटा होने से तथा पहाड़ों से होकर आने वाले पानी के रास्तों में उपस्थित औषधीय पेड़ तथा पौधे जो पानी को दोषमुक्त करते थे, उसे आधुनिक पीढ़ी ने काट दिया है, जिसके परिणामस्वरूप पानी में दूषित पदार्थों की मात्रा बढ़ी और लोग पीलिया के शिकार ज्यादा होने लगे हैं। इन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से निजात पाने के लिये वाई जे लेगो ने कुछ वनस्पतियों जैसे कोपितिस्ता, अक्सप, ओंगेर, ओंगेन, मरसांग इत्यादि पौधों को अपनी वाटिका में संरक्षित कर रही है। इनका मानना है कि जलवायु परिवर्तन के अलावा कृषि प्रणाली तथा भूक्षेत्र उपयोग प्रणाली के बदलाव की दशा में ऐसी वनस्पतियों को बचाया जा सकता है।

ब. परिस्थितिकीय आधारित सामुदायिक ज्ञान

1. सामुदायिक कृषि–वानिकी आधारित ज्ञान

वर्ष 2003 में दिरांग, (पश्चिम कमेंग जिला, अरुणाचल प्रदेश) के

चित्र 4: पैसांग का सामुदायिक

सटे हुए गांवों जैसे यांग वस्ती, नामसु, दिरांगवस्ती, रामाकैम्प, लीश वस्ती एवं थेम्बांग में एक शोध के दौरान यह पाया गया कि मोनपा लोग किस तरह से पैसांग (क्वैरिकस ग्रीफीथी) (चित्र 4) के पत्तों का उपयोग विभिन्न प्रकार की फसलों को उगाने में करते है। इस पद्धति के तहत सबसे पहले गांव के लोग एक 100 वर्ष पुराने पैसांग पेड़ की पूजा करते हैं, फिर इसके सूखे पत्तों को एकत्र करने की प्रक्रिया की शुरूआत होती है। पैसांग के पत्तों को तीन रुप में उपयोग में लाया जाता है। सूखे पत्ते, आधा सड़े

चित्र 5: पैसांग पेड़ की पत्ती से टमाटर के खेत में मलचिंग

हुए पत्ते तथा पूरी तरह से कम्पोस्ट बने हुए पत्तों की खाद। सूखे पत्तों को सोयाबीन, मिर्च तथा टमाटर फसलों में पौध रोपण के बाद नमी संरक्षित करने के लिए उपयोग किया जाता है (चित्र 5)। आधे तथा पूरी तरह से सड़े हुए पत्तों का उपयोग सब्जी की फसलें जैसे गोभी, गाजर, इत्यादि में उपयोग किया जाता है। इस सामुदायिक ज्ञान आधारित पद्धति का उपयोग करके जमीन से होने वाले वाष्पोत्सर्जन को कम किया जाता है, खरपतवार की वृद्धि तथा प्रकोप को कम किया जाता है तथा जलवायु खराब होने की दशा में जमीन की शक्ति को बरकार रखा जाता है। आज के वर्तमान औपचारिक ज्ञान के हिसाब से ऐसी पद्धतियाँ जलवायु परिवर्तन (तापक्रम वृद्धि की दशा) के अनुकूलन के लिये ज्यादा अनुमोदित की जा रही है।

2. नमी संरक्षण, स्थानीय फसलों का संरक्षण तथा जीविकोपार्जन

दिरांग, नामसू तथा थेम्बांग इलाकों में मोनपा समुदाय के लोग नमी संरक्षण करने के लिए मक्का की खड़ी फसल में ही फाफड़ा (बक ह्वीट) लगा देते हैं, जो कि रिले क्रापिंग का एक उदाहरण है (चित्र 6)। यह पद्धति फसल कटने के 20 दिन पूर्व की जाती है। मक्का की फसल कटते–कटते फाफड़ा का बीज अंकुरित हो जाता है और इसके पौधे 2–3 सेमी की ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं (चित्र 7)। इस पद्धति द्वारा कृषक पहाड़ी क्षेत्रों की जमीन की नमी का सही उपयोग करते हुए मक्का के तनों का 80 प्रतिशत भाग जमीन में ही छोड़ देते हैं। इस पद्धति में मक्का तथा फाफड़ा फसलों की स्थानीय प्रजातियों का ही उपयोग किया जाता है। इस पद्धति के द्वारा भोज्य पदार्थो में विटामिन, सांस्कृतिक त्यौहार (बथुवा के बीज से बने विभिन्न खाद्य पदार्थों द्वारा) की आवश्यकता की पूर्ति तथा मृदा में विद्यमान नमी का सही उपयोग

चित्र 6: फाफड़ा की रिले पद्धति

चित्र 7: फाफड़ा के साथ बथुआ की सह–फसल

करने में सहायक होती है ।

मोनपा लोगों का तर्क है कि उनकी सभी फसलें जोकि प्रमुखतः स्थानीय प्रजातियाँ है रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को नहीं सह सकती। साथ ही इन क्षेत्रों में पानी का कोई स्थाई स्रोत भी नहीं है, जिसे उपयोग कर फसलों की सिंचाई की जा सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि कृषक कैसे जलवायु के घटको के साथ अपनी रणनीति बनाते हैं तथा फसलों की स्थानीय प्रजातियों को संरक्षित रखते हुए जीविकोपार्जन को समगतिशील रखते हैं। ऐसे ही एक दूसरी पद्धति अपनाकर मोनपा समुदाय के लोग फाफड़ा और बथुवा की खेती करते है (चित्र 7)।

चित्र 8: टोको–पत्ता

3. टोको–पत्ता (लेबेस्टोनिया जेनकिनसियना) संरक्षण तथा जलवायु परिवर्तन में उपयोग

अरुणाचल प्रदेश में रहने वाले आदि, नीषी, तथा अन्य जनजातियों के लिए टोको–पत्ता एक महत्वपूर्ण पाम प्रजाति का पौधा है (चित्र 8)। इस पौधे का संरक्षण सामुदायिक वनों, झूम खेती तथा घरेलू उद्यानों में करते हैं। संवर्धन करने के पीछे कारण यह है कि तोको की पत्तियों का उपयोग मकान बनाने में किया जाता है जोकि वातानुकूलित होता है। पत्ते के डंठलों से हैंडीक्राफ्टस भी बनाया जाता है जो जीविका का एक प्रमुख साधन है। इसी वजह से आजकल टोको की एक पत्ती स्थानीय बाजार में 2.0–2.5 रुपये में बिकने लगी हैं। टोको आधारित कृषि वानिकी का उपयोग करके परिस्थितीकीय तंत्र का संरक्षण किया जाता है। साथ ही दूसरी वनस्पति प्रजातियाँ अंतःपद्धति के रूप में उपयोग में लायी जाती है। जलवायु परिवर्तन की दशा में टोको सूक्ष्म–परिस्थितिकीय तंत्र को समगतिशील बनाने के अलावा कार्बन संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा प्रदेश की ग्रामीण आर्थिकी का प्रमुख अंग बन चुका है। सामाजिक तथा आर्थिक बहुमूल्यता के कारण टोको को राज्य पेड़ के तौर पर संस्तुत किया गया है।

स्थानीय समुदाय पादप जैव विविधता के संरक्षण में निपुण हैं। पादप संरक्षण के लिए विकसित पद्धति तथा ज्ञान संरक्षण के अलावा, जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन में उपयोग होने की संभावना को भी प्रदर्शित करते है। हांलाकि भारत में विभिन्न काल में विभिन्न नीतियों तथा पद्धतियों के तहत जैव विविधता का संरक्षण किया गया, परन्तु उनकी कुछ कमियाँ एवं विशेषताएं थी और वर्तमान में जलवायु परिवर्तन के परिपेक्ष्य में ऐसी नीतियाँ तथा पद्धतियाँ और चुनौतिपूर्ण हो जाती है।

जलवायु परिवर्तन तथा पारम्परिक ज्ञान आधारित सूचक

वैश्विक आँकड़ों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि यदि जलवायु परिवर्तन होगा और उनका प्रभाव जैव विविधता तथा पारिस्थितिकीय तंत्र पर पड़ेगा तो निम्नलिखित सूचक उनका संकेत देंगे:

- जलवायु परिवर्तन का भेषज समूहों तथा जनजातियों एवं पारम्परिक ज्ञान पर प्रभाव
- भूमि उपयोग के प्रकार तथा जीविकोपार्जन के प्रकारों में परिवर्तन
- जैव विविधता तथा फसलों के संरक्षण व उपयोग में परिवर्तन
- घरेलू, पशुओं तथा जंगली जानवरों के स्वास्थ्य में परिवर्तन
- पर्यावरण अनुकूलन से संबंधित नयी तकनीकियों के अंगीकरण में परिवर्तन
- जीविका के विभिन्न प्रकार के जोखिमों में वृद्धि होना, स्थानीय पौधों तथा वनस्पतियों के वृद्धि एवं उत्पादन में असामान्य परिवर्तन
- स्थानीय समुदायों में जलवायु के अनुकूलन संबंधी विश्वास में वृद्धि।

यदि जलवायु परिवर्तन होता है तो नीचे दिये गये सूचक परिवर्तनों के प्रभावों एवं दशा से जूझने में सहायक हो सकते हैं।

- पारम्परिक भौगोलिक क्षेत्रों की उपयोग व्यवस्था में परिवर्तन लाना
- जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों वाले प्रभावों से होने वाले फायदों तथा जूझने की पद्धतियों में वृद्धि लाना
- विभिन्न उपायों तथा पद्धतियों के विकास में स्थानीय जनता तथा जनजातियों की सहभागिता में वृद्धि लाना
- स्थानीय ज्ञान आधारित गतिविधियों का समुदायों की वार्षिक आय का एक स्त्रोत बनकर उभरना, एवं
- बदले हुए भूमि उपयोग के प्रकार तथा कार्बन उत्सर्जन से होने वाले प्रत्यक्ष लाभ।

वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन तथा स्थानीय जनजातियाँ

वैश्विक स्तर पर हो रहे जलवायु परिवर्तन की दशा से पता चलता है कि पूर्वोत्तर साइबेरिया में जमी बर्फ पिघल रही है तथा वहाँ की झीलों का स्वरूप बदल रहा है तथा बड़े भू–क्षरण की संख्या भी बढ़ रही है। इसी प्रकार नुतेन्दी का सुवन्ची बंजारा समुदाय भी अब जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ अपने पारम्परिक ज्ञान तथा स्थानीय भाषा के पुनरोद्धार तथा श्रेणीकरण का प्रयास कर रहा है।

अलास्का में रहने वाली शिकारी जनजातियों ने भी जलवायु परिवर्तन के स्वरूप तथा प्रकार को 1970 तथा 1980 से अनुभव किया है। उनके अनुभव बताते हैं कि स्थानीय झील तथा तालाब भूमि के अंदर की तरफ बह रहे हैं और सूख रहे हैं। विभिन्न पशु–पक्षी, जो अलास्का क्षेत्र में निवास करते हैं, के जीवन चक्र में

परिवर्तन देखने को मिल रहा है। ये पशु–पक्षी अब असामान्य व्यवहार दर्शा रहे हैं, और वहाँ से पलायन कर रहे हैं। स्थानीय जनसमुदाय लोगों के पारम्परिक ज्ञान के अध्ययन से पत्ता चलता है कि अब बसंत ऋतु के मौसम में वालरस जानवर (जो भोजन के रूप में उपयोग होता है) बर्फ के छोटे–छोटे ढ़ेरों पर अकेले बैठते हैं। पूर्वकाल में यह जानवर झुंड में तथा बर्फ के बड़े टीलों पर बैठा करते थे। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने का कारण वहाँ पर आये तापक्रम में वृद्धि तथा बर्फ का पिघलना है। इस समुदाय के बुजुर्ग लोग प्रकृति को सम्मान देते हैं, तथा अपने जीविकोपार्जन के लिए प्रकृति के नियमों के अनुसार ही पद्धति को अपनाते हैं।

स्थानीय जनसमुदाय जलवायु परिवर्तन जनित जैव विविधता में होने वाले बदलावों से भी भली–भाँति अवगत हैं। ऐसी परिस्थितियों से जूझने के लिए इन समुदायों ने अपने परम्परागत ज्ञान तथा सूझ–बूझ आधारित तौर तरीकों का विकास किया है। ऐसी पद्धतियों से इन लोगों ने प्रभावी सीमा तक पादप तथा पशु जैव विविधता के संरक्षण करने में योगदान दिया है। परम्परागत ज्ञान कुछ मामलों में तो औपचारिक ज्ञान से भी आगे दिखता है और जलवायु परिवर्तन तथा उसके दुष्प्रभावों के अनुकूलन के लिए हमें बौद्धिक संसाधन प्रदान करता है। साथ ही साथ परिवर्तन के प्रभावों का मूल्यांकन करने में सहायता कर सकता है। देश तथा वैश्विक आंकडों के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ, कि यदि हम कुछ सुझावों को अनुसंधान तथा विकास की प्रक्रिया से जोड़ें तो जलवायु परिवर्तन जैव विविधता पर होने वाले दुष्प्रभावों को प्रभावी ढंग से कम कर सकते हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर पाया गया कि स्थानीय लोग तथा जनजातियाँ पारम्परिक ज्ञान का प्रमुख स्रोत है तथा अपनी पद्धतियों द्वारा भेषज जैव विविधता को संरक्षित रखे हुए हैं। ऐसी पद्धतियों तथा पारम्परिक ज्ञान की सहायता से संरक्षित वनस्पतियाँ जलवायु परिवर्तन की दशा में अनुकूलन करने में परोक्ष या अपरोक्ष रूप में सहायक सिद्ध हो रही है। उपरोक्त चर्चा के आधार पर निम्नलिखित सुझाई हुई नीतियों पर विचार कर सकते हैं:

- स्थानीय भाषा में एक ऐसा आंकड़ा–संग्रह बनाया जाए जो भेषज तथा जनजातियों से संबंधित जैव विविधता को इंगित करने वाली शब्दावली को एकत्रित करें।
- यह भी सुनिश्चित किया जाए कि सामुदायिक स्तर पर क्रियान्वित आँकड़ा–संग्रह का उपयोग करने का अधिकार स्थानीय जनसमुदाय को भी अवश्य मिले।
- सामुदायिक आधार पर स्थानीय जनसमुदाय तथा जनजातियों की सहभागिता को सुनिश्चित करना तथा जैव विविधता की वस्तु स्थिति का ज्ञान अति आवश्यक है।
- यह सामुहिक जिम्मेदारी का विषय है कि लोग पारम्परिक ज्ञान के विभिन्न प्रकारों को समझें तथा सभी को समान महत्व दें, साथ ही जलवायु परिवर्तन अनुकूलन से संबंधित प्रयासों का एकीकरण भी आवश्यक है।
- जैवविविधता पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के मूल्यांकन में स्थानीय जनसमुदाय तथा जनजातियों के व्यवहारिक ज्ञान का समायोजन कर उसे सहभागिता के माध्यम से और प्रभावी बनाया जाए।
- सामाजिक–पारम्परिक तथा भेषज शिक्षण संस्थाओं का पुनर्रोद्धार एवं समर्थन प्रदान करना अति आवश्यक है जिससे जलवायु परिवर्तन अनुकूलन संबंधी पद्धतियों का संरक्षण सुनिष्चित किया जा सके।
- राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन से संबंधित कार्य तथा परियोजनाओं का ज्ञान स्थानीय संबंधित लोगों में बांटने की आवश्यकता है जिसके लिये प्रसार संस्थाओं को जोड़ने के साथ–साथ उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि लाना भी आवश्यक है।

समाप्त

शिक्षा किसी घडे को भरने जैसा नहीं है, यह तो अग्नि प्रज्जवलित करने जैसा है।

गुर्दे की खराबी के लक्षण, कारण एवं सावधानियाँ

महति प्रकाश[1] एवं सुनीता ढींगड़ा

चिकित्सा अधिकारी[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

किडनी या गुर्दा शरीर के महत्वपूर्ण अंगों में शामिल है इसमें समस्या आने से जिंदगी जीना मुश्किल हो जाता है लेकिन चिकित्सा जगत में हुई प्रगति के फलस्वरूप अब खराब गुर्दो वाले मरीज भी लगभग सामान्य जिंदगी जी सकते है।

गुर्दे में खराबी के कारण

गुर्दे खराब होने के प्रमुख कारणों में मधुमेह या डायबिटीज के मरीजों की संख्या में भारी इजाफा होना है हालांकि इसके दूसरे भी कई कारण है जैसे उच्च रक्तचाप, गुर्दे की छलनियों में संक्रमण, पथरी का बनना और दर्द निवारक दवाओं का अत्यधिक सेवन करना आदि।

गुर्दे में खराबी के लक्षण

- लगातार बुखार होना
- शरीर में सूजन होना
- पेशाब की मात्रा में कमी तथा पेशाब में प्रोटीन या खून का आना
- पेशाब का बार–बार आना तथा जलन होना
- भूख की कमी और जी मिचलाना
- शरीर में रक्त की कमी
- रक्तचाप का बढ़ना

कई बार गुर्दे की बीमारी में उपर्युक्त लक्षण नहीं पाए जाते। ऐसी अवस्था में कुछ जाँचों से बीमारी का पता चलता है।

- खून में यूरिया और क्रिएटिनिन के स्तर का बढ़ना।
- मधुमेह के रोगियों को पेशाब में माइक्रोएलब्युमिन का होना।
- गुर्दे के कार्य करने की क्षमता में कमी आना, इस बारे में रीनल स्कैन से पता चलता है।
- सोनोग्राफी में गुर्दे का साइज छोटा दिखना और पेशाब में रूकावट के कारण किडनी का फूल जाना।

उपरोक्त लक्षणों और जाँच के द्वारा अगर गुर्दे की बीमारी की आशंका हो तो शीघ्र ही गुर्दा रोग विशषज्ञ से परामर्श लेना चाहिए।

गुर्दे में खराबी की स्थिति में कुछ विकल्प

जब गुर्दे पूरी तरह खराब हो तो इन विकल्पों का चयन किया जा सकता है:

- **होमोडायलिसिस**–इसमें खून साफ किया जाता है।
- **पेरीटोनियल डायलिसिस**–इसमें पेट में एक कैथेटर लगा दिया जाता है और उसके द्वारा डायलिसिस द्रव को पेट में डालते व निकालते हैं।
- **गुर्दा प्रत्यारोपण**–इसमे एक नया गुर्दा जो किसी दानदाता के द्वारा दिया जाता है को शरीर में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। प्रत्यारोपण एक अच्छा इलाज है इसमें मरीज आम इंसान की तरह जीवन व्यतीत कर सकता है।

सावधानियाँ

- यदि ब्लड शुगर अधिक है तो उसे नियंत्रित करें। ग्लाईकोसाइलेटेड हीमोग्लोबिन एचबीए 1 सी जो पिछले तीन महीनों के ब्लड शुगर नियंत्रण की स्थिति को बताता है, को 6 से 7 प्रतिशत रखें।
- रक्तचाप को नियंत्रित रखें। ध्यान रहे कि रक्तचाप 125–130 / 75–80 के आस–पास रहे।

- दर्द निवारक दवाओं का कम से कम सेवन करें।
- स्वचिकित्सा (सेल्फ मेडीकेशन) नहीं करना चाहिए।
- यदि गुर्दे संबंधी कोई तकलीफ है तो तुरन्त गुर्दा रोग विशेषज्ञ से संपर्क करें।
- संक्रमण से बचें।
- समय पर दवाओं का सेवन करें।

समय–समय पर जाँच करवाते रहें। पीड़ित व्यक्ति इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए न केवल गुर्दे की बीमारी से बचाव कर सकते हैं बल्कि रोग हो जाने पर एक सामान्य जीवन भी जी सकते हैं।

समाप्त

जिस व्यक्ति ने कभी कोई गलती नहीं की,
उसने कुछ नया करने की कोशिश नहीं की होगी।

सूर्य नमस्कार

सुनीता ढींगड़ा एवं महति प्रकाश

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

सूर्य नमस्कार एक ऐसा व्यायाम है जो शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों ही शक्तियां प्रदान करता है। सूर्य नमस्कार का अर्थ है–सूर्य को नमस्कार। इसका मुख्य उद्देश्य है–उस परमब्रह्म की उपासना करना जो सृष्टि का रचयिता, पालनहार और संहारकर्ता है। साथ ही इसका उद्देश्य आत्मज्ञान से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करना तथा कुंडलिनी योग के लिये स्वयं को तैयार करना भी है।

मानव शरीर में सात प्रमुख अतीन्द्रिय केन्द्र हैं। चक्रों पर मन को एक्राग करने के फलस्वरूप चक्रों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है जिससे अतीन्द्रिय तथा आध्यात्मिक शक्तियों का जागरण होता है। सूर्य नमस्कार के अभ्यास चक्रों के उद्दीपन से आंतरिक सजगता, एकाग्रता, मानव–दर्शन तथा शारीरिक उद्दीपन के कारण प्राण शक्ति में वृद्धि होती है।

सूर्य नमस्कार एक ऐसा अभ्यास है जिसे बचपन से ही करने पर व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ना प्रारंभ हो जाता है। सूर्य नमस्कार के नियमित अभ्यास से होने वाले लाभ सामान्य शारीरिक व्यायामों की तुलना में बहुत अधिक है। इससे शरीर की ऊर्जा पर सीधा शक्तिदायक प्रभाव पड़ता है। यह सौर ऊर्जा की ऊर्जा मणिपुर चक्र में केन्द्रित रहती है तथा पिंगल नाड़ी से प्रवाहित होती है। जब प्राणायाम के साथ सूर्य नमस्कार का अभ्यास किया जाता है तो शारीरिक तथा मानसिक दोनों स्तरों पर ऊर्जा संतुलित होती है।

जब ईड़ा और पिंगला का संयोग होता है तो एक तीसरी शक्ति का उदय होता है। यह शक्ति है आध्यात्मिक ऊर्जा जिसका प्रवाह सुषुम्ना में होता है। ईड़ा तथा पिंगला में पूर्णतया संतुलन हो तभी यह जागरण संभव है। पिंगला नाड़ी को संतुलित तथा प्राण ऊर्जा को निर्मुक्त करने में सूर्य नमस्कार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वस्थ शरीर तथा क्रियाशील जीवन ही स्वस्थ शरीर का आधार है। स्थूल शरीर पदार्थ तथा ऊर्जा का संयोग है। सूर्य नमस्कार के समय होने वाली गति हमारे चयापचय की दर तथा ऊर्जा को निर्मुक्त करने के लिये पर्याप्त है। मेरूदण्ड हमारी सभी प्रकार की ऊर्जा का प्रवाह–पथ है। जब शीघ्रता से सूर्य नमस्कार किया जाता है तो पिंगल नाड़ी पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। मंदगति का अभ्यास ईड़ा तथा पिंगला दोनों को समानरूप से प्रभावित करता है, पर यह सब बहुत कुछ अभ्यास करने वाले की योग्यता पर निर्भर करता है। सूर्य नमस्कार के प्रत्येक आसन से प्राणों के उपर तथा नीचे की ओर होने वाले स्वाभाविक प्रवाह में सहायता मिलती है, इसलिये अवरोध समाप्त हो जाता है। अभ्यास की समाप्ति पर प्राणों का प्रवाह सहज हो जाता है तथा शारीरिक क्रियाकलापों में सुधार होता है।

सूर्य नमस्कार शुरू करने पर पहले शारीरिक अवयव, नस–नाड़ियां तथा आंतरिक अंग उद्दिप्त होते है। शनैः शनैः विभिन्न अवरोध दूर होते हैं तथा प्राणों के प्रवाह पर इच्छित नियंत्रण प्राप्त करना संभव हो जाता है। सूर्य नमस्कार शारीरिक क्रियाओं को व्यवस्थित रखकर मानसिक स्वास्थ्य कायम रखता है। मनोविक्षिप्त को नियंत्रित रखने के लिये यह अत्यन्त प्रभावी तथा शक्तिशाली विधि है। अनेक रोगों जैसे रक्ताल्पता, भूख कम लगना, स्थूलता, सिरदर्द, कब्ज, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का असंतुलन तथा मानसिक व्याधियों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। सूर्य नमस्कार शारीरिक तथा मानसिक ऊर्जाओं में पूर्ण संतुलन स्थापित करता है। परन्तु यह इस पर निर्भर करता है कि हम इसका अभ्यास किस प्रकार करते हैं। ध्यान रखें कि प्रत्येक स्थिति को बिल्कुल सही ढंग से करने के पश्चात् ही अगली स्थिति का अभ्यास किया जाये। जब आसन और प्राणायाम से हमारा शरीर शक्तिशाली बन जाता है तब हम इस स्थिति में चक्र के प्रति जागरूक होकर इससे आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं।

1. दोनों पैरों को एक साथ रखते हुये सीधे खड़े हो जायें। हथेलियों को सीने के सामने प्रणाम की मुद्रा में जोड़े। गहरी लम्बी श्वास बाहर छोड़ें। सजगता–हथेलियों पर तथा बाहर निकलती श्वास पर रहें।
2. हथेलियों को सामने की ओर करके भुजाओं को सिर के उपर उठाते हुये पीठ को पीछे कमर से मोड़ते हुये सिर तथा उपरी धड़ को आरामदायक स्थिति तक पीछे की और झुकायें। इस स्थिति में आते हुये श्वास अंदर लें।
3. पैरों को सीधा रखते हुये सामने की ओर झुकते जायें जब तक कि अंगुलियां पैर के पंजों के बगल में भूमि से स्पर्श न करने लगें। यदि भूमि से अंगुली स्पर्श न करा पायें तो पैर के अंगूठे को छूने का प्रयास करें। पैर घुटने से मुड़ने न पायें।

सूर्य नमस्कार

अधिक जोर न लगायें। इस स्थिति में आते हुये श्वास बाहर छोड़ें।

4. बायें पैर को यथासंभव पीछे फैलायें। दायें पैर का पंजा अपने स्थान पर ही रहे। बायें पैर की अंगुली भूमि–स्पर्श करे, पर घुटना न मुड़े। सिर को आगे तानते हुए उपर ले जायें, दृष्टि सामने रहे। दोनों हाथ तथा दाहिने पैर के पंजे यथास्थान पर रहें। श्वास अंदर लें तथा संपूर्ण शरीर पर पड़ने वाले तनाव के प्रति सजगता बढ़ायें।

5. दायें पैर को पीछे ले जाकर बायें पैर के साथ रखें। हाथों को भूमि पर टिकाये हुये कमर से ऊपर की ओर धड़ को उठायें। सिर आगे की ओर झुकायें। पैर तथा भुजायें सीधी रखें, एड़ी जमीन से लगी रहे। कमर से ऊपर उठते समय श्वास बाहर छोड़े। गर्दन के स्थान पर सजगता बढ़ायें।

6. कमर को नीचे लायें। सिर को आगे की ओर करते हुये ठुड्डी नीचे लायें। दोनों पैरों की अंगुलियाँ, घुटना, सीना, दोनों हथेलियां तथा ठुड्डी भूमि को लगभग स्पर्श करें। पूरे शरीर को तनावयुक्त करें। दृष्टि सामने रहे। श्वास बाहर रोक कर रखें। शरीर के मध्य भाग तथा पीठ की माँसपेशियों पर सजगता को बढ़ायें।

प्रत्येक सूर्य नमस्कार के समय दो या तीन या उससे भी अधिक श्वास ली जा सकती है। शारीरिक गति के साथ श्वास का समंजस्य हों शरीर की गतिविधियों के प्रति सजगता बनाये रखना चाहिये। आवृतियों की संख्या को धीरे–धीरे बढ़ायें तथा अभ्यास हो जाने पर क्रमशः तीव्रता के साथ करना चाहिये। शुरू में मंदगति से सीमित आवृति (11) का ही अभ्यास करें। प्रगति होने पर अभ्यास की गति और संख्या में धीरे–धीरे वृद्धि की जा सकती है।

सूर्य नमस्कार बारह शारीरिक स्थितियों से मिलकर बना है। क्रमशः आगे तथा पीछे मुड़ने वाले अन्य आसनों के माध्यम से शारीरिक अंगों तथा मेरूदण्ड में काफी खिंचाव उत्पन्न होता है तथा वे लचीले बनते हैं। प्रारंभ में ये नसों के कड़ेपन, मांसपेशियों में तनाव तथा जोड़ों में विषाक्त पदार्थों के जमा होने के कारण कड़े रहते हैं। इसलिये सूर्य नमस्कार का अभ्यास सजगता के साथ तनावरहित रहते हुये धीरे–धीरे करना चाहिये। शुरू में थोड़ा तनाव पड़ सकता है, परन्तु बाद में सहजता आ जायेगी। अभ्यास करने से पूर्व संपूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जायें। अपनी चेतना को पैर के तलुवे पर ले जायें तथा भूमि और तलुवों के संपर्क बिन्दुओं का अनुभव करें। मन को एकाग्र करके सोचें कि गुरूत्वाकर्षण शक्ति शरीर को नीचे खींच रही है। साथ ही साथ बढ़ती हुई जीवन शक्ति तथा आरामदायक एवं शिथिल शारीरिक स्थिति पर भी सजगता बनाये रखें। इस स्थिति में एक मिनट रहने के पश्चात शान्त मन से सूर्य नमस्कार प्रारंभ करें तथा गहरी श्वास अंदर लें।

7. जाँघ को भूमि से सटाते हुए धड़ को कमर से ऊपर की ओर उठायें। हाथों को सीधा रखें, सिर को पीछे ऊपर की ओर ले जायें। शरीर को ऊपर उठाते समय तथा मेरूदंड को धनुषाकार बनाते समय श्वास अंदर लें। मेरूदंड के निचले छोर पर पड़ रहे तनाव पर सजगता को बढ़ायें।

8. यह स्थिति पाँचवीं के विपरीत क्रम में पुनरावृत्ति है। कमर से शरीर को ऊपर इस प्रकार उठायें कि पैर तथा हथेली अपने स्थान पर रहे। घुटने तथा कोहनी सीधे रखें। एड़ियों को भूमि से स्पर्श करायें, श्वास बाहर छोड़ें।

9. दाहिना पैर आगे ले आयें तथा पंजे को दोनों हाथों के बीच में रखें। बायाँ घुटना जमीन से सटा दें। ऊपर की ओर देखें। इस स्थिति में आते समय श्वास अन्दर लें।

10. बायें पैर को दाहिने पैर की बगल में ले आयें। पैरों को सीधा रखते हुये आगे की ओर झुकें। सिर को घुटने के पास लाने का प्रयत्न करें। इस स्थिति में आते समय श्वास बाहर छोड़ें।

11. सीधे खड़े हो जाऐं। हाथों को सिर के ऊपर ले जाकर कमर से अधिकाधिक पीछे की ओर मोड़ें। इस स्थिति में श्वास अन्दर खीचें।

12. पुनः सीधी स्थिति में आयें। दोनों हाथों को प्रणाम की मुद्रा में सीने के सामने मिलाकर सीधे खड़े हो जायें। पूरे शरीर को शिथिल करें। इस स्थिति में लौटते समय श्वास पीछे छोड़ें।

समाप्त

कविताएँ

ISO 9001:2008

धरती पर भगवान गुरू

माँ की ममता रूपी मोतियाँ

कवि अवधबिहारी 'अवध' ग्राम–चक चपकी, डाकघर–चपकी,

विकास खण्ड–बभनी, तहसील–दुद्धी, जिला सोनभद्र–231223 (उत्तर प्रदेश) मोबाइल : 09794201708

सचमुच महान हैं! धरती पर भगवान हैं गुरू!!
शाश्वत सद्ज्ञान हैं! तन–मन पावन प्राण हैं गुरू!!

बगिया के सुन्दर–सुन्दर
फूलों के हैं मस्त माली!
महके ज्ञान रूपी सुरभि, छाये हरियाली!!
ज्ञानमयी गंगा से भरते जीवन की प्याली!
जीवन में बिखरे दिव्य छटा! नित्य निरन्तर निराली!!

हरे–भरे उद्यान हैं! जीवन की शान हैं गुरू!
सचमुच महान हैं! धरती पर भगवान हैं गुरू!!

नन्हें–नन्हें बीजों से बगिया हरी–भरी होती!
जाग गई प्रतिभायें सब, अब तक थी जो सोती!!
छाए मनोरम छटा! बिखरे सुन्दरज्ञान मोती!
गुरू कृपा से जलें! जगमग–जगमग जीवन ज्योति!!

ज्ञानमयी खान हैं! जीवन के सम्मान हैं गुरू!
सचमुच महान हैं! धरती पर भगवान हैं गुरू!!

गुरू से ही बनता यह जीवन ललित ललाम हैं!
गुरू ब्रह्मा, विष्णु, महेश! गुरू ही चारों धाम हैं!!
पथ–प्रदर्शक गुरू से ही बनते जग के काम हैं!
श्री गुरू चरणों में 'अवध' का सादर प्रणाम हैं!!

जीवन के गान हैं! अवनि–अम्बर समान हैं गुरू!
सचमुच महान हैं! धरती पर भगवान हैं गुरू!!

जीवन रूपी बगिया में सुख की सुनहरी बेली बोती रहीं!
ममतामयी माँ मोहक मोतियों को जीवन में पिरोती रहीं!!

कठिनाइयाँ जब भी जीवन में आती रहीं!
चाहे दुख की काली घटायें छाती रहीं!!
माँ जीवन रूपी बगिया को सजाती रहीं!
माँ की ममता में सर्वदा सब समाती रहीं!!

सुख–दुख में छोड़ा नहीं दामन, जागती या भले सोती रहीं!
ममतामयी माँ मोहक मोतियों को जीवन में पिरोती रहीं!!

स्वतन से सोमरस सम दुगध को पिलाती रहीं!
सुख–दुख सब में, जीवन ज्योति जलाती रहीं!!
भावनामयी भव्य भावों को मिलाती रहीं!
पतझड़ में भी प्रेममयी पुष्प खिलाती रहीं!!

सन्तान को सदा सदगुणों की सुनहरी सुरसरि में भिगोती रहीं!
ममतामयी माँ मोहक मोतियों को जीवन में पिरोती रहीं!!

माँ धरती से है भारी, माँ सबसे प्यारी!
माँ से महक उठी! जीवनमयी फूलवारी!!
माँ की महिमा अनंत! माँ है सबसे न्यारी!
माँ को शत–शत वंदना करत 'अवधबिहारी'!!

कोटि–कोटि कोमल कामनाओं को हिय में सदा संजोती रही!
ममतामयी माँ मोहक मोतियों को जीवन में पिरोती रहीं!!

समाप्त

खूबसूरत पल

गीता रानी

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

मेरे जीवन में खूबसूरत पल
अक्सर ही आता रहता है
जब खूबसूरत पल आता है
मन खुशियों से सराबोर हो जाता है।

वह खूबसूरत पल बेखटके आता है
मेरी संवेदनाओं को सहला जाता है
कोई दृष्टिहीन मेरा सहारा लेता है
और सड़क पार कर जाता है।

मेरे परिश्रम की कमाई का एक सिक्का
किसी भिखारी की हथेली पर पहुंचता है,
मेरी दिनचर्या का बहुमूल्य समय
किसी के आंसुओं को पोंछने में बीतता है।

मेरा तन खुद के प्राणों की रक्षा करता है
अपने सुखों का बलिदान कर
दूसरों के हिस्से में सुख डालता है
तब मुझे खूबसूरत पल का आभास होता है।

यह खूबसूरत पल हर किसी के जीवन में आए
और उसका जीवन खुशियों से सराबोर हो जाए
सारा संसार खुशहाल हो जाए
दुख दर्द का नामो–निशान मिट जाए।

हर किसी को इंतजार हो, वह खूबसूरत पल आए
उसकी संवेदनाओं को सहलाए
फिर प्रारंभ हो खुशियों के आदान प्रदान का
अंतहीन सिलसिला, अंतहीन सिलसिला, अंतहीन सिलसिला

राजभाषा कार्यक्रम

ISO 9001:2008

संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं अन्य क्रियाकलापों में राजभाषा हिन्दी

रामेश्वर लाल मीणा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं सुनील कुमार त्यागी

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

कृषि अनुसंधान में राजभाषा हिन्दी को प्रोत्साहित करने हेतु केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान प्रत्येक वर्ष अनेक गतिविधियाँ आयोजित करता है। वर्ष 2015–16 के दौरान बायोजित कुछ विशिष्ट कार्यक्रमों का कृषि किरण के इस अंक में प्रकाशन किया जा रहा है।

हिन्दी पखवाड़े का आयोजन

विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल में 14 से 29 सितम्बर 2015 के दौरान हिन्दी पखवाड़े का आयोजन किया गया। हिन्दी पखवाड़े का उद्घाटन मुख्य अतिथि डा॰ आर्जव शर्मा, निदेशक, राष्ट्रीय पशु आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल ने दीप प्रज्जवलित करके किया। हिन्दी पखवाड़ा आयोजन समिति के अध्यक्ष डा॰ राजेन्द्र कुमार यादव ने हिन्दी के महत्व को बताते हुए राजभाषा के नियमों व अधिनियमों की जानकारी दी। उन्होंने हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया।

हिन्दी पखवाड़ा उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि डा॰ आर्जव शर्मा ने इस संस्थान में हिन्दी में हो रहे कार्यों की सराहना की और कहा कि हिन्दी पखवाडे के दौरान इस भाषा का अधिक से अधिक संचार होता है। उन्होंने कहा कि भारत एक महान देश है जो कि विविधताओं से भरा हुआ है और भाषा सारी विविधताओं को जोड़ने के लिए कडी का काम करती है। हिन्दी भाषा एक सरल, सशक्त एवं वैज्ञानिक भाषा है इसको सुदृढ करने के लिए हमें अधिक से अधिक हिन्दी में काम करना होगा। हिन्दी राष्ट्रीय एकता व राष्ट्रीय स्वाभिमान की भाषा है इसके प्रयोग से हमें गौरवान्वित महसूस करना चाहिये।

संस्थान के निदेशक डा॰ दिनेश कुमार शर्मा ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया और बताया कि यह दिवस हमें अपने संवैधानिक उत्तरदायित्व के प्रति सचेत करता है। उन्होंने कहा कि राजभाषा के प्रति प्रेम और समर्पण से ही स्वदेश के प्रति प्रेम की भावना जागृत होती है जिसके लिये केन्द्र सरकार का राजभाषा विभाग व सभी संस्थाएं हर संभव कोशिश कर रहे हैं ताकि कार्यालयों में हिन्दी का अधिकाधिक उपयोग हो। उन्होंने कहा कि हिन्दी एक वैज्ञानिक भाषा है। किसानों को संस्थान की तकनीकों के बारे में विस्तृत रूप से बताने के लिए किसान मेले एवं किसान गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है ताकि देश का किसान विकसित तकनीकों से लाभांवित हो सके। लगभग 65 वर्ष बाद भी हिन्दी भाषी क्षेत्रों में राजभाषा के प्रति निष्ठा और प्रेम में कमी के कारण आज यह स्थिति बनी हुई है कि आज भी सरकारी स्तर पर हिन्दी राजभाषा को आगे बढ़ाने के लिये प्रयास किये जा रहे हैं यदि इन प्रयासों को देश के सभी नागारिक गंभीरता से लें तो

डा. आर्जव शर्मा, निदेशक एन.बी.ए.जी.आर. हिन्दी पखवाड़ा के उद्घाटन पर सम्बोधित करते हुए

हिन्दी पखवाड़ा 2015 के अंतर्गत आयोजित प्रतियोगिताओं के परिणाम

क्र. सं.	प्रतियोगिताओं के नाम	विजेताओं के नाम			
		प्रथम	द्वितीय	तृतीय	सांत्वना
1.	कविता पाठ प्रतियोगिता	श्रीमती मधुबाला श्रीमती जसबीर कौर	श्रीमती चारूलता	श्री नरेन्द्र कुमार वैद	–
2.	निबंध लेखन प्रतियोगिता	श्री राजकुमार श्रीमती चारूलता	कु. रितु देवी	श्री मनीष पांडे	–
3.	प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता	श्री गुरिन्दर सिंह एवं श्रीमती चारूलता	डा. मुरलीधर मीणा एवं श्री अनिल कुमार शमा	डा. रामेश्वर लाल मीणा एवं श्री नरेन्द्र शर्मा	–
4.	टिप्पणी एवं मसौदा लेखन प्रतियोगिता	श्री नरेन्द्र कुमार वैद	श्री शशीपाल	श्री हरीश वत्स	श्री करम सिंह
5.	आवेदन पत्र लेखन (सहायक श्रेणी कर्मचारियों हेतु)	श्री फतेह सिंह	श्री सुभाष चन्द	श्री देस राज शर्मा	श्री इन्द्रपाल तोमर
6.	पोस्टर प्रदर्शनी प्रतियोगिता	डा. मधु चौधरी व सहयोगी	डा. रणबीर सिंह व सहयोगी	श्रीमती चारूलता व सहयोगी	–
7.	तत्काल भाषण प्रतियोगिता	श्री रोशन लाल काजल	डा. अनिता मान	श्रीमती अनिता मेहता	डा. देवेन्द्र सिंह बुंदेला

निश्चित ही राजभाषा को सम्मान मिलेगा। उन्होंने सभी कर्मियों से हिन्दी में कार्य करने की अपील करते हुए कहा कि विश्व में 80 करोड़ लोग हिन्दी भाषा बोलते हैं और विश्व में हिन्दी भाषा का द्वितीय स्थान है।

हिन्दी पखवाड़े के अंतर्गत 8 प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। इन सभी प्रतियोगिताओं में संस्थान के अधिकारियों व कर्मचारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

नकद पुरस्कार योजना के अन्तर्गत पुरस्कृत कर्मचारियों की सूची

क्र.सं.	नाम एवं पद	परिणाम	नकद राशि
1	श्रीमति सुषमा गर्ग	प्रथम	1600
2	श्री बलवान सिंह	प्रथम	1600
3	श्रीमति जसबीर कौर	द्वितीय	800
4	श्री सुरेश पाल राणा	द्वितीय	800
5	श्री चरण सिंह	द्वितीय	800
6	श्रीमति अनीता मेहता	तृतीय	600
7	श्री गुरचरण सिंह	तृतीय	600
8	श्री करम सिंह	तृतीय	600
9	श्री हरि पाल	तृतीय	600
10	श्रीमती वीरा रानी	तृतीय	600

हिन्दी पखवाड़े का समापन समारोह दिनांक 29 सितम्बर 2015 को आयोजित किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि संस्थान के निदेशक डा. दिनेश कुमार शर्मा रहे। उन्होंने इस अवसर पर बोलते हुए कहा कि शोध पत्रों को किसानों की मूलभाषा हिन्दी में प्रकाशित किया जाए जिससे उनको अधिक से अधिक लाभ मिल सके। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दी बोलने वालों को गौरव होना चाहिए क्योंकि हिन्दी बोलने वालों का आज के युग में सम्मान बढ़ता जा रहा है। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दी हमारे देश के विकास में बहुत मददगार सिद्ध हुई है। उन्होंने बताया कि हिन्दी भाषा एक समुद्र की तरह है जिसमें कई भाषाओं का समावेश होता है। उन्होंने यह भी बताया कि हिन्दी एक वैज्ञानिक भाषा है जिसके द्वारा विकसित तकनीकियों को किसानों तक पहुंचाने में अहम भूमिका रही है। उन्होंने सभी से अपील की कि वे अपना सरकारी कामकाज हिन्दी में ही करने का प्रयास करें। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक ने पखवाड़े के दौरान आयोजित की गई प्रतियोगिताओं एवं उनमें भाग लेने वाले सभी प्रतिभागियों की सराहना की तथा विजेताओं को हार्दिक बधाई दी। समापन समारोह के अवसर पर तत्काल भाषण प्रतियोगिता भी आयोजित की गई। इस अवसर पर प्रोत्साहन पुरस्कार योजना के अंतर्गत

वर्ष भर हिन्दी में अधिकाधिक उत्कृष्ट कार्य करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों व हिन्दी पखवाड़े के दौरान हुई प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कृत किया गया।

हिन्दी में तकनीकी पोस्टर प्रदर्शनी का आयोजन

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान में 29 सितम्बर 2015 को तकनीकी पोस्टर प्रदर्शनी एवं तत्काल भाषण प्रतियोगिता आयोजित की गई। इसी दिन हिन्दी पखवाड़े के समापन के अवसर पर इन पोस्टरों का मूल्यांकन भी किया गया।

प्रतियोगिता में निम्नलिखित कृषि तकनीकों पर वैज्ञानिकों ने अपने पोस्टर प्रदर्शित किए गए।

- **हरियाणा में उपसतही जलनिकास प्रणाली के माध्यम से भूमि सुधार**

  रमेश, अभिषेक, लीला राम, भास्कर नरजरी, के॰ थिम्मप्पा, सत्येन्द्र कुमार एवं एस॰के॰ कामरा

- **कन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान की बौद्धिक सम्पदा और वाणिज्यीकरण**

  शारिक अली, मनीषा, विनोद कुमार, प्रवीण कुमार, देवेन्द्र सिंह बुंदेला रंजय के॰ सिंह, अंशुमान सिंह एवं दिनेश कुमार शर्मा

- **वर्टिसोल मृदाओं में नियंत्रित जलनिकास प्रणाली (सीडीएस) का मूल्यांकन**

  बी॰एल॰ मीना, आर॰एल॰ मीणा, डी॰के॰ शर्मा, ए॰वी॰ कारेगोडर एवं जे॰ विश्वनाथ

- **कच्छ के सशक्त बारहमासी चारा हैलोफाइटस की नमक सहिष्णुता का तुलनात्मक अध्ययन**

  चारूलता, अश्वनी कुमार, अरविन्द कुमार, सौरभ कुमार, एवं प्रवीण कुमार

- **कृषि मौसम वैधशाला का फसल उत्पादन में उपयोग**

  श्याम सिंह, महेन्द्र पाल भाटिया, पूजा सैनी एवं डी॰एस॰ बुंदेला

- **सूक्ष्मजीवों की खरपतवार नियंत्रण में भूमिका**

  मधु चौधरी, राजेन्द्र कुमार यादव, हनुमान सहाय जाट, प्रबोध चन्द्र शर्मा एवं दिनेश कुमार शर्मा

- **संरक्षण खेती और उसके लाभ**

  रितु देवी, मार्टिना रानी, अरविन्द कुमार, मधु चौधरी, पी॰सी॰ शर्मा एवं एच॰एस॰ जाट

- **स्प्रिंकलर सिंचाई विधि द्वारा सुधरी ऊसर भूमि में धान–गेहूँ फसलों का उत्पादन एवं संसाधन संरक्षण**

  रणधीर सिंह, डी॰के॰ शर्मा, पी॰के॰ जोशी एवं सत्येन्द्र कुमार

पोस्टर प्रदर्शनी प्रतियोगिता के निर्णायक मण्डल के मूल्यांकन के आधार पर सूक्ष्मजीवों की खरपतवार नियंत्रण में भूमिका को प्रथम, स्प्रिंकलर सिंचाई विधि द्वारा सुधरी ऊसर भूमि में धान–गेहूँ फसलों का उत्पादन एवं संसाधन संरक्षण को द्वितीय व कच्छ के सशक्त बारहमासी चारा हैलोफाइटस की नमक सहिष्णुता का तुलनात्मक अध्ययन को तृतीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। संस्थान के निदेशक डा॰ दिनेश कुमार शर्मा ने पोस्टर द्वारा तकनीकी प्रदर्शन को एक महत्वपूर्ण तकनीकी हस्तांतरण का माध्यम बताते हुये इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले वैज्ञानिकों की प्रशंसा की तथा इस आयोजन के समन्वयकर्ता डा॰ डी॰एस॰ बुंदेला के प्रयासों की सराहना की।

संस्थान द्वारा नगरस्तरीय राजभाषा कार्यशाला का आयोजन

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल में दिनांक 14 मई, 2015 को नगरस्तरीय राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में करनाल स्थित केन्द्र सरकार के समस्त कार्यालय, राष्ट्रीयकृत बैंक, उपक्रम निगमों के लगभग 200 अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। इस कार्यशाला के मुख्य अतिथि श्री हरीश चन्द्र जोशी, निदेशक (राजभाषा), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली रहे। इस कार्यशाला की अध्यक्षता संस्थान के निदेशक डा॰ दिनेश कुमार शर्मा ने की। श्री हरीश चन्द्र जोशी ने इस अवसर पर बोलते हुए कहा कि इस देश को एक सूत्र में पिरोने के लिये हिन्दी को चुना गया परंतु फिर भी हिन्दी को अपना स्थान लेने के लिये काफी मशक्कत करनी पड़ी। उन्होंने कहा कि भारत में 22 राजभाषा है, जिस राज्य में जो भाषा अपनायी जाती है उसे ही वहाँ की राजभाषा कहते हैं, केन्द्रीय सरकार की राजभाषा हिन्दी है। उन्होंने बताया कि वर्ष 1963 में राजभाषा अधिनियम लाया गया जिसमें सरकारी कामकाज हिन्दी में करने का प्रावधान किया गया व यह बताया गया है कि प्रैस विज्ञप्ति, करार, परमिट, टैंडर आदि द्विभाषी होने चाहिये। उन्होंने यह भी बताया कि क, ख, ग श्रेणी में विभक्त सभी राज्यों के लिए भिन्न लक्ष्ण निर्धारित किए गये हैं। उन्होंने कहा कि हिन्दी का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और हमें हिन्दी में पत्राचार को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। उन्होंने कृषि क्षेत्र में हुए नवीन अनुसंधानों को किसानों तक पहुँचाने के लिये इसके

डा. दिनेश कुमार शर्मा, निदेशक का नगर स्तरीय राजभाषा कार्यशाला में सम्बोधन

डा. प्रबोध चन्द्र शर्मा, निदेशक (कार्यवाहक) प्रतिभागियों को पुरस्कृत करते हुए

हिन्दी में प्रकाशित किये जाने पर जोर दिया। उन्होंने हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए इसके सरलीकरण करने की जरूरत पर बल दिया। उन्होंने राजभाषा के सवैंधानिक उपबन्ध पर एक व्याख्यान भी दिया। डा॰ दिनेश कुमार शर्मा ने इस अवसर पर बोलते हुए कहा कि इस संस्थान ने देश की लगभग बीस लाख हैक्टर लवणीय तथा क्षारीय मृदाओं का सुधार किया है जिसमें हिन्दी का एक अहम योगदान रहा क्योंकि इस संस्थान के वैज्ञानिकों ने किसानों को तकनीकी ज्ञान उनकी भाषा में दिया। उन्होंने यह भी कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, खेल, मनोरंजन, विज्ञान में हिन्दी अति आवष्यक है। उन्होंने सभी अधिकारियों व कर्मचारियों से अपने दैनिक कार्यों को

डा. प्रबोध चन्द्र शर्मा, निदेशक (कार्यवाहक) कार्यशाला को संबोधित करते हुए

हिन्दी में ही करने का अनुरोध किया। उन्होंने यह भी कहा कि इस कार्यशाला में सभी यह संकल्प लें कि हम अपना कार्य हिन्दी में ही करेंगे। श्री राकेश भारद्वाज, वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी ने कहा कि हिन्दी ज्ञान, बोलचाल व कार्यालय की भाषा बन चुकी है परंतु अभी तक पूर्ण रूप से विज्ञान की भाषा नहीं बन पाई है इसके लिये हमें अपने अधिक से अधिक शोध कार्य हिन्दी में करने होंगे व विज्ञान की पढ़ाई हिन्दी में करनी होगी। श्री आर॰एस॰ गौतम, सचिव, नराकास ने भी इस अवसर पर हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए किए जा रहे सभी सदस्य कार्यालयों के प्रयासों की सराहना की व इसे निरंतर बढ़ाते रहने का आह्वान किया। उन्होंने यह भी बताया कि विश्व में 1200 मिलियन व्यक्ति हिन्दी का प्रयोग करते हैं। श्री राकेश जैन, सहायक प्रबंधक केनरा बैक अंचल कार्यालय, करनाल, डा॰ अनुज कुमार, वैज्ञानिक, भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल तथा श्री अभिषेक श्रीवास्तव, प्रशासनिक अधिकारी, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल ने भी इस अवसर पर हिन्दी को बढ़ावा देने हेतु प्रतिभागियों को प्रेरित करने के लिए अपनी प्रस्तुतियां दी।

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठकें

- उपरोक्त अवधि में संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की चार बैठकें दिनांक 13 जनवरी 2015, 15 अप्रैल 2015, 14 जुलाई 2015 व 13 अक्तूबर 2015 को आयोजित की गई।

राजभाषा हिन्दी में किए गए अन्य कार्य

- विगत कुछ वर्षों से संस्थान के प्रशासनिक कार्मिकों को राजभाषा (हिन्दी) में टिप्पणी व मसौदा लेखन के लिए प्रोत्साहित करने हेतु पुरस्कार वितरित किए जाते हैं उसी कडी में इस वर्ष भी 5 कार्मिकों को पुरस्कृत किया गया।
- 77 अधिकारियों/78 कर्मचारियों की सेवा पुस्तिकाओं में प्रविष्टियाँ हिन्दी में की गई।
- सभी मजदूरों के ठेके तथा नीलामी की सूचनाएं, विज्ञापन, प्रेस नोट निमंत्रण कार्ड आदि हिन्दी में प्रकाशित किये गये।
- संस्थान में 20 प्रशासनिक बैठकें हिन्दी में आयोजित की गई।
- किसानों के लिए संस्थान में उपलब्ध टोल फ्री नम्बर पर 616 किसानों को परामर्श सेवा प्रदान की गई।
- इस अवधि के अन्तर्गत विभिन्न हिन्दी समाचार पत्रों में संस्थान में सम्पन्न गतिविधियों सम्बन्धी 115 प्रैस विज्ञप्तियाँ प्रकाशित हुई।
- इस अवधि में संस्थान में आए 882 किसानों, 485 प्रसार कार्यकर्ताओं, 125 वैज्ञानिकों तथा 1466 विद्यार्थियों

मेरा गांव मेरा गौरव की झलकियाँ

को प्रयोगात्मक प्रक्षेत्रों का भ्रमण कराया गया तथा उन्हें हिन्दी में संस्थान द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकों से अवगत कराया गया।

- संस्थान के विभिन्न विभागीय अनुसंधान कार्यक्रमों व मेरा गाँव मेरा गौरव कार्यक्रम के तहत जिला करनाल, पानीपत, कैथल व जींद जनपदों के किसानों के खेतों पर 73 प्रदर्शनियां लगाई गई।

वर्ष 2015–16 के दौरान हिन्दी प्रकाशन

- इस अवधि में संस्थान की वार्षिक रिपोर्ट 2013–14 हिन्दी में प्रकाशित की गई।
- इस अवधि में संस्थान की हिन्दी पत्रिका 'कृषि किरण' 2014–15 हिन्दी में प्रकाशित की गई।

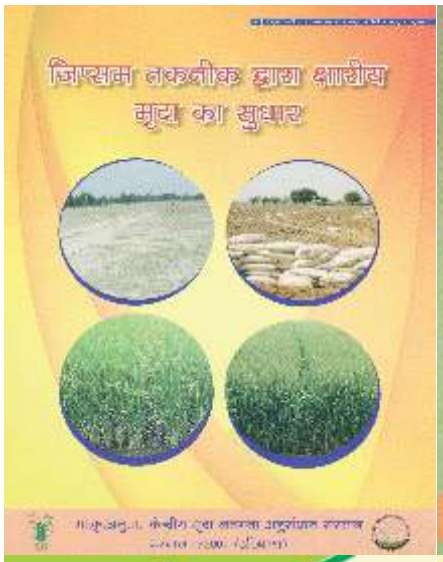
जिप्सम तकनीक द्वारा क्षारीय
मृदा का सुधार

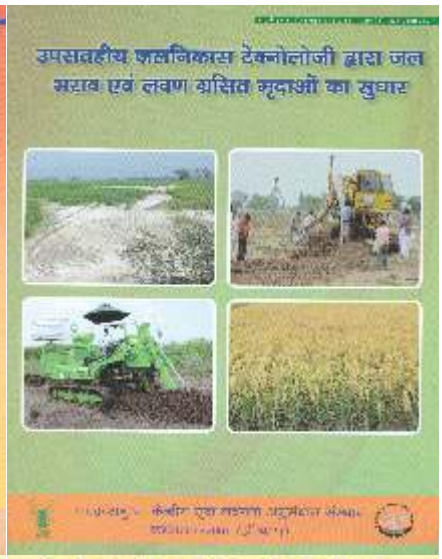
उपसतहीय भूविकास टेक्नोलोजी द्वारा जल
भराव एवं लवण ग्रसित भूमियों का सुधार

मिट्टी परीक्षण हेतु
नमूने लेने की विधि

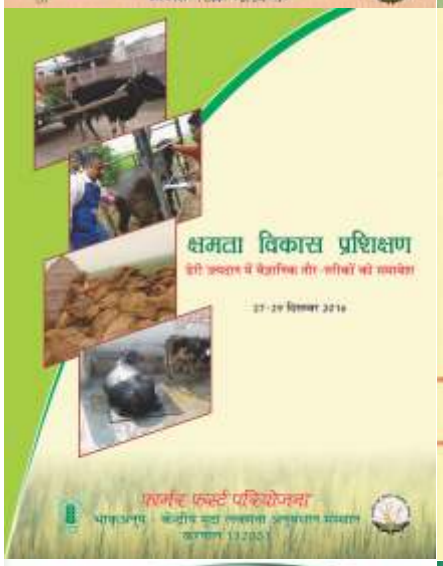
क्षमता विकास प्रशिक्षण

मिट्टी तथा सिंचाई के पानी का परीक्षण:
किसानों के लिए एक मार्गदर्शक गाइड

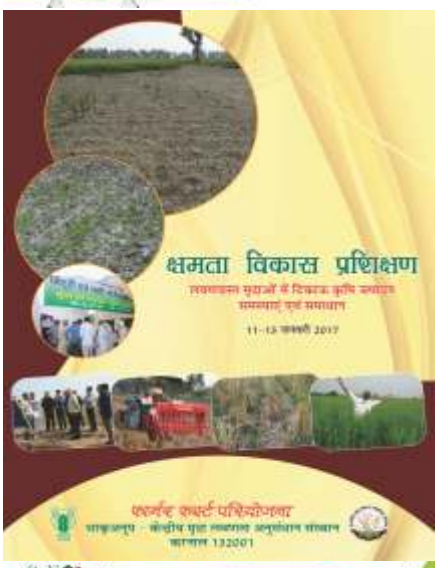
क्षमता विकास प्रशिक्षण

लवणता समाचार

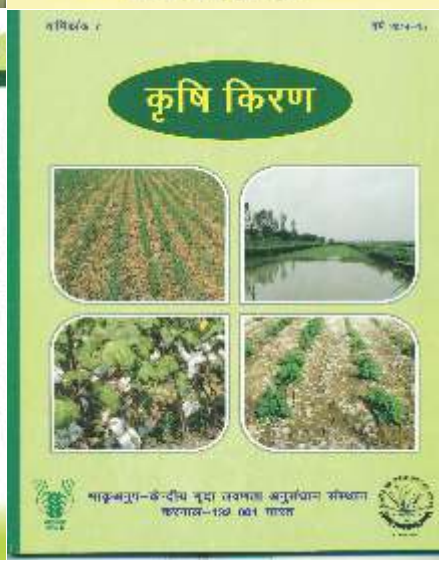
कृषि किरण

लवणता समाचार

- इस अवधि में 21 हिन्दी शोध पत्र प्रकाशित किये गए।
- इस अवधि में एक तकनीकी बुलेटिन हिन्दी में प्रकाशित किया गया।
- इस अवधि में संस्थान का लवणता समाचार पत्र जुलाई से दिसम्बर 2014 हिन्दी में प्रकाशित किया गया।
- इस अवधि में संस्थान का लवणता समाचार पत्र जनवरी से जून 2015 हिन्दी में प्रकाशित किया गया।
- इस अवधि में लवणग्रस्त मृदाओं में पोषक तत्वों का प्रबंधन कैसे हो विषय पर एक आलेख हिन्दी पत्रिका में प्रकाशित किया गया।
- इस अवधि में दुर्लभ कवक कोरडीसेप्स के औषधीय गुण विषय पर एक आलेख हिन्दी पत्रिका खेती में प्रकाशित किया गया।
- इस अवधि में संस्थान में 38 हिन्दी बैनर, 9 द्विभाषी पोस्टर, 620 हिन्दी प्रायोगिक बोर्ड, 22 द्विभाषी प्रायोगिक बोर्ड एवं 19 द्विभाषी नामपट्टिकाएं, 203 प्रमाण पत्र/फोटो लेबल, 15 हिन्दी डिजाइनिंग एवं अन्य 2 संप्रदर्श हिन्दी में बनाए गए।
- इस अवधि के दौरान संस्थान में 1 व संस्थान के बाहर 6 किसान गोष्ठी आयोजित की गई व किसानों को संस्थान द्वारा विकसित सभी तकनीकों की जानकारी हिंदी में दी गई।

प्रैस एवं मीडिया

पंजाब केसरी

हिंदी बोलने वालों का बढ़ता है युग में सम्मान : देसवाल

प्रदेश का 55 फीसदी पानी नहीं है कृषि योग्य

दैनिक भास्कर मंगलवार 25 अक्टूबर, 2016

सीएसएसआरआई ने जरीफा में चलाया स्वच्छता अभियान

करनाल. जरीफा सीजन गांव में गए और वहां जाकर सफाई अभियान चलाया।

करनाल| केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान में स्वच्छ भारत अभियान के तहत स्वच्छता अभियान चलाया जा रहा है। संस्थान के निदेशक डॉ. प्रबोधचंद्र शर्मा के नेतृत्व में इस अभियान के तहत सफाई अभियान की शुरुआत की गई थी। इसी क्रम में सोमवार को संस्थान के सभी अधिकारी एवं कर्मचारी संस्थान के नजदीकी गांव जरी वीरान गांव में गए और वहां जा सफाई अभियान चलाया। गांव प्राथमिक पाठशाला में जाकर स विद्यार्थियों को पूर्व निदेशक व प्र वैज्ञानिक डॉ. दिनेश कुमार शर्मा त तथा प्रभागाध्यक्ष डा. आरके यादव स्वच्छता के लाभ के बारे में विस से संदेश दिया।

18.10.2016 पंजाब केसरी

अधिक उपज देने वाली सरसों की नई वैरायटी विकसित

करनाल, 17 अक्तूबर (मदान): केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा सरसों की नई किस्म सी.एच.-58 विकसित की गई है। निदेशक पी.सी. शर्मा

संस्थान के निदेशक पी.सी. शर्मा ने बताया कि सरसों की यह किस्म हरियाणा, उत्तरप्रदेश, पंजाब और राजस्थान में लवणग्रस्त मृदा में अधिक अच्छी पैदावार देगी। उन्होंने जानकारी दी कि सरसों की पहली किस्म सी.एस.-54 से इसकी पैदावार 25 फीसदी अधिक है और इस किस्म में तेल की मात्रा 40 प्रतिशत तक है। उन्होंने जानकारी दी कि लगातार तीन साल भिन्न-भिन्न 15 स्थानों पर इसे जांचा गया। जांच के बाद सकारात्मक नतीजे सामने आए हैं। उन्होंने जानकारी दी कि इस किस्म को लगाने में किसानों को अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। 5 से लेकर 20 अक्तूबर के बीच में इसकी बिजाई कर देनी चाहिए और कभी भी खेत देकर इसे न लगाएं। उन्होंने जानकारी दी कि इस फसल के लिए पानी की अधिक आवश्यकता नहीं होती। एक एकड़ में 7 हजार रुपए के खर्च में अधिक पैदावार प्राप्त

प्री-रबी किसान

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch